

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180092

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H83.1
S94 P.

Accession No. H23 21

Author सुदर्शन.

Title पनथिद. 1954.

This book should be returned on or before the date
last marked below.

पनघट

[चौदह कहानियों का संग्रह]

सुदर्शन

वोरा ऐन्ड कंपनी, पब्लिशर्स, लिमिटेड
३, राउन्ड बिल्डिंग, बम्बई २.

चौथा संस्करण
मार्च १९५४

मूल्य साढ़े तीन रुपये

पनघटकी कहानी

नया लेखक कहानी लिखने बैठा, तो कलमने कहा—बोल, क्या लिखूँ ? लेखक सोचमें पड़ गया कि क्या कोई ऐसा बारा नहीं, जहाँ कहानियाँ वृक्षोंकी तरह उगती हों ? आदमी जाए, दो-चार मन-माफिक कहानियाँ तोड़ लाए, और उन्हें बनाकर, सजाकर, शीशेकी तरह चमकाकर किताबोंके पन्नोंपर रख दे। और लोग उन शीशा फूलोंमें अपना आत्मा देखें, और कभी सुखी हों, कभी दुखी हों, कभी उन्हें भूठा कहकर उनकी तरफसे मुँह मोड़ लें।

पाससे एक बूढ़ा गुज़र रहा था। उसने नए लेखककी हैरानीको देखा और कहा—मैं एक ऐसी जगह जानता हूँ, जहाँ कहानियाँ वृक्षोंका तरह उगती हैं, बड़ी होती हैं, फलती-फूलती हैं। और वहाँ इतनी कहानियाँ हैं कि अगर तू हर रोज़ एक कहानी तोड़े और सारी उम्र तोड़ता रहे, तब भी उनमें कभी न आए, और वह सदा बहार बारा उसी तरह लहलहाता रहे, भूमता रहे, फलता-फूलता रहे।

नया लेखक बूढ़ेके साथ साथ चलने लगा।

पहले शहरकी तंग गलियाँ मिलीं। वहाँ सादगी खेलती थी, प्यार मुस्कराता था, चिन्ता घुलती थी। लेखक वहीं रुक गया और बोला—यहाँ कहानियाँ हैं।

मगर बूढ़ेने कहा—अभी आगे।

इसके बाद वे दोनों खुले बाज़ारमें आए। वहाँ बेशरमी नाचती थी, मुस्कराती थी, गाती थी, और उसके गलेकी तानें सुननेके लिए, सैकड़ों लोग अपने घरोंसे दौड़े आते थे। नया लेखक वहीं ठिठक गया और बोला—कहानियाँ यहां भी हैं।

मगर बूढ़ेने जवाब दिया—अभी और आगे।

इसके बाद हवेलियाँ और कोठियाँ आईं। वहाँ अमीरीके चोचले थे, विलासकी निर्दयता थी, और अभिमान की शान और शौकत थी। नौजवान लेखक वहीं ठहर गया और बोला-कहानियाँ यहाँ भी हैं।

मगर बूढ़ेने जवाब दिया-अभी और आगे आओ।

इसके बाद खेत मिले। वहाँ मेहनत और मजदूरी और गरीबी ज़मीनपर काम करती थी, आसमानपर आशा टूँडती थी और अपने आँधरेमें बैठकर रो लेती थी। नए लेखकने आप्रहसे कहा-कहानियाँ यह भी हैं।

मगर बूढ़ा बोला-अभी और आगे चलो।

अब दोनों पनघटके पास पहुँच गए। वहाँ अबोध बचपन था, कुंवारी जवानियाँ थीं, और ब्याहे हुए रूप थे।

वहाँ खिले हुए दिल थे, लहलहाती हुई आशाएँ थीं, भूमती हुई उमंगें थीं।

वहाँ उजड़ी हुई शरम थी, पिसा हुआ प्यार था, मुरझाई हुई मेहनत थी।

बूढ़ेने पनघटपर बसे हुए इस संसारकी तरफ़ इशारा किया और कहा-यही वह जगह है, जहाँ कहानियाँ उगती हैं, बड़ी होती हैं, फलती-फूलती हैं। यहींसे कहानियाँ गलियोंमें जाती हैं, यहींसे बाज़ारोंमें जाती हैं, यहींसे कोठियोंमें जाती हैं, यहींसे खेतोंमें जाती हैं।

यही कहानियोंका बाग़ है, और यहाँ इतनी कहानियाँ उगती हैं कि अगर तू यहाँसे हर रोज़ एक कहानी तोड़े और अपनी सारी चन्न तोड़ता रहे, जब भी इनमें कमी न आएगी, और कहानियोंका यह सदा-बहार बाग़ इसी तरह लहलाता रहेगा।

लेखक खुश हो रहा था और उसकी निगाहें अपने लिए कहानीका चुनाव करनेके लिए कहानियोंके बाग़में इधर उधर दौड़ती फिरती थीं।

माहीम-बम्बई
६ सितम्बर १९३९

}

सुदर्शन

सूची

१—काव्य-कल्पना	...	...	७
२—चित्रकार	...	...	१७
३—सूरदास	...	...	३५
४—प्रताप के पत्र	...	...	५८
५—खरा खोटा	...	...	७५
६—चापका हृदय	...	...	९२
७—मास्टर आत्माराम	...	...	११२
८—साइकिलकी सवारी	...	...	१२८
९—दो परमेश्वर	...	...	१४३
१०—मजदूर	...	...	१४६
११—कीर्तिका मार्ग	...	...	१६४
१२—धर्मकी वेदीपर	...	...	१८०
१३—जीवन और मृत्यु	...	...	१९८
१४—हेर-फेर	...	...	२३३

पनघट

काव्य-कल्पना

१

महाराज श्रीहर्षकी गिनती संस्कृतके उन मशहूर कवियोंमें होती है, जिनका नाम अजर और अमर है। भारतवर्षमें गंगा जमना और हिमालय के साथ श्रीहर्ष भी सदा जीते रहेंगे। उनकी काव्य-कल्पना देखकर लोग आज भी हैरान रह जाते हैं। उनका अधिक समय काव्य-रचनाकी भेंट होता था। उनको अपने राज्यकी इतनी परवा न थी, जितनी कविताकी। श्रीहर्ष प्रायः कहा करते थे—मेरा असली राज्य वह है, जिसपर मेरे विचारोंका शासन है। धरतीका राज्य छिन सकता है, बदल सकता है, नाश हो सकता है। मगर कविता का राज्य वह राज्य है, जिसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। यहाँ तक कि उसे मौतकी ठंडी उँगलियाँ भी नहीं छू सकती। महाराज अपने ख्यालमें तन्मय रहते, और काव्य और कला, जीवन और ज्योति, प्रेम और पवित्रताके कभी नाश न होने वाले संसारके स्वर्गीय सुपने देखा करते।

एक दिन महाराज बागमें बैठे थे। सन्ध्याका समय था। झूबते हुए सूरजकी पीली किरणें गुलाबके खूबसूरत फूलोंसे विदा हो रही थीं, और प्रकृति-माताके इन मनोहर बच्चोंको अपनी उदासीनता दे रही थीं, जैसे हर सखी अपनी सखीके घरसे चलते समय उसके बच्चोंको कुछ न कुछ देना अपना कर्तव्य समझती है। उद्यान-माता अपनी सहेलियोंके वियोगका खयाल कर करके दुखी हो रही थी, और उसके सुन्दर स्नेह-पूर्ण मुहँपर विषादकी काली लकीरें उभर जाती थीं। महाराज हर्ष प्रकृतिका यह भावोत्पादक दृश्य देखते थे, और उसे लिखते जाते थे।

सहसा महाराज की कुँवारी चन्द्रमुखी बेटी उषा उनके सामने आकर खड़ी हो गई। सायङ्कालके अन्धकारमें प्रभातका सूर्य उदय हुआ। महाराज इस समय दूसरी दुनिया में थे। कोई अमीर, कोई वजीर, राज्यकी कोई महान्से महान् घटना भी उनके इस काव्य-काननमें पाँव नहीं रख सकती थी। यह उनकी आज्ञा थी। मगर प्रेमके लिए कोई द्वार भी बन्द नहीं। प्रेम हर जगह पहुँच सकता है। महाराजने क्रोधसे सिर उठाया, मगर राजकुमारीको देखते ही उनके क्रोधने मुस्कराहटका रूप धारण कर लिया।

उषाने अपने कवि और महाराज पिताको पुत्रीकी प्यारभरी दृष्टिसे देखा और फिर पवित्रताकी सादगीसे मुस्कराकर कहा—तो आखिर मैंने आपको आ ही पकड़ा। मैंने महलका एक एक कोना ढूँडा, सङ्गीत-मंडपमें गई, चित्र-भवनमें देखा। परन्तु आप...

एकाएक उसने भोज-पत्र देखा, और रुक गई और उसने सङ्कोचसे सिर झुका लिया। उसको खयाल आया, कि उससे भूल हो गई है। उसने विनय-भावसे महाराजकी तरफ देखा, और कहा—पिताजी, मुझे मालूम न था...

महाराजने उसके इन शब्दोंको न सुना, न उसे अपनी बात पूरी करनेका अवसर दिया। वे उठकर उसके निकट आए, प्यार से काँपता हुआ हाथ उसके सिरपर फेरा, और प्यारके इस बसमें करनेवाले अमलको जारी रखते हुए बोले,—बेटी उषा, ज़रा सूर्यकी तरफ देख। वह अपनी किरणोंको समेट कर काली चादरमें मुँह छिपा रहा है। उसकी किरणें फूलोंके सिरपर हाथ फेरी रही हैं, जिस तरह मैं तेरे सिरपर हाथ फेर रहा हूँ। मेरे दरबारके कवि भी मेरे भाव नहीं समझ सकते। न उनके पास वह आँख है, जो शब्दोंकी सुन्दरताको देख सके, न उनके पास वह कान हैं, जो रंगोंके संगीत को सुन सकें। मगर मुझे विश्वास है कि मेरी बात तू ज़रूर समझेगी। तू मेरी बेटी है। तेरा मन मेरे मनके साँचेमें ढला है।

महाराजने कविता सुनाई। राजकुमारीने कविता सुनी, और उसकी आँखोंकी चमक और होठोंकी मुस्कराहटने महाराजको विश्वास दिला दिया कि बेटीने बापकी कविताका भाव पूर्ण रूपसे समझ लिया है।

इसके बाद बाप—बेटी, दोनों साँझके अँधेरेमें महलको रवाना हुए, और उषाने बापके पीछे भाग कर उनके साथ मिलनेका प्रयत्न करते हुए बालेपनकी सादगीसे कहा—पिताजी मैं भी कविता सीखूँगी।

और महाराज, जिन्होंने इससे पहले अपनी प्यारी बेटीकी छोटीसे छोटी बातको भी नामंजूर न किया था दिलमें सोचते थे, इसे कविता कौन सिखाएगा? यह जवान है, और कुँवारी है, और सुन्दरी है। इधर कवितामें पवित्रता और संयमकी नदियाँ बहा देनेवाले कवि भी कितने साधारण, विषय—वासनाके कैसे उपासक होते हैं, यह सचाई महाराज हर्ष जैसे बुद्धिमान और पण्डित कवि—सम्राट्से छिपी न थी। महाराज गंभीर हो गए।

२

वर्षाके दिन थे। आसमानपर घटाँ लहराती थीं, जैसे दुखी हृदयोंपर आशा छाई रहती है। आशाके यह बादल कभी

बरसते हैं, कभी हवाके भोंकोंसे इधर-उधर उड़ जाते हैं। महाराज हर्षके दरबारमें एक सुन्दर नौजवान दंडी संन्यासी आया, और बोला-राजन्, हम संन्यासी हैं, तीन दिनसे अधिक कहीं नहीं ठहरते। मगर अब वर्षा ऋतु शुरू हो गई है, अब हमारे लिए यात्रा करनेकी मनाही है। हम बादलों और बिजलियोंके यह चार महीने कहीं ठहरना चाहते हैं। क्या तू हमारा प्रबन्ध कर सकता है ?

महाराज ने नवयुवक संन्यासीके चरण छुकर प्रणाम किया और कहा-महाराज, मैं और मेरा सारा राज्य आप की सेवाके लिए उपस्थित है। मानसरोवरके आज्ञाद राजहंसको पिंजरेमें खुश रखना आसान नहीं, मगर मैं अपनी राज-सत्ताकी सम्पूर्ण शक्तियाँ खर्च कर दूँगा और आपको कष्ट न होने दूँगा।

संन्यासीने हाथ उठाकर महाराजको आशीर्वाद दिया, और कहा-भगवान तेरा कल्याण करेंगे।

संन्यासीको राज-महलमें जगह मिल गई, और वह वहाँ वर्षाऋतुका चौमासा काटने लगा। महाराज हर्ष संन्यासीके पास प्रायः आते-जाते रहते थे। धीरे धीरे उनको संन्यासीके सद्गुणोंका ज्ञान हुआ। वह केवल साधु ही न था, बड़ा भारी चित्रकार और बड़ा भारी कवि भी था। और इतना ही नहीं, उसे हर विद्याका पूरा पूरा ज्ञान था। जिस विषयपर बोलता, महाराज हर्ष मुँह देखते रह जाते। इस छोटी उम्रमें यह पांडित्य एक ऐसी बात थी, जो महाराजने कभी न देखी थी। और फिर नवयुवक संन्यासीका प्रफुलित चेहरा, और फूले फूले जंगलमें मीठे जलसे भरे हुए दो नीले तालाबोंकी तरह शान्त आँखें। दुनियांने ऐसी मोहिनी किसी आदमीके मुँहपर कम देखी होगी। महाराज हर्ष संन्यासीसे जितना अधिक मिलते थे, उनके हृदयमें उसका सम्मान उतना ही बढ़ता जाता था। उन्होंने उस छोटी उम्रके साधुकी हर तरहसे परीक्षा की, और वह हर तरहसे खरा सोना निकला। आदमियोंमें कई दोष होते हैं, संन्यासीमें एक भी न था। महाराज एक दिन बड़ी नम्रतासे

बोले—स्वामीजी, राजकुमारी कविता सीखना चाहती है। मैंने बहुत ढूँढा, मगर ऐसा आदमी कोई न मिला, जिसपर विश्वास किया जाए।

संन्यासीने आधी बातसे पूरी बात समझ ली, और बिना संकोचके जवाब दिया—जब तक हम यहाँ हैं, हम पढ़ा दिया करेंगे।

महाराजके मनकी मुराद पूरी हो गई। राजकुमारी कविता सीखने लगी। संन्यासी कविता सिखाने लगा। वर्षा के दिन बीतने लगे।

३

चार महीनेके बाद महाराजने संन्यासीसे पूछा—कहिए राजकुमारी उषाने क्या कुछ सीखा ?

संन्यासीने मनको मोह लेनेवाली बड़ी बड़ी और सतेज आँखोंसे महाराजकी तरफ देखा, और मुस्कराकर जवाब दिया—कवि बाप की बेटी है, बहुत कुछ सीख चुकी। इतने थोड़े समयमें कोई दूसरी कन्या कुछ भी न सीख सकती। मगर राजकुमारीकी कविता देखकर तो हम भी हैरान रह जाते हैं।

महाराजको आश्चर्य हुआ—मगर केवल चार महीनोंमें ?

संन्यासीने जवाब दिया—राजन्, कवि बनते नहीं, पैदा होते हैं। आगकी चिनगारियाँ राख तले छिपी रहती हैं, कविताकी कला सीनेमें सोई रहती है। गुरुका काम केवल यह है कि राख हटाकर कविताकी उन चिनगारियोंको सचेत कर दे, आग अपने आप सुलगने लगेगी। इसके लिए यत्न करनेकी भी जरूरत नहीं। हवाके झोंके ही उसके लिए घीके छोटें बन आते हैं। राजकुमारीमें यह शक्तियाँ पहले ही मौजूद थीं, हमने उन्हें केवल जरा सा कुरेद कर जगा दिया है, और अब वह सुन्दर भाषा और सुन्दर भावोंकी विद्यामें प्रवीण हो चुकी है।

महाराजने उल्लास, अभिमान और आश्चर्यसे अपनी बेटाकी तरफ देखा। वह जमीनकी तरफ देख रही थी।

महाराजने कहा—उषा !

उषाने सिर उठाकर बापकी तरफ देखा, और लजाकर सिर झुका लिया।

महाराज—अपनी कोई कविता सुनाओगी ना ?

राजकुमारीने उसी तरह भूमिकी तरफ देखते हुए सिरके इशारेसे कहा—नहीं।

महाराज—क्यों ?

राजकुमारीने जवाब न दिया।

महाराज—सुनाओ बेटा, कोई अच्छीसी कविता सुनाओ।

उषाने सिरकी साड़ी माथेपर खींचते हुए धीरेसे कहा—आपको पसन्द न आएगी।

अब संन्यासी चुप न रह सका, बोला—उषादेवी, यह तुम्हारी ही नहीं, मेरी भी परीक्षा है। गुरुके पढ़ाएकी लाज रख लेना !

उषाने अपनी कविताओंको उलट-पुलट कर देखा, कि क्या सुनाए, पर निश्चय न कर सकी। बेवसीसे बोली—क्या सुनाऊँ ?

संन्यासी—कुछ सुना दो। मिसरी हर तरफसे मीठी होती है।

राजकुमारीने साहस करके कहा—कवितापर कुछ लिखा है, वही सुनाए देती हूँ।

उसने बोलना चाहा, पर जीभ न खुली। महाराजने संन्यासीसे कहा—आप ही पढ़ दें। इसे शर्म आती है।

संन्यासीने पढ़ना शुरू किया :—

“ कविताका कविसे वही नाता है, जो नव-विवाहिता रमणीका अपने पतिसे है। पति स्त्रीको छूना, पकड़ना,

गले लगाना चाहता है। मगर नव-वधू लजाती है, अपने आपको बचाती है, और एक तरफ भाग जाती है। कविताकी भी यही दशा है। वह कभी कविके सामने आज्ञाकारी नौकरकी तरह सिर झुकाकर खड़ी हो जाती है, कभी उसकी तरफ देखकर बे-अदब लड़केकी तरह हँसती है, कभी लज्जासे मुँह छिपा लेती है, और कभी, जब कवि उसके बहुत निकट पहुँच जाता है, तो चञ्चल हरिणीकी तरह कुलौंचें भर कर दूर चली जाती है। कभी जरा-सी बातमें सिर झुका लेती है, कभी निर्लज्ज-भावसे अपनी दोनों भुजाएँ पतिके गलेमें डाल देती है। ”

राजकुमारीकी यह कविता कैसी मनोहर थी, कैसी भावमयी और इसके साथ ही कितनी सादी ! इसमें पेचीदगी न थी, न कोई ऐसा गोरखधन्वा था, जिसे समझनेके लिए घंटों हैरान और परेशान होना पड़े। खयाल नया भी था, ऊँचा भी था, और अस्वाभाविक न था। यही कविता किसी दूसरेकी होती, तो महाराज उसे निहाल कर देते। मगर बेटीकी लिखी हुई प्रेम और यौवनकी यह अद्भुत कहानी सुनकर उनकी आँखोंमें खून उतर आया। सोचने लगे—यह कुँवारी लड़की स्त्री-पुरुषके प्यार-मुहब्बतकी बातें क्या जाने ? इसने यह दृश्य कब देखा ? उनके दिलमें एक सन्देह पैदा हुआ, उन्होंने नवयुवक संन्यासीको चुभती हुई दृष्टिसे देखा। परन्तु संन्यासी हँस रहा था। उसके मुँहपर जरा भी भय, उसकी आँखोंमें जरा भी संकोच न था। महाराज असमंजसमें पड़ गए। यह चेहरा पापका चेहरा न था। पाप टेढ़ी आँखोंके सामने सिर नहीं उठा सकता, न उसमें हँसनेका साहस होता है। मगर महाराज फिर भी सोचते थे, उषाने प्यारकी कविता कैसे लिखी ?

महाराज कुछ देर चुप-चाप बैठे सोचते रहे, फिर उठकर धीरे धीरे चले गए। संन्यासी महाराजके मनकी बात भाँप गया।

दूसरे दिन महाराजने संन्यासीको विदा करनेके लिए दरबारमें बुलाया, एक हज़ार एक मुहरोंका थाल उन्हें भेंट किया, और कहा—यह आपकी दक्षिणा है।

संन्यासीने मुहरोंके थालको अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा और कहा—राजन्, तू कवियोंमें राजा, और राजाओंमें कवि है। यह दक्षिणा तेरे योग्य नहीं। तू हमें अपने योग्य दक्षिणा दे।

महाराजने आश्चर्यसे संन्यासीकी तरफ देखा। मगर संन्यासी मुस्करा रहा था—हम मुँहमाँगी दक्षिणा चाहते हैं।

महाराजने अधीनतासे।सर झुकाकर कहा—संन्यासी आज्ञा दे, राजा पालन करेगा।

सारे दरबारी हैरान थे, कि देखें संन्यासी क्या माँगता है ?

संन्यासी बोला—राजन्, कोई अपनी बुद्धियासी कविता सुना दे। हमारी यही दक्षिणा होगी।

दरबारियोंकी आँखें खुली रह गईं। वे सोचते थे, संन्यासीने सुनहरा अवसर खो दिया।

महाराजने पूछा—किस विषयपर ?

संन्यासी—किसी गरीबके घरका दृश्य दिखा दे।

महाराजने भोज-पत्र लिया और एक तरफ बैठ गए। आध घंटेके बाद महाराज बोले—कविता तैयार है।

संन्यासी—पढ़ो।

महाराजने कविता पढ़नी शुरू की—

“ वर्षा ऋतु है, आसमानपर काले बादल उमड़े हुए हैं।

मगर इससे भी काले बादल गरीब हतभागिनी बुद्धियाके मनमें छाए हुए हैं। आसमानके बादलोंमें कभी कभी

बिजली भी चमक जाती है। मगर बुढ़ियाके मनमें सदा अँधेरा है। वहाँ बिजली कभी नहीं चमकती।

छतसे पानी टपक रहा है, और इस समाप्त न होनेवाले टपकेसे बुढ़ियाके कच्चे फर्शमें जगह जगहपर गढ़े बन गए हैं। पानीकी बूँदें उन गढ़ोंमें गिरती हैं, तो गढ़ोंका पानी चारों तरफ उड़ता है, और आसपासके फर्शको भी गीला कर देता है। मगर इनसे भी गहरे गढ़े बुढ़ियाके दिलमें बने हुए हैं।

सायङ्कालके अँधेरेमें लोग अपने अपने घरोंके दीपक जला रहे हैं, मगर बुढ़ियाके दीपक का तेल, कई दिन हुए समाप्त हो चुका है, और बत्ती कभी की जल चुकी है।

उसके चूल्हेमें कई दिनसे आग नहीं सुलगती। वहाँ मकड़ीने जाला बुन दिया है। उसके घरके चूहे भाग गए हैं, और चमगादड़ इधर-उधर उड़ते फिरते हैं।”

यह कविता नहीं थी, किसी हत-भागके घरका चित्र था; मगर कितना सजीव, कैसा हृदय-वेधक ! दरबारियोंने ‘वाह-वा’ की ध्वनिसे दरबार सिरपर उठा लिया, मगर संन्यासी चुप था।

महाराजने उसकी तरफ देखा। संन्यासीने कहा—राजन्, तेरी कविता सचमुच बहुत सुन्दर और भावमयी है। मगर...”

दरबारी, वज़ीर, राजा, सब संन्यासीकी तरफ देखने लगे। संन्यासीने कहा—मगर मालूम होता है, तू किसी राजेका पुत्र नहीं, किसी गरीब कङ्गालका बेटा है।

दरबारी सन्नाटेमें आ गए। महाराजकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने तलवारकी म्यानपर हाथ रख कर कहा—संन्यासी, मैं यह अपमान नहीं सह सकता। तू मुझे गालियाँ दे रहा है। और मेरे हाथमें तलवार है।

संन्यासी—तूने यह कविता कैसे तैयार की ? तू राजा है, तूने महलों में जन्म लिया है, तू चांदी-सोने में पला है, तूने गरीबी नहीं देखी । तू किसी गरीबके घरका हाल क्या जाने ?

महाराजने उसी तरह क्रोध-भरे स्वरमें कहा—काव्य-कल्पनासे कवि वह कुछ देख सकता है, जो दूसरे खुली आँखोंसे भी नहीं देख सकते ।

संन्यासीने मुस्कराकर उत्तर दिया—कविराज, तूने ठीक कहा । लेकिन अगर तू राजेका बेटा होकर भी काव्य-कल्पनाकी सहायतासे गरीबके घरकी दशा देख सकता है, तो तेरी कुँवारी बेटी स्त्री-पुरुषकी प्रेम-लीलाका हाल क्यों नहीं जान सकती ? तूने मुझे सन्देहकी दृष्टिसे देखा था । तेरी आँखें लाल हो गई थीं । तूने समझा था, संन्यासीकी इन्द्रियाँ उसके वशमें नहीं । मगर तेरा सन्देह निर्मूल था । मैं संन्यासी हूँ, दुनियाकी हर लड़की मेरी पुत्री है ।

यह कहते कहते संन्यासी ने अपना कमंडल उठाया, और दरबारसे बाहर निकल गया ।

महाराजकी आँखें खुल गईं । मगर उनके मुँहसे एक भी शब्द न निकला ।



चित्रकार

१

खट, खट, खट !

किसीने ज़ीनेका द्वार खटखटाया। ठाकुरसिंह चित्र बनानेमें लीन थे। उन्होंने आवाज़ नहीं सुनी। उनकी स्त्री गुजरीने धीरेसे कहा— कोई आया है।

ठाकुरसिंहने चित्रपर ब्रश फेरते-फेरते मुस्कराकर जवाब दिया— तो चलो, उड़कर अपने घोंसले में छिप जाओ, नहीं कोई देख लेगा, तो कहेगा, जिसकी स्त्री अपने कपड़े भी साफ नहीं रखती, वह चित्र क्या खाक बनाता होगा ?

गुजरीने रंगके प्यालेमें उँगली डुबोकर अपने चित्रकार पतिकी क़मीज़पर दाग़ लगा दिया, और शोस्त्रीसे कहा—सिंहजी, पहले अपने कपड़े तो देख लो, इसके बाद कुछ कहनेका साहस करना।

ठाकुरसिंह चौंककर परे सरक ग़ए, और बोले—अरे ! मेरी क़मीज़ ख़राब कर दी। कैसी पग़ली है ! बाहर मिलनेवाले खड़े हैं, यह अन्दर होली खेलती है !

गुजरीने रंगसे भरी हुई उँगली ठाकुरसिंहके मुँहके पास ले जाकर कहा—ख़बरदार ! तुम बोले, और मैंने तुम्हारा सारा मुँह रंग दिया।

ठाकुरसिंह—मेरा ही मुँह रंगना जानती हो, या कुछ और भी

सीखा है ? अगर किसी चित्रका मुँह रंग सको, तो चार पैसे न कमा लो ।

गुजरी—तुम फिर बोले !

ठाकुरसिंह (दबकर)—बहुत अच्छा जमादार साहब ! अब माफ़ कर दें । क्या मजाल जो एक भी शब्द बोल जाऊँ । वाह वा ! भई स्त्री तो हमें मिली है । स्त्री भी है, जमादार भी है ।

गुजरी (बनावटी क्रोधसे)—टुम फिर बोलने मांगटा । चूप रहो । कोई लोग आया है ।

ठाकुरसिंह गुजरीकी इस प्रेमपूर्ण शरारतपर लोट-पोट हो गए । वे उसे उठाकर कलेजेमें बिठा लेना चाहते थे, जहाँ उसे दुनियाकी गर्म हवा भी न लगे । इतनेमें द्वारपर फिर खटका हुआ ।

गुजरीने दबे पाँव जाकर जीनेकी ज़ंजीर खोल दी, और भागकर अपने कमरेमें चली गई । ठाकुरसिंहने ऊँची आवाज़से कहा—चले आइए, दरवाज़ा खुला है ।

आनेवाला कीमती लिबास पहने था । शकल-सूरतसे रोआब टपकता था । उसने ठाकुरसिंहको सिरसे पाँव तक देखते हुए कहा—मैं सरदार ठाकुरसिंह साहब चित्रकारसे मिलना चाहता हूँ ।

ठाकुरसिंह की आँखें भुक गईं । खयाल आया, मेरे कपड़े इतने साफ़ नहीं, जितने होने चाहिए । उन्हें ऐसा संदेह हुआ, जैसे मुँहपर मिट्टी लगी है, जैसे बाज़ारमें जात-जाते कपड़ा फट गया है । मगर क्या हो सकता था ? धीरेसे बोले—फरमाइए, मैं हाज़िर हूँ ।

यह कहकर उन्होंने आनेवाले के सामने कुरसी रख दी । आनेवाला कुरसीपर बैठकर बोला—खूब ! मैं समझता था, आप बुढ़े होंगे । मगर मेरा खयाल झूठा निकला । आपकी आयु तो बहुत छोटी मालूम होती है । पचीस-छब्बीस वर्षसे अधिक तो न होगी ।

ठाकुरसिंह—जी नहीं, मेरी उम्र तीस वर्षके लगभग है ।

आगन्तुक—फिर भी कम है। इस उम्रमें ऐसे चित्र बना लेना आपही का काम है। मैंने आपके कई चित्र देखे हैं। देखकर जी खुश हो जाता है। ऐसा मालूम होता है, जैसे वह चित्र नहीं, जीते-जागते जीव हैं। कभी-कभी सन्देह होता है कि वह अभी मुँह खोलकर बोलने लगेंगे। अभी चलने लगेंगे। मुझे आपसे मिलनेकी बड़ी चाह थी। आज चला आया।

ठाकुरसिंह—यह आपकी कृपा है, मैं तो चित्रकार कहानेके भी योग्य नहीं। यह बड़ी भारी विद्या है। इसका पार किसने पाया है।

आगन्तुक (सुना अनसुना करके)—आपके चित्र खूब विकते होंगे। ऐसी अच्छी चीज़ें न बिकेंगी, तो और क्या बिकेगा? मगर (कमरा देखकर) आपने मकान अच्छा नहीं लिया। यह आप जैसे चित्रकारके योग्य नहीं। जो देखेगा, यही कहेगा कि नाम बड़े और दर्शन थोड़े।

ठाकुरसिंह—कोई अच्छी जगह मिल जाए, तो मैं आज बदल लूँ। मगर जगह मिलती ही नहीं।

आगन्तुक—मालरोड पर चलिए। वहाँ आपका कारबार और भी चमक उठेगा। यहाँ जो चित्र पचासको बिकता है, वहाँ सौ रुपयेमें बिकेगा। मोतीको मखमलके टुकड़ेपर रख दिया जाए, तो उसकी चमक नहीं बढ़ती, मगर मोल बढ़ जाता है। मेरा खयाल है, मालपर चलकर आप थोड़े ही समयमें कहींसे कहीं पहुँच जाएंगे। अच्छी जगह सफलता की पहली सीढ़ी है।

ठाकुरसिंह—आप जैसे सज्जनोंकी शुभ-कामना फल जाए, तो एक महीनेमें सोनेके महल खड़े कर लूँ। मगर अन्धा संसार रुपयेकी कद्र करता है, कलाकी नहीं। यहाँ कला कदम कदम पर ठोकरें खाती है।

आगन्तुकने आश्चर्यकी दृष्टिसे नौजवान चित्रकारकी तरफ देखा, और कहा—जब तक किसी सहृदयकी नज़र न चढ़ जाए।

ठाकुरसिंहने ब्रश हाथमें लिया, और चित्रकी तरफ देखकर

कहा—मगर सहृदय सज्जन संसारमें हैं कहाँ ? अमृतके समान इस वस्तुका भी नाम सुना है, इसे देखा नहीं है।

यह शब्द नहीं थे, चित्रकारके दिलके घाव थे। आगन्तुककी आँखोंके सामनेसे परदा हट गया। ज़रूर यह आदमी निर्दयी संसारका शिकार है, ज़रूर इसका दिल दुखा हुआ है। वर्ना इसके मुँहसे यह शब्द कभी न निकलते।

थोड़ी देर बाद आगन्तुकने कहा—मैं रियासत सकंधीरका दीवान हूँ। मेरा नाम हरजस राय है। महाराजा साहब शौकीन आदमी हैं, और चित्रोंका तो उन्हें खूब है। उन्हें खुश करना हो, तो कोई बढ़िया चित्र भेंट कर दो, फिर जो चाहो, करा लो। ज़रा इन्कार न करेंगे। दो महीने बाद उनका जन्म-दिन है। मैं इस अवसरपर उन्हें एक बहुत ही बढ़िया चित्र भेंट करना चाहता हूँ। क्रीमतकी परवा नहीं, मैं मुँह-माँगा दाम दूँगा। मगर चित्र ऐसा हो कि एक बार तो महाराज फड़क उठें। कहें ऐसा चित्र तुम्हें कैसे मिल गया। बस ! मैं महाराजके इन चार शब्दोंका भूखा हूँ।

ठाकुरसिंहके मनमें आशाकी गुदगुदी होने लगी। दीवान साहबकी तरफ देखकर बोले—अपनी उमरमें मुझे पहली बार ऐसे सज्जनके दर्शन हुए हैं, जिसके पास कला देखनेवाली आँख, और क्रूर करनेवाला दिल दोनों हैं।

दीवान साहब-बस, ऐसी चीज़ बनाओ कि महाराज उछल पड़ें।

ठाकुरसिंह-अपने मुँहसे अपनी बड़ाई करना अच्छा नहीं लगता। मगर मैं आपको ऐसी चीज़ दूँगा कि आप खुश हो जाएँ।

दीवान साहब-आपके जो चित्र इस समय तक देख चुका हूँ, उनसे बढ़िया होगा न ?

ठाकुरसिंह-इसकी चिंता न करें। रागीको जब पता लग जाए, कि उसके सामने राग-विद्याके जानकार बैठे हैं तो उस समय वह साधारण राग नहीं गाता।

दीवान साहब खड़े हो गए और बोले—तो आप कब तक मुझे चित्र दे देंगे ।

ठाकुरसिंह भी विदा करनेको खड़े हो गए और दिलमें हिसाब करके बोले—एक महीनेसे कम समयमें तो तैयार न हो सकेगा ।

दीवारपर मोटे अक्षरोंमें लिखा था—आधे दाम पेशगी । दीवान साहबने यह नियम आते ही पढ़ लिया था । ठाकुरसिंह मनमें सोचते थे, अभी बटुआ खोलते हैं, अभी नोट निकालते हैं । देखें क्या देते हैं ? अमीर आदमी हैं, रुपये पैसे की परवाह नहीं और काम बढ़िया मांगते हैं । पांच सात सौसे कम क्या देंगे ? मगर दीवान साहब उठे, और फिर आनेको कहकर नीचे उतर गए । ठाकुरसिंह मुंह देखते ही रह गए । उमड़ी हुई काली घटा देखकर किसानका दिल नाचने लगा था । उसे खुशी हुई थी । मगर हवाके भोंकोंने घटाको उड़ा दिया । पानी की एक बूंद भी न बरसी ।

२

गुजरी अपने कमरेके अन्दरसे यह सब कुछ देख रही थी । दीवान साहबके जाते ही उसने कमरेसे निकल कर जीनेका द्वार बन्द कर दिया, और प्यारसे अपने निराश पतिका हाथ थाम लिया । ठाकुरसिंहकी आँखें सजल हो गई थीं । गुजरीने सहानुभूतिपूर्ण स्वरमें कहा—तुम अपना जी क्यों थोड़ा करते हो ? इस समय रुपया नहीं मिला, न सही, घबराने की क्या बात है ? मुझे तो ज़रा भी दुःख नहीं हुआ । उलटी खुशी है । मुझे तो विश्वास है कि यह आदमी हमारा सच्चा दोस्त होगा । मेरे दिलमें कोई कह रहा है कि इससे हमें लाभ पहुँचेगा । मगर उसे क्या मालूम कि यह पूरे कंगाल हैं, इनके पास पैसा भी नहीं । यह मकान, यह असबाब यह बिजली देखकर किसीको यह शक भी नहीं हो सकता है । ज़रा सोचो ।

ठाकुरसिंहने गुजरीकी तरफ़ देखा, और ठंडी साँस भरकर जवाब

दिया—आज करवा चौथ :: है, तुमने सुहागका व्रत रखा है, और हमारे पास एक पैसा भी नहीं। लोग खुशियां मना रहे हैं, हम बैठे भाग्यको रोते हैं।

गुजरी—मगर यह तो अपनी अपनी किस्मत है। जो किस्मतमें लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है ? बाकी रही करवा चौथके व्रतकी बात, उसकी चिन्ता न करो। कहींसे आ जाएगा, खा लेंगे; न आएगा, भूखे सो रहेंगे।

ठाकुरसिंह—और नौकरको क्या खिलाएंगे ? वह तो बच्चा है, समझता ही नहीं कि हाथ तंग ह, चुप रह जाऊं। हमारी भी क्या शान है, अपने खानेको रोटी नहीं, नौकर रख लिया !

गुजरी—इसका प्रबन्ध भी हो जाएगा। तुम अपना दिल खराब न करो, नहीं बीमार हो जाओगे।

ठाकुरसिंहको स्त्रीकी इन बातोंसे धीरज हुआ। वह समझते थे, दीवान साहबके जाते ही गुजरी उन्हें गालियाँ देने लगेगी, तक्रदीरको कोसने लगेगी, मगर पतिको उदास देखकर वह आशा की देवी बन गई, जो कभी निराश नहीं होती। ठाकुरसिंहने उसे श्रद्धा-भावसे देखकर कहा—जी चाहता है, इन चित्रोंको आग लगाकर कहीं निकल जाएँ। काम करानेको सभी हैं, पैसे देते समय प्राण निकलते हैं। कभी कहते हैं कल आओ, कभी कहते हैं परसों आओ।

गुजरी—यही तो खराबी है, वर्ना हमें ज़रा भी तकलीफ न हो। देखो, गंगू गया है, कुछ लाता है, या सब फिर आनेको कहते हैं।

ठाकुरसिंह—मुझे डर है, आज कोई भी न देगा।

गुजरी—वाह गुरूपर विश्वास रखो। (चित्रकी तरफ इशारा करके) यह चित्र किसका है ?

ठाकुर०—‘शौकत-हिन्द’ के सम्पादक का।

गुजरी—कैसा आदमी है ?

:: पंजाबमें सुहागका व्रत है, जब स्त्रियाँ चाँदका अर्घ्य देकर खाना खाती हैं।



ठाकुर—आदमी तो शरीफ है ।

गुजरी—पैसेवाला भी है, या हमीं जैसा भूखा बंगाली है ?

ठाकुर—आदमी तो खानदानी है । बाकी हमारा प्रारब्ध ।

गुजरी—तसवीर बनाकर ले जाओ, तो पैसे दे देगा या नहीं ?

ठाकुर—अब मैं किसीके मनका हाल क्या जानूँ । हाँ, आशा तो है, कि दे देगा ।

गुजरी—तो इसे पूरा क्यों नहीं करते ! कितने रुपये मिल जाएँगे ?

ठाकुर—तीस माँगे थे, उसने बीस कहे । पचीस पर फ़ैसला हो जाएगा ।

गुजरीके चेहरेपर आशाकी आभा झलकने लगी । हँसकर बोली—जालडी खाटम करो ! टाइम थोड़ा है, वर्ना जामाडार खफा हो जाएगा, टो टोमारा कमीज रंग देगा ।

अब वह फिर वही हँसमुख, वही बेपरवा वही आशावादी गुजरी थी, जो भूखी रहकर भी हँसती थी, खेलती थी, चहकती थी ।

ठाकुरसिंह चित्र बनाने लगे । उन्होंने कल रातसे कुछ खाया न था । प्रातःकाल भूख मालूम हुई थी, मगर इस समय प्यास भी न थी । इन्हें शरीरमें एक नई स्फूर्तिका अनुभव होता था । कभी यह रंग धोलते, कभी वह रंग धोलते और चित्र बनाते जाते थे । उनका हाथ आज कैसा तेज़ चलता था ! मन काममें डूबा हुआ था । इतनी एकाग्रता उनमें कभी न थी । यहाँ तक कि पाँच बज गए और उन्होंने सिर न उठाया । दफ्तरोंके बाबुओंको छुट्टी हो गई । पंखी भी अपना बसेरा लेने लगे । गऊँ और भैंसें भी अपने घरोंको आ गईं । मगर ठाकुरसिंहको आराम कहाँ ! वह अभी तक उसी लगनसे चित्र बनानेमें लीन थे । आशामें कितना जीवन है, कितनी जागृति, कितनी ज्योति ! यों कहनेको एक कच्चा धागा है, मगर इसी कच्चे धागेने सारे संसारको बांध रखा है । इसी के सहारे सारी दुनिया उड़ती फिरती है ।

इतनेमें गंगू आया । स्त्री-पुरुष दोनोंका हृदय धड़कने लगा । कुछ

लाया है, या नहीं ? एक मीठा शब्द सुनकर दोनोंके हृदय खिल जाएंगे । और अगर वह खाली हाथ लौटा हो तो ? आदमी कितना पराधीन कितना दूसरोंके बसमें है ! ठाकुरसिंह उससे पूछते हुए भी डरते थे । मगर स्त्री अबला होनेपर भी हिम्मत नहीं हारती । उसने गंगूसे कहा—तू सारा दिन बाहर गँवा आया । बोल, कुछ मिला भी या नहीं ?

गंगूने जवाब दिया—कहींसे भी नहीं मिला ।

ठाकुरसिंहके दिलमें किसीने छुरा भोंक दिया । तलमलाकर बोले—अमृत फ़ैक्टरीवालोंने क्या कहा ?

गंगू—कहा कि सरदार साहब कहीं बाहर गए हैं । आएंगे, तो भिजवा देंगे, हम स्वयं कुछ नहीं कर सकते ।

ठाकुर—और लन्दन-वाच कम्पनीवाले ?

गंगू—बोले, आज बिक्री नहीं हुई, कल आना ।

ठाकुर—और राय साहब होतूराम ?

गंगू—वह अभी कराचीसे नहीं आए ।

ठाकुरसिंह (क्रोधसे)—और तू अब तक कहाँ मर गया था ? पहले चला आता, तो कहीं और ही भेज देता । अब मैं क्या करूँ ?

गंगूने सहमकर जवाब दिया—मियाँ याकूबकी तरफ़ चला गया था । उन्होंने बिठा लिया कि अभी मनी आर्डर आते हैं, तो लेकर जाना । वहीं बैठ रहा । आखिर चला आया । वे तो अब भी न आने देते ते । कहते थे, ज़रा और ठहरो, शायद कोई देनेवाला ही आ जाए ।

ठाकुरसिंह बड़ाबड़ाते हुए उठे, और चित्र लेकर बाहर चले गए ।

गुजरी रौने लगी । संध्या हो चली थी । सुहागन स्त्रियाँ अपने-अपने थालोंमें मिठाई, बादाम, घीके दीए रखकर सुहागन रानीकी कथा सुनने जा रही थीं । इस समय उनके चेहरे प्रसन्न थे ! आँखें प्रकाशपूर्ण ! आज उन्होंने सुहागका व्रत रखा था, आज वह

पतिकी मंगल-कामना करने जा रही थी। मगर गुजरी क्या करे ? उसके प्राण पिंजरेमें फँसे हुए पंछीके समान फड़फड़ा रहे थे जिसमें उड़नेकी शक्ति न हो। उसने ठंडी आह भरी, और छतकी तरफ देखने लगी।

इतनेमें उसकी पड़ोसिनने साथके छज्जेसे पुकारकर कहा—क्यों बहन गुजरी ! कथा सुनने न चलेगी ?

गुजरी का दिल अन्दरही अन्दर फूट-फूटकर रोने लगा। वह कैसी अभागिन है, जो सुहाग-व्रतके दिन सुहाग-कथा भी नहीं सुन सकती। मगर वह पड़ोसिनपर अपनी विवशता प्रगट भी नहीं करना चाहती थी, आवाज सँभालकर बोली—बहनजी, मैं तो सुन भी आई।

पड़ोसिन चली गई, गुजरी फिर उदास हो गई। उसे ज़ालिम अमीरोंपर रह-रहकर क्रोध आता था, जो गरीब मजदूरोंसे काम करा लेते हैं, पैसे समयपर नहीं देते। इस समय वह चंडिका देवी बनी हुई थी। अगर कोई अमीर उसके सामने आ जाता, तो उसका खून पानी एक कर देती। वह सोचती थी, सबने इन्कार कर दिया, किसीने यह भी न सोचा कि चलो दे दो, त्योहारका दिन है, उसे भी ज़रूरत होगी। ऐसे ही पापोंके कारण तो वर्षा नहीं होती, इसी लिए तो अकाल पड़ते हैं।

आध घण्टा बीत गया, गुजरी उसी तरह बैठी रही। उसके चारों तरफ अँधेरा था, मगर उसने बत्ती नहीं जलाई। यह बाहरका अँधेरा उसके दिलके अँधेरेके सामने कितना तुच्छ था ! इतनेमें गंगूने आकर कहा—बीबीजी, कुछ खानेको है, या नहीं ? बड़ी भूख लगी है।

बात मामूली थी, मगर गुजरी की देहमें आग लग गई। जैसे सूखी बारूद रगड़से भी जल उठती है। गरजकर बोली—तू आदमी है, या गधा ? देखता नहीं, कहींसे भी पैसे नहीं मिले। मुरखवत तो इन लोगोंको छू भी नहीं गई। मालिक मरे या जिए, इनकी बलासे। इन्हें अपने कामसे काम है।

गंगू रोटी खानेके बदले गालियाँ खाकर चुप चाप ऊपर जा बैठा। उसे अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप हो रहा था। सोचता था। क्यों रोटी मांगने चला गया ? क्या एक दिन भूखा न रह सकता था ? वे भी तो भूखे हैं। आप खाएंगे, तो मुझे भी जरूर देंगे। थोड़ी देर बाद गुजरी हिम्मत करके उठी, और पड़ोसिनको बुलाकर बोली—बहन, ज़रा एक चार आनेके पैसे देना। वह बाहर गए हैं, मेरे पास दस रुपयेका नोट है, रेज़गारी नहीं है।

मगर उसका दिल धक-धक कर रहा था कि अगर इसने भी न दिए, तो क्या इज्जत रह जाएगी। मगर पड़ोसिनने चवन्नी दे दी। गुजरीको यह चवन्नी नहीं, चार सौ रुपये थे। भागी भागी ऊपर चढ़ गई और गंगूसे बोली—जा, जाकर दो आनेके चावल ले आ, एक आनेका दूध, एक आनेकी चीनी। मगर जल्दी आना। तेरी आदत है, जहाँ चार आदमी देखे, वहीं खड़ा हो गया। मगर यह समय देर करने का नहीं। भागकर जा, भागकर आ।

गंगूने चवन्नी ली, और नीचे उतर गया। इधर गुजरीने जल्दी जल्दी आग जलाई, और गंगूकी प्रतीक्षा करने लगी। मगर आध घंटा बीत गया, और गंगू न आया। आखिर कहाँ चला गया ? इतनी देर कहाँ लग गई ? बनियेकी दूकान तो दूर नहीं, तीन-चार मिनटका रास्ता है, जरूर कहीं खड़ा हो गया होगा। इतना भी खयाल नहीं कि आज त्योहारका दिन है। सरदार साहब आते हैं, तो कहती हूँ, मैं बाज़ आई ऐसे नौकरसे, इसे जवाब दे दो। इसे समय कुसमयका भी विचार नहीं। यहाँ आग जल रही है, वह कहीं खड़ा गप-शप लड़ा रहा होगा।

मगर आध घण्टा और गुज़र गया और गंगू फिर भी न आया। अब गुजरीके क्रोधने चिन्ताका रूप धारण कर लिया। सोचने लगी, कहीं किसी गाड़ी तले न आ गया हो। आखें बन्द करके चलता है, सामने तो देखता ही नहीं। गुजरीका दिल दहल गया, मानो गंगू सचमुच गाड़ी तले कुचला गया है। इतनेमें गंगू

उसके सामने आकर खड़ा हो गया, और सिसक-सिसककर रोने लगा। गुजरीने घबराकर पूछा—क्यों ! क्या हुआ ?

गंगूने रोते-रोते जवाब दिया—चवन्नी कहीं गिर गई।

गुजरीने ठंडी साँस भरी और निराशासे वहीं बैठ गई। चोट इतनी थी, कि उसके मुँह से आह भी न निकली।

३

उधर ठाकुरसिंह तस्वीर लेकर शौकत हिन्द के दफ्तरमें पहुँचे, और सम्पादकसे बोले—लीजिए जनाब, तस्वीर तय्यार हो गई।

सम्पादक साहबने तस्वीरको उड़ती हुई नज़रसे देखा, और बेपरवाईसे मेज़के एक कोनेकी तरफ इशारा करके कहा—रख दीजिए।

और यह क्रूर थी उस चीज़की, जिसे चित्रकारने भूखा प्यासा रहकर बनाया था, जिसमें उसने अपना दिल लगाया था, जिसपर उसने अपने प्राण छिड़के थे, जिसपर उसने बड़ी बड़ी आशाएं बांधी थीं। क्या इसके लिए इस पाषाण-हृदय अन्धे व्यापारीके पास प्रशंसाके दो शब्द भी न थे ? केवल दो शब्दोंसे उनको सन्तोष हो जाता, वे अपनी थकावट भूल जाते। समझते कि दुनिया अभी क्रूरदानोंसे खाली नहीं हो गई। रुपया नहीं देते, प्रशंसा तो करते हैं। कलाकारोंके लिए यही बहुत है। मगर यहाँ वह भी न था। ठाकुर-सिंहके जीमें आया कि तस्वीर उठा लूँ और कहूँ, जनाब, मैं तस्वीर आपके हाथ न बेचूँगा। अगर आपको मेरी कलाकी परवा नहीं, तो मुझे भी आपके धनकी परवा नहीं। मगर फिर घरका और घरकी दशाका ध्यान आ गया। गरीबीने क्रोधका गला घोट दिया। तस्वीरको हाथमें लेकर बोले—आप ज़रा देख तो लेते।

सम्पादक—कल देखूँगा, इस समय रहने दीजिए।

ठाकुर—बहुत बढ़िया है, आप खुश हो जाएंगे।

सम्पादक—यह कहनेकी जरूरत ही नहीं। आप जिस चीज़को हाथ लगाएंगे, वही सुन्दर बन जाएगी। सौन्दर्य तो आपके हाथोंका मेल है।

ठाकुर—आप तो मुझे बनाते हैं।

सम्पादक—जी नहीं। मेरा सचमुच यही विचार है।

ठाकुर—इसपर पूरे तीन दिन लगे हैं।

सम्पादक—आप चाहते, तो एक दिनमें बना लेते। बल्कि अगर आप डटकर बैठ जाते, तो यह तीन चार घण्टोंसे ज्यादाका काम न था।

ठाकुर—जी नहीं, अच्छी चीज़ अच्छा समय खाए बिना जवान नहीं होती।

सम्पादक—अरे ! आप तो कविता भी करने लगे।

ठाकुर—आपकी मेहरबानी हो जाए, तो कविता भी करने लगूँगा। अब आज्ञा दीजिए, अँधेरा हो रहा है।

सम्पादक—बहुत अच्छा। फिर किसी दिन आइएगा, एक और भी तस्वीर बनवाना है।

ठाकुर—कहिए, कल ही आ जाऊँ ? और इस तस्वीरके रुपये ?

सम्पादक—इतनी जल्दी !

ठाकुर—बहुत जरूरत है।

सम्पादक—तो दो चार दिनमें मिल जाएँगे।

ठाकुर—न साहब, ऐसा जुल्म न कीजिएगा। बड़ी आस लेकर आया हूँ। अभी दिलवा दीजिए।

सम्पादक—(कुरसीसे उठते हुए) दो चार दिनसे पहले तो किसी तरह भी न दे सकूँगा।

ठाकुर—बड़ी जरूरत है। पाँच रुपये ही दे दें इस समय।

सम्पादक—(सिर हिलाकर) इस समय अगर पाँच पैसे माँगें, वह भी न मिलेंगे। बिल्कुल फाँक हूँ।

ठाकुर—आपने तो कहा था, तस्वीर बनाकर लाओ, रुपये उसी समय मिल जाएंगे।

सम्पादक—मालूम होता है, आप हमें चोर समझ रहे हैं, जो आपकी तस्वीर लेकर भाग जाएंगे। यहाँ छै-छै महीने गुज़र जाते हैं, कोई तगादा भी नहीं करता।

ठाकुर—उनके पास खानेको होगा, तगादा न करते होंगे। हम मजदूर आदमी हैं, जो कमाते हैं, वही खाते हैं। हम कैसे बैठे रहें? हमें तो इसी समय चाहिए।

सम्पादक—आप तो पंजे भाड़कर पीछे पड़ गए। एक बार कह दिया, इस समय नहीं हैं; माफ़ करो। मगर जनाब अपनी ही कहे जाते हैं। मेरी सुनते ही नहीं।

अब ठाकुरसिंह भी तेज़ हो गए, बोले—अगर आपके पास रुपये न थे, तो आपने काम क्यों कराया! मैं यों निराश तो न होता? जिसके पास नक़्द रुपये होते, उसका काम करता और काम करनेके साथ ही रुपये ले लेता। काम ख़त्म कर लो, और फिर बैठे पैसोंका इंतज़ार करो; यह तो मुसीबत है। इस से बेकारी भली। उसमें और नहीं, आराम तो मिलता है।

सम्पादक महोदय सन्नाटेमें आ गए। सोचने लगे, यह आदमी कितना कमीना है! इसे मेरे मान अपमान का ज़रा भी ख़याल नहीं। थोड़ी देर बाद बोले—तो आप अपनी तस्वीर उठाकर ले जाइए, मुझे इसकी ज़रूरत नहीं।

ठाकुरसिंह (आश्चर्यसे)—अपने कहकर बनवाई है, और मैंने आपके लिए बनाई है। फिर आप कैसे कह सकते हैं, कि आपको ज़रूरत नहीं? अगर ज़रूरत न थी, तो बनवाई क्यों?

सम्पादक—मगर मुझे क्या मालूम था कि आप ऐसी बेहूदा चीज़ बना लाएंगे! इससे अच्छी तस्वीर तो स्कूलके लौंडे भी बना सकते हैं। और यह भी किसी लौंडे ही की बनाई हुई है, आपकी

नहीं। चले हैं हमें चकमा देने। मगर हम भी जनाब हाथ पहचानते हैं, हाथ ! यह तस्वीर आपने नहीं बनाई।

ठाकुर—मगर तस्वीर तो आपने अभी देखी ही नहीं।

सम्पादक—आते ही देख ली। मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं। पत्रमें छाप दूँ, तो लोग कहें, सम्पादक पागल हो गया है। खरीदारी छोड़ दें।

ठाकुरसिंहका सिर चकराने लगा। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। तस्वीर लेकर चुपचाप बाहर निकल आए। पछताते थे कि क्यों बात बढ़ाई ? रुपये आज न मिलते, दो दिन बाद मिल जाते, अब वह भी गए। तस्वीर इनकी है, दूसरा कोई इसके लिए पैसा भी न देगा। वह चाहते थे, सम्पादक बुलाकर तस्वीर माँग ले, तो चुपचाप दे दूँ, चूँ भी न करूँ। मगर वह दूर चले आए, और उन्हें किसीने भी न बुलाया। जो थोड़ी बहुत आशा थी, वह भी न रही।

अब चारों ओर अँधेरा था। क्या करें, क्या न करें ! बहुत सोचते थे, मगर उन्हें कोई आदमी दिखाई न देता था, जो इस विपदाके समय उनकी सहायता करे। उन्हें घर जाते हुए भी डर लगता था। गुजरीको क्या मुँह दिखाएंगे ? आज करवा-चौथका व्रत है, स्त्रियाँ चन्द्रमाको अर्घ्य देकर मिठाई और फल खाएंगी। हमारे घरमें आटा भी नहीं। और आटा क्या घरमें सिवाय लकड़ियोंके और कोई भी चीज़ नहीं बची, सब कुछ चुक चुका गया। ठाकुरसिंह शहरसे बाहर निकल गए, और पैरेडमें बैठकर चिन्तामें डूब गए। कभी सोचते, नदीमें डूब मरें; ऐसे जीवनसे तो मौत ही भली। कभी खयाल आता, साधु हो जाएँ, गुजरीको उसका पिता ले जाएगा। चार दिन याद करकरके रोएंगी, फिर भूल जाएंगी। मगर उनमें इतना साहस भी न था।

कुछ देरके बाद वह उठे, और शहरकी तरफ खाना हुए। पहले धीरे धीरे चले, फिर तेज़ हो गए, आशाके निकट पहुँचकर हम

अधीर हो जाते हैं, हमारी शान्ति भंग हो जाती है। अब उन्हें एक मित्रका खयाल आ गया था। शायद वह दो चार रुपये दे दे।

४

रातके साढ़े आठ बजे थे, करवा-चौथका चाँद निकलनेमें थोड़ी देर बाक़ी थी। हर मकानपर स्त्रियाँ खड़ी थीं, और आकाश की ओर देखती थीं, कि चाँद निकला है, या नहीं? जो छोटी लड़कियाँ भूखसे अधीर हो रही थीं, वह कहती थीं, चाँदको भी आज ही बैर लेना था, पहले तो इतनी देर कभी न होती थी। जो स्यानी थीं, वे मुस्कराती थीं—अभी निकलेगा।

मगर गुजरी अपने अँधेरे कमरेमें आँधे मुँह लेटी थी। वह चाँद की क्या प्रतीक्षा करती, गरीबके पास अर्घ्य देनेके लिए कच्ची लस्सी भी न थी, न ब्रत खोलनेके लिए रोटीका टुकड़ा था। निराश होकर लेटी थी, और अपने भाग्यको कोस रही थी। इतनेमें ठाकुरसिंहने आकर उसकी पीठपर हाथ फेरा, और प्यारसे कहा, लो उठो! चाँद निकल आया है, चलकर अर्घ्य दे लो। लस्सी और गंडेरियाँ नहीं हैं, ठण्डा जल तो है। देवता लोग कुछ खाते पीते थोड़े हैं, श्रद्धा देखते हैं और उसकी तुम्हारे पास कमी नहीं। लो अब उठकर छतपर चलो।

गुजरी चुपचाप उठकर खड़ी हो गई। उसने इतना भी न पूछा कि तस्वीर के दाम मिले या नहीं? समझ गई, न मिले होंगे। मिलते तो नाचते हुए आते, कूदते हुए आते। वह बेदिलीसे पतिके साथ ऊपर चली गई, और नलसे हाथ मुँह धोकर बोली—पानीका एक लोटा मँगवा दो, तो अर्घ्य दे लूँ।

ठाकुर—वह देखो चौकीपर धरा है, उठा लो।

गुजरीने जाकर लोटेमें लस्सी और पास दूसरी चीजें देखीं, तो उसका

दिल नाचने लगा । तुनककर बोली—तुमने मुझे बड़ा धोका दिया । पहले क्यों न कहा, कि सब कुछ ले आया हूँ । यह तो बहुत कुछ है ।

ठाकुर—पहले चाँदको अर्घ्य दे लो, फिर बातें करेंगे ।

गुजरी—कैसे भूटे आदमी हैं । कहते थे, पानीहीसे अर्घ्य दे लो ।

ठाकुर—मगर अब तो चावल और गंडेरियाँ भी हैं ।

गुजरीने लस्सी, चावल और गंडेरियोंसे चन्द्रमाको अर्घ्य दिया, और हाथ बाँधकर पतिकी दीर्घायुके लिए प्रार्थना की । इस समय उसे चाँद मुस्कराता हुआ दिखाई दिया, जैसे आशीर्वाद दे रहा हो, जैसे उसे कह रहा हो, यों ही चबराती थी, अब कहो, ! गुजरीके मुँहसे हँसी फूट-फूटकर निकलती थी । गुजरी रोकती थी, मगर हँसी रुकती न थी । वह इठलाती हुई पतिके पास आई, और बैठकर बोली—और क्या कुछ लाए हो, देखूँ ।

ठाकुरसिंहने मिठाईकी टोकरी सामने रखकर कहा—यह रहा नम्बर एक ।

गुजरीने मिठाई देखी, तो मुँहमें पानी भर आया, मगर शान्तिसे बोली—इतनी क्यों ले आए ? दो रुपयेसे कम की न होगी । एक रुपये की लाते, तो ठीक होता ।

ठाकुर—एक रुपये की तो मैं ही खा जाता, शायद इससे भी ज्यादा खा जाऊँ । कलसे भूखा हूँ, और क्या ? देखना कैसे बढ़-बढ़कर हाथ मारता हूँ । केवल तुम्हारे कहनेकी देर है ।

गुजरी—(मुस्कराकर) खैर, और क्या लाए ?

ठाकुरसिंहने फलोंकी टोकरीसे कागज उठाकर कहा—यह रहा नम्बर दो ।

कुछ सेब थे, कुछ अनार, कुछ अंगूर, और एक सरदा । गुजरीके कुम्हलाए दिलको ठंडा पानी मिल गया । बोली—अब मालूम हुआ, आज करवा-चौथका व्रत है ।

अब ठाकुरसिंहने एक बंडल खोला । उसमें एक रेशमी साड़ी थी । गुजरीकी आँखें चमकने लगीं । ठाकुरसिंहने कहा—यह रहा नम्बर तीन ।

गुजरीने अपना सिर पतिके कन्धेपर रख दिया, और आँखें मूँद लीं । खुशी इतनी थी, कि मुँहसे बात भी न निकलती थी । सारे दिनकी उदासी देखते-देखते दूर हो गई । ठाकुरसिंहने उसके सिरपर हाथ फेरकर कहा—अब भी खुश हुई या नहीं ?

गुजरी—जबानसे क्या कहूँ, मेरा मुँह देख लो ।

यह कहकर गुजरीने अपने पतिकी तरफ देखा, और मुस्करा दी ।

ठाकुरसिंहने गुजरीका मुँह दोनों हाथोंसे पकड़ लिया, और कहा—अब हमारा भी चाँद निकला । मुझे ऐसा मालूम होता है, कि यह मुझसे बातें कर रहा है ।

गुजरी—(शराबसे) कहता है, मुझे देखो !

ठाकुर—नहीं, कहता है, मुझे अर्घ्य दो ।

यह कहते कहते ठाकुरसिंहने एक पेड़ा उठाकर गुजरीके मुँहमें दे दिया । व 'न न' करती ही रही, मगर ठाकुरसिंहने एक न सुनी, कहा—तुमने अपने चाँदको अर्घ्य दिया है या नहीं ? हम अपने चाँदको अर्घ्य दिए बिना कैसे खालें ? पाप लगेगा ।

गुजरीने भी एक पेड़ा पतिके मुँहमें दे दिया । स्त्री पुरुष-दोनों खाने लगे और भूमने लगे । रात मुस्कराने लगी । चाँद मुस्कराने लगा । दुनिया मुस्कराने लगी ।

इतनेमें गंगूने ऊपर चढ़ते हुए कहा—मियाँ याकूबका आदमी बीस रुपये दे गया है ।

ठाकुरसिंहका चेहरा और भी चमकने लगा । गुजरीने गंगूसे रुपये ले लिए, और पतिके तरफ देखकर बोली—पहले मिल जाते, तो इतनी तकलीफ न होती ।

ठाकुर—उस समय यह पेड़े भी ऐसे मीठे न लगते ।

इतनेमें किसीने नीचे दरवाजा खटखटाया ।

ठाकुर—कौन है ?

आवाज—ज़रा नीचे आइए ।

गुजरीने मुँह बनाकर कहा—इस समय कौन आ गया । बैठे रहो, गंगू पता ले आता है ।

ठाकुरसिंह(हँसकर)—घबराती काहेको हो ? मैं नीचे जा रहा हूँ, दिल्ली तो नहीं जा रहा । अभी एक मिनटमें आया ।

गुजरी—इस समय तो एक मिनट भी एक घंटेसे कम नहीं ।

ठाकुरसिंह नीचे गए । थोड़ी देर बाद लौटे, तो चेहरेपर अद्भुत आभा थी । गुजरीने पूछा—कौन था इस समय ?

ठाकुर—दीवान हरजस रायका आदमी था ।

गुजरी—कौन हरजस राय ? वही तो नहीं, जो दुपहरको आया था ? वही होगा ।

ठाकुर—बस-बस-बस, वही था । उसीने तस्वीरके लिए पेशगी रुपया भेजा है ।

गुजरीके दिलमें गुदगुदी होने लगी, जल्दीसे ठाकुरसिंहके पास आकर बोली—कितना रुपया भेजा ?

ठाकुरसिंहने एक एक शब्दपर रुक रुककर कह-तीन सौ—रुपया ।

गुजरीका दिल खुशीसे धड़कने लगा । बोली—भूठ तो नहीं बोल रहे मुझ से ?

ठाकुर—भूठ बोलूँ गा, तो मेरा यह जमादार नाराज़ न हो जाएगा ? लो यह तुम्हारा चेक रहा ।

यह कहकर ठाकुरसिंहने चेक गुजरीके हाथमें दे दिया । गुजरी चेक और रेशमी साड़ी लेकर जल्दी जल्दी नीचे उतर गई ।

सूरदास

१

सूरदास कौन था ? कहाँका निवासी था ? उसका नाम क्या था ? यह किसीको भी मालूम न था । न वह अपना हाल किसीको सुनाता था । अगर कोई पूछता, तो जवाब देता—भैया ! पापी जीव हूँ, हाल क्या सुनाऊँ ? जमाने की ठोकरें खाकर गंगा मैयाकी सरण आ पड़ा हूँ । जान निकल जाए, तो रामका नाम लेकर गंगामें बहा देना । इससे अधिक बातचीत वह अपने सम्बन्धमें कभी न करता था, मगर वास्तव में वह ऐसा तुच्छ न था । उसके आनेसे काशीकी शोभा बढ़ गई थी । दशाश्वमेध घाटमें तो जैसे जान-सी पड़ गई थी । प्रातःकाल चार बजे तम्बूरा लेकर बैठ जाता था । तम्बूरा बजाता था और हरि-भजन गाता था । उसका आलाप सुनकर लोग मंत्र-मुग्ध हो जाते थे । उसके चारों तरफ लोगोंकी भीड़ लग जाती थी । जब वह असार संसारके वैराग्यसूचक गीत गाता था, उस समय वह साधारण अन्धा मालूम न होता था, कोई उच्च कोटिका दार्शनिक विद्वान् मालूम होता था । उसका एक-एक शब्द श्रोताओंके हृदयमें खुब जाता था । लोग उसके गानोंमें तन्मय हो जाते थे । वह अनाड़ी गवैय्या न था, राग-विद्याका पूरा पंडित था । स्त्री, पुरुष, बच्चे सब उसकी

प्रशंसा करते थे। कोई उसे पैसा देता, कोई फल, कोई आटा, कोई कपड़ा; मगर वह कभी कुछ माँगता न था। आँखोंका गरीब था, दिलका गरीब न था। कोई दे या न दे, इसकी उसे चिन्ता न थी। पर लोग उसे ज़रूरतसे भी ज्यादा देते थे। दोपहर होते-होते उसके सामने पैसों और खाद्यपदार्थोंका ढेर-सा लग जाता था। जब घाट लोगोंसे खाली हो जाता, तो अपने गाने-बजानेकी कमाईको समेटकर गिनता, और तब इतनी ऊँची आवाज़से जैसे कोई किसीको सुना रहा हो, कहता—यह तो बहुत है भैया। मैं इतना क्या करूँगा? उसे आजकी परवा थी, उसे कलकी परवा न थी।

घाटके लोभी साधु उसके पास आकर कहते—सूरदासजी, हमें तो कुछ भी न मिला, टापते रह गए। आज भूखा रहना पड़ेगा। फिर एक लम्बी साँस छोड़कर कहते—कलजुगका जमाना है जात्रियोंके दिल पत्थर हो गए हैं। आते हैं, नहाते हैं, चले जाते हैं। हमारी तरफ कोई आँख भी नहीं उठाता।

सूरदास उनकी बातें सुनता, तो अपने खाने-भरको रखकर बाक़ी उन्हें बाँट देता। और यह उस गरीबका हाल था, जो आप रोटीके एक एक टुकड़ेको मोहताज था, जिसकी सारी जायदाद एक तम्बूरा, एक लकड़ी और चार चिथड़े थी। उसको यूँ फटे हालाँ देखकर कौन कह सकता था कि उसके सीनेमें राजहृदय धड़क रहा है, कितना महान् ! कितना विशाल !! बाहरकी दीवारोंपर निराशा छाई हुई थी, जो रोती थी। अन्दर संगमरमरका महल खड़ा था, जो मुस्कराता था।

२

इसी तरह कुछ वर्ष बीत गए। सूरदास अपनी अँधेरी दुनियाकी काली, और कभी न समाप्त होनेवाली लम्बी रातमें उसी तरह

खड़ा था । शायद संसारके इस दुर्भाग्यकी तरफ उसका ध्यान ही न था । संसारके सुखोंसे दूर, प्रकाशके दृश्योंसे परे यौवन के मद-भरे चित्रोंके आनंदसे वंचित होनेपर भी उसके जीवनमें इतना सन्तोष, इतना हर्ष था जो राजमहलोंमें राजाओंको भी प्राप्त नहीं । वहाँ हजारों चिन्ताएँ होंगी, यहाँ एक भी न थी । सूरदास दिनको गाता था, जैसे पंखी फूलोंकी डालियोंपर चहकता है; रातको घाटकी सीढ़ियोंपर पाँव फैलाकर सो रहता था, जैसे छोटा बच्चा नींद आनेपर जहाँ हो, वहीं सो जाता है । उसे यह विचार भी नहीं आता था कि कहीं सन्दूकका ताला खुला न रह गया हो, कहीं घरमें चोर न घुस आएँ । जीवनानन्द के ये लुटेरे बच्चोंके अकंटक संसारमें पाँव भी नहीं रख सकते । मानव-रुधिरके ये प्यासे भेड़िये बच्चोंके सामने आकर पालतू कुत्ते बन जाते हैं, जोदुम हिलाते हैं, पाँव चाटते हैं, काटते नहीं । यही हाल सूरदासका था । उसका स्वभाव बालकोंके समान सरल था । उसकी ज़रूरतें न हाथ फैलाती थीं, न निराश होकर ठंडी आहें भरती थीं । उसकी सृष्टि आहार निद्रा तथा गाने बजाने तक परिमित थी । इससे आगे न वह आकाशकी खोजमें जाता था, न निराश होकर खूनके आँसू रोता था । सन्तोषका इससे अधिक प्रत्यक्ष, ज्वलन्त, जीता-जागता उदाहरण गंगाके घाट ने कम देखा होगा ।

रातका समय था । आकाशके तारे गंगाकी लहरोंपर नाचते थे । सूरदास घाटकी सीढ़ियोंपर लेटा एक साधुसे बातचीत कर रहा था ।

साधु—सूरदासजी, आज तो बड़ी गरमी है । अपने रामकी मरजी है कि जलमें खड़े रहें, बाहर न निकलें । बाहर निकलते हैं, तो देहमें आग लग जाती है ।

सूरदास—बरखा होनेवाली है । आज तारे क्या निकले होंगे, बादल धिरा होगा । जरूर बरसेगा । हुम्मस हो रहा है ।

साधु—नहीं सूरदासजी, तारे निकले हुए हैं । जो भागवान हैं, वे

घरोंमें छतोंपर लेटे होंगे । नौकर खुसामद करते होंगे । एक हम हैं कि यहाँ परारबधको रो रहे हैं ।

सूरदास—परमेसरका नाम लो भैया । उनको हज्जारों फिकिर हैं । बताओ तुम्हें क्या फिकिर है ? बड़े मजेमें हो महाराज । उस जिन्दगीमें जाकर चार दिन न रह सको । मेरा खयाल है दो दिनमें भाग आओ । एक दिनमें भाग आओ ।

साधु (मुस्कराकर) —नहीं सूरदास, वह जिन्दगी बड़ी अच्छी है । हमारी जिन्दगी जिन्दगी नहीं, जिन्दगीका मजाक है । हम जी नहीं रहे, अपने दिन पूरे कर रहे हैं ।

सूरदास—तो जाओ, कोई राँड ढूँढकर सादी कर लो उससे, और गिरस्ती बसाओ । जब तुम्हारे मनकी तिरसना नहीं मिटी, तो गेरुए बस्तर पहनना बेफायदा है ।

साधु—आज एक सेठ आया था । सबको एक-एक धोती दे गया । जब हम पहुँचे तो धोतियाँ ही खतम होगई । हम मन मारकर रह गए । कहा, जा साले, तेरी आसा कभी पूरी न हो । तुम्हें भी एक ठो मिली होगी । गए थे या नहीं ?

सूरदास—मुझे दरकार ही न थी ।

साधु—अब जात्री भी कम आने लगे । पहले भीड़ लगी रहती थी । अब नसा-पानी भी मुस्किलसे होता है ।

सूरदास—पर वह साधु ही क्या, जिसे नसेका सौक हो । साधु तो वह है, जिसे रामनाम का नसा हो ।

साधु—अब तो सब आरीये बन गए । जिसे देखो, नमस्ते नमस्ते कर रहा है । न किसीमें धरम है, न किसीमें सरधा है । ईसर जाने, दुनिया खतम क्यों नहीं हो जाती ?

सूरदास (बातका रुख बदलनेके लिए)—बड़ी गरमी है । आज नींद नहीं आएगी ।

साधु—अगर कुछ दिन यही दसा रही, तो हम भूखों मरेंगे। कोई मुट्ठी-भर धान भी न देगा।

सूरदास—(अपनी लाठी टटोलकर) हमें परमेसर देगा भाई, पुरसकी क्या औकात है ? हम तो मर जाँएँ, पर किसीके सामने हाथ न फैलाएँ। हमें तो माँगते हुए सरम लगती है। हमारा तो हिरदा बिदरोह करता है। भूखा पड़ रहना मंजूर, पर माँगना मंजूर नहीं। मांगनेसे पहले मरना पड़ता है ?

साधुने चिलमपर आग रखी और सूरदासकी तरफ घृणासे देखकर कहा—तुममें यह गनी होगा सूरदास ! अपने रामसे तो भूख नहीं सही जाती। बिना माँगे कौन साला देता है ?

यह कहकर साधु चिलम पीने लगा।

सूरदास—परमेसर देता है, और कौन देता है ? पर तुम परमेसरसे माँगते ही नहीं हो। वह दे कैसे ?

साधुने कुछ चिढ़कर जवाब दिया—तुम भी तो लोगोंके सामने ही गाते हो। परमेसरके सामने क्यों नहीं गाते ? खानेको मिल जाता है, तो चले हैं उपदेस करने। दो जून भूखे रहो, तो होस ठिकाने आ जाँएँ। और क्या ?

मगर सूरदास अब भी शान्त था। मुस्कराकर बोला—हम तो परमेसरके सामने ही गाते हैं, सुननेको चाहे कोई सुनले। इससे हमको कोई मतलब नहीं।

अकस्मात् एक दूसरे साधुने आकर कहा—क्यों सूर, क्या कर रहे हो तुम ?

सूरदास उठकर बैठ गया और अपने तम्बूरे और लाठीपर हाथ फेरकर बोला—बातचीत कर रहे हैं महाराज ! पर आज बड़ी गरमी है, सरीर फुँका जाता है। आओ बैठो।

बूढ़ा—नहीं सूरदास, बैठनेकी बेला नहीं। आज एक अजीब बात

हुई। घाटपर किसीका बच्चा रह गया है। तीन-चार सालकी उमिर होगी। बहुत खोज की, पर उसके मातापिताका पता नहीं लगता। बताओ, क्या करें? बड़ा प्यारा बच्चा है।

सूरदास (बेचैन होकर)—रो रहा होगा?

बूढ़ा—रोता तो इस तरह है कि तुमसे क्या कहूँ! बाबू, बाबू कहकर चिल्ला रहा है। उसे रोते देखकर मेरा तो हिरदा हिल जाता है! माँ-बाप भी कैसे बेपरवा होते हैं! न मिले, तो क्या करें? जीवन-भर रोते रहें। इस समय जाने कहाँ चले गए हैं?

सूरदास लाठी लेकर खड़ा हो गया और अन्धी आँखोंकी पलकें झपकाकर और गर्दन हिलाकर बोला—ढूँढ़ रहे होंगे। सायद अभी आ जाएं। तुमने बच्चे को चुप कराया।

बूढ़ा—लाख पुचकारते हैं, मिठाइयाँ देते हैं, मगर वह चुप नहीं होता। बराबर रोता जाता है। बताओ क्या करें?

सूरदास (मुस्कराकर)—मेरे पास आ जाए, तो (चुटकी बजाकर) एक मिनटमें चुप हो जाए। क्या मजाल जो जरा भी रो जाए!

बूढ़ा—वाह सूरदास! तुम तो छिपे रुस्तम निकले। तो चलो, चलकर ले आओ।

आगे आगे बूढ़ा चला, पीछे पीछे सूरदास। थोड़ी देर में दोनों घाटके दूसरे सिरेपर जा पहुँचे, जहाँ बालक फूट-फूटकर रो रहा था। सूरदासने जाते ही लाठी ज़मीनपर रख दी और हाथ फैलाकर कहा—लाओ तो इसे मेरे पास—आ बेटे, मेरे पास आ। यह कहकर उसने बालकको उठा लिया और गलेसे लगाकर उसके सिरपर हाथ फेरने लगा। बालकने पहले तो हैरानीसे सूरदासकी तरफ देखा। शायद वह सोच रहा था कि यह कौन है? मगर दूसरे ही पलमें उसने अपना सिर उसके कंधेपर रख दिया और धीरे-धीरे सिसकने लगा। मानो घबराए हुए बालकको माँकी गोदका आश्रय मिल गया।

वह कुछ देर सिसकियाँ भरता रहा । इसके बाद चुप हो गया । सबेरे प्यारके राज्यमें रोने-धोने की फुरसत कहाँ ?

३

दूसरे दिन सबेरे ही सूरदास हलवाईकी दुकानपर खड़ा हलवा पूरी माँग रहा था । लोग देखते थे और हैरान होते थे । यह वही सूरदास था, जिसने किसीके सामने कभी हाथ न फैलाए थे । जो कहता था, मरता मर जाऊँगा, कभी मुँहसे न मागूँगा । आज उसकी यह टेक कहाँ चली गई थी ? आज उसके आत्माभिमानको क्या हो गया था ? गंगाघाटके साधुओंने कहा—सूरदास, यह कायापलट कैसी ? एक ही रातमें क्या से क्या हो गए ?

सूरदासने अपनी अँधी आँखोंसे उनकी तरफ देखा और पलकें झपककर कहा—भैया, एक ही दिनकी बात है । आज साँझ तक इसके माँ-बाप आकर ले जाएँगे ।

यह कहकर उसने बच्चेको सीनेसे लगा लिया और उसका सिर चूम लिया ।

मगर साँझ हो गई, और बच्चेको लेने कोई न आया । दो-तीन दिन और इसी तरह बीत गए, फिर भी कोई न आया । दिन सप्ताहोंमें बदल गए, बालक, जिसे सूरदास 'दीपक' कहता था, उससे हिल-मिल गया । कभी उसकी गर्दनपर सवार हो जाता, कभी गोदमें आ बैठता, कभी आकर तम्बूरेको छेड़ता, कभी लकड़ी लेकर भाग जाता । सूरदासको उसकी यह बाल-क्रीड़ाएँ बड़ी प्यारी लगती थीं । क्या मजाल जो कोई उसे जरा भी डांट जाए । अब दुपहर के समय वह अपने गाने बजाने की कमाई साधु संतों में नहीं बाँटता था, न गाते समय अब वह सबर-सन्तोष प्रगट करता था । अब उसे जितना मिलता, उतना ही कम था । जैसे अब यह सूरदास वह सूरदास न था । उसकी आमदनी पहलेसे बढ़ गई थी,

मगर उसके चित्तकी वह शांति कहाँ थी? जब वह गाता, बालक अपनी बड़ीबड़ी कटोरासी आँखोंसे लोगोंकी तरफ़ देखा करता। लोग पूछते—‘यह बच्चा कौन है’ सूरदास कहता ‘हज़ूर किसी भागवानका पुत्र है। सोचता हूँ, इसे तकलीफ़ न हो। क्या याद करेगा। लोग कहते—सूरदास, इसे ज़्यादा सिर न चढ़ा, बिगड़ जाएगा। सूरदास किसी विचारसे सहमकर ठंडी साँस भरता और गिड़गिड़ाकर जवाब देता—सरकार, परमेसरने चार दिनके लिए पाहुना भेजा है। मेरे पास हमेसा थोड़ा बैठारहेगा। सायद आज ही इसके माँ-बाप आ जाएँ, और इसे ले जाएँ। अपने आप सुधर जाएगा। मैं तो यह सोचता हूँ, इसका मन मैला न हो। जब यह उदास होकर चुपचाप बैठ जाता है, तो मेरे कलेजेमें तूफ़ान-सा उठ खड़ा होता है। जाने किसका बेटा है। वहाँ जाने इसकी कैसी-कैसी खुसामदे होती होंगी। जाने कैसे-कैसे नौकर खिदमत करते होंगे। यहाँ एक अन्धेके सिवा इसका कौन है? मैं भी डाँट-डपट करने लगूँ, तो इसका हिरदा मुरझा जाए। अब कैसा चहकता फिरता है। फिर सिर भी न उठाएगा।

मगर बारह साल बीत गए, दीपक को लेनेके लिए कोई भी न आया। सूरदासने समझ लिया, अब यह मेरे ही सिर पड़ा। अब वह रातको घाटपर नहीं सोता। उसने शहरमें एक छोटासा मकान किराए पर ले लिया है। वहाँ सभी ज़रूरी चीज़ें हैं। दरी है, पलंग है, बर्तन हैं; सन्दूक हैं, एक टाईमपीस है, एक मेज़ और कुरसी है, शीशा और कंघी है, एक लैम्प भी है। मगर यह सब कुछ दीपकके लिए है, सूरदासके लिए नहीं। वह अब भी वही सूरदास है। उसी तरह गंगा—किनारे गाता है। उसी तरह भीख माँगता है। हाँ, लोभी बहुत हो गया है। अब उसके खर्च बहुत बढ़ गए हैं। पहले आज्ञाद था, अब गुलाम है। पहले निश्चिन्त होकर सोता था, अब रातको चौक चौककर उठ बैठता है। घाटपर सवेरे ही पहुँच जाता है। बड़ी मेहनतसे गाता है। मिन्नत कर करके माँगता है। जब तक एक रुपया सवा रुपया न मिल जाए, उठनेका नाम नहीं लेता। कभी उसके लिए रुपया

था। पहले सीधे-सादे कपड़े पहनता था, अब कोट-पतलून पहनने लगा। नेकटाईके बिना अब उसका कालेज जाना असम्भव था। बूट-पालिश और बालोंके लिए तेलका खर्च बढ़ गया। पहले घरमें व्यायाम कर लेता था, अब टेनिसकी चाट लग गई। सूरदास समझता, तो मुँह फुला लेता था। कहता—तुम तो चाहते हो, कालेजमें नक्कू बनकर रहूँ। मुझसे यह न होगा, कहिए, पढ़ाई छोड़ दूँ ? यह मेरे लिए ज़रा भी मुश्किल न होगा। लेकिन अगर पढ़ना है, तो जैसे दूसरे चलते हैं, वैसे ही मुझे भी चलना होगा। वनाँ आज उनकी आँखोंमें गिरूँगा, कल अपनी आँखोंमें गिर जाऊँगा।

सूरदास को कभी कभी यह सन्देह होता था कि दीपकका स्वभाव बदल रहा है। अब उसमें स्वार्थकी मात्रा बढ़ती जाती है। यह सन्देह उसके लिए अत्यन्त दुःखदायी था। पर वह इस सन्देहको ज्यादा देर तक दिलमें ठहरने न देता था। हम कोई बात अपने निकटके बन्धुओंके विरुद्ध किसीसे सुनना नहीं चाहते। यहां तक कि अपने दिलसे भी नहीं। यही हाल सूरदासका था। वह अपने आपको धोखा दे रहा था। उसकी एकमात्र अभिलाषा थी कि जैसे भी हो, दीपक एक० ए० पास कर ले। मगर रुपया ? यह सवाल बड़ा टेढ़ा था। तीस-चालीस रुपयेकी आमदनी थी, और साठ-सत्तरका खर्च। सूरदास इसी चिन्तामें घुला जाता था। उसे रातको नींद न आती थी। आखिर रातको काशीकी गलियोंमें जाकर गाने लगा कि शायद इसी तरह कुछ बन जाए। गानेमें दर्द था। स्त्रियाँ अपने घरोंमें बुला लेतीं, और गीत सुनतीं। सूरदास उनसे अपना रोना रोया करता, कहता—माजी, लड़का कालेजमें पढ़ता है, मदद करो। स्त्रियाँ कहतीं—सूरे, तू इतना कमाता है, वह सब कहाँ चला जाता है ? सूरदास अपनी अंधी आँखोंको इधर-उधर घुमाता और कहता—बड़ा खर्च है माजी ! पिसा जाता हूँ। किसी तरह दो बरस बीत जाएँ, तो सुकर करूँ। स्त्रियाँ कहतीं—बड़ा निर्दयी छोकरा है। नौकरी क्यों

नहीं कर लेता ? तू इस आयुमें कहाँ तक मेहनत करेगा ! सूरदास जवाब देता—नौकरी क्या करे । कोई तीस-चालीस भी तो न देगा । स्त्रियाँ कहतीं—सूरे, तेरी अकल मारी गई है । क्या अब तेरा लड़का डिपटी हो जाएगा ? सूरदास उत्तर देता,—परमेसर जो चाहे, कर दे । उससे यह भी दूर नहीं है । जाने उसकी किसमतमें राज करना ही लिखा हो । माजी, आज एक रुपया दे दीजिए । बड़ा पुत्र होगा । बड़ी जरूरत है । बस, एक रुपया मिल जाए । इसके बदले परमेसर आपको सौ रुपया देगा माँजी ! स्त्रियोंको दया आ जाती । आना, दो आने, चार आने दे देतीं । सूरदासका काम बन जाता ।

६

इधर यह दुबला, पतला, निबल बूढ़ा, सिपाहियोंके समान जीवनकी लड़ाई लड़ रहा था, उधर दीपक सुन्दरता और यौवनकी उपासना करने लगा । उसकी श्रेणीमें एक विधवाकी रूपवती बेटी रूपकुँवर पढ़ती थी । दीपकका उससे प्रेम हो गया । हर समय एक साथ रहने लगे । क्लासमें भी एक साथ पढ़ते थे । इकट्ठे सैरको जाते और अपने भविष्यकी बातें सोच सोचकर खुश होते । दूसरे विद्यार्थी यह देखते थे और हँसते थे । कुछ ऐसे भी थे, जिन्हें ईर्ष्या होती थी । वे कहते—यह अन्धेका बेटा कैसा भाग्यशाली है; कालेजमें एक ही परी थी, उसीको ले उड़ा । हम टापते ही रह गए । लड़की निरी मूर्खा है, जो उसके चकमोंमें आ गई । चार दिनमें पछताएगी । न जाने किसका बेटा है ! शायद किसी भंगी-चमारका लड़का हो ! मगर इन प्रेमके परवानोंको किसीकी भी परवा न थी । इनका प्रेम बराबर बढ़ता जाता था, मगर जब एक० ए० का नतीजा निकला और दोनों पास हो गए, तो विरह-वेदनाका भयंकर भूत दिखाई दिया । जब तक पढ़ते थे, विरहकी चिन्ता न थी, पर नतीजा निकलते ही उनके ब्याह-सादीका प्रश्न उठ खड़ा

हुआ । रूपकुँवरकी सगाई अपनी जातिके एक अमीर वकीलसे हो चुकी थी । उसके माँ-बापने लिखा—अब हम ज्यादा प्रतीक्षा नहीं कर सकते, जल्दी ब्याह कर दो । उधर साधुनीने सूरदाससे कहा—अब तो दीपकने एक ए० ए० की परीक्षा भी पास कर ली है, अब ब्याहमें देर न करो । लड़की जवान हो गई है ।

दीपक और रूपकुँवर दोनों घबरा गए । सोचने लगे, कदाचित् परीक्षामें फेल हो जाते, तो एक वर्ष का और अवसर मिल जाता, मगर हाय अफसोस, उनके भाग्यमें फेल होना न लिखा था ! विद्यार्थी फेल होकर रोते हैं, वे पास होकर रोते थे ।

एक दिन दीपकने रूपकुँवरसे कहा—दादा नहीं मानता । कहता है, मैं साधुनीको वचन दे चुका हूँ । अब इनकार कैसे कर दूँ ? लड़की तुम्हारे नामपर बैठी है । वह क्या करेगी ?

रूपकुँवरने दीपककी तरफ सहमी हुई दृष्टिसे देखा और गर्दन मुका ली ।

दीपकने डरते-डरते पूछा—तुम्हारी माँ क्या कहती है ?

रूपकुँवरने सिर हिलाकर धीरेसे जवाब दिया—वह भी नहीं मानती । कहती है, जाने किसका बेटा है ! तुम्हें अन्धे कूँमें कैसे भोंक दूँ ? कहती है, सूरदास अंधा है, मैं तो अंधी नहीं हूँ ।

दीपकके दिलमें तीर-सा चुभ गया । थोड़ी देर दोनों चुपचाप अपने अपने दिलमें कुछ सोचते रहे । इसके बाद दीपकने एक ठंडी सांस भरी और कहा—रूप, अगर मुझे मालूम होता कि हमारे प्रेमका यह परिणाम होगा, तो तुमसे कभी बात भी न करता । हँस-हँसकर मिले थे, रो-रोकर जुदा होंगे ।

रूपकुँवरने नागिनकी तरह सिर उठाया और कहा—हमें जुदा कौन कर सकता है ? कोई नहीं । मुझे माँकी भी परवा नहीं है ।

दीपक—कहना आसान है कि हम जुदा न होंगे, मगर जुदा तो होना ही पड़ेगा रूपकुँवर !

दोनों फिर चुप हो गए। साँझका समय था। गंगाका पानी, उसके किनारेके वृक्ष; पक्षियोंका कलरव, दिनकी रोशनी—सब धीरे धीरे अँधेरेमें डूब रहे थे। ठीक उसी तरह उनकी आशाओंके फूल, जीवनका प्रकाश, मनोकामनाओंकी शोभा—सब कुछ निराशाके अँधेरेमें डूबा जा रहा था। सहसा रूपकुँवरने दीपकके कन्धेपर हाथ रखा। उसकी आँखोंमें अपनी आँखें डालीं और साहससे बोली—चलो, कहीं भाग चलें। ऐसे देशमें, जहाँ हमारा अपना कोई भी न हो। विरोध अपने ही करते हैं, पराए नहीं करते।

दीपकने रूपकुँवरका फूल-सा हाथ अपने हाथमें लेकर धीरे से कहा—बदनाम हो जाएंगे।

रूप०—पर चिन्ता तो मिट जाएगी

दीपक—दादा क्या करेगा ? यह भी सोचा तुमने ?

रूप—करना क्या है ? घाटपर बैठकर गाना गाएगा। तुम भोले हो। समझते हो, उसे भी तुम्हारा उतना ही खयाल है, जितना तुम्हें उसका खयाल है। मगर यह तुम्हारी भूल है। वह तुम्हें चार दिनमें भूल जाएगा।

दीपक—और तुम्हारी माँ ?

रूपकुँवर (अपने सिरकी साड़ीको ठीक करके)—वह भी चार दिन रोएगी, फिर चुप हो जाएगी। समझ लेगी, लड़कीने अपने मनकी मरखी पूरी कर ली। और क्या !

यह कहकर रूपकुँवरने शर्मसे सिर झुका लिया। इस अदाने दीपकके दिलमें आग लगा दी ! उसका दिल दोनों तरफ दौड़ता था। उसे दादाका भी खयाल था, रूपकुँवरका भी। वह दोनोंको चाहता था, मगर दोनों एक दूसरेसे दूर थे। दोनोंके बीचमें कोसोंका फासला था। दीपक सोचने लगा।

आखिर वही हुआ, जो ऐसे अवसरपर संसार में सदासे होता आया है। रूप और यौवनके लोभने कर्त्तव्यका गला घोट दिया। दूसरे दिन दोनों कहीं भाग गए।

७

सूरदासका संसार सूना हो गया। चारों तरफ भागता फिरता था और दीपकको ढूँढता था। कालेजके प्रोफेसरोंके पास जाकर रोया, विद्यार्थियोंसे जाकर पूछा, दीपकके मित्रोंके पास गया, पर दीपकका किसीको भी पता न था। क्या क्या आशाएँ थीं! सबपर पानी फिर गया। क्या क्या उमंगें थीं! सब मिट्टीमें मिल गई। क्या क्या सोचा था! सब सुपना हो गया। लोग कहते—सूरदास, अब बैठकर हरी-भजन कर। चला गया है, तो चला जाने दे।' सूरदास जवाब देता—'क्या करूँ, जी नहीं मानता।' गंगा घाटके साधु कहते—सूरे, तू तो बावला हो गया है। कभी पराया पुत्र भी अपना हुआ है? पराया सदा पराया है। अब उसका खयाल छोड़ दे। अब वह कभी न लौटेगा।

एक पुजारीने कहा—जब तक पढ़ता था, उसे तेरी जरूरत थी। अब पढ़-लिख गया है, अब उसे तेरी क्या जरूरत है? अब वह तेरे पास क्यों रहे?

सूरदासकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

वह लाठीके सिरेपर हाथ रखकर बोला—उसे तो खाने पीनेकी भी सुध नहीं। कोई न खिलाए, तो दो दो दिन खाना ही न खाएगा। बड़ा भोला है। बड़ा बे-परवा है।

एक और साधुने कहा—यह सब माया है सूरदास। तू अगर जरा सोचे, तो तेरे हिरदेके किवाड़ खुल जाएँ। तेरा आत्मा जाग उठे। मगर तू तो सोचता ही नहीं।

मगर सूरदासके दिलपर जो बीत रही थी, उसे कौन जानता था ? सन्ध्या समय घर लौटता, तो सोचता, शायद दीपक आ गया हो; मगर वहाँ कोई न मिलता । रातको ज़रा दरवाज़ा हिलता, तो सूरदास उठकर बैठ जाता, शायद वही हो, मगर वह कहाँ था ? अन्धेकी किस्मत उसकी अन्धी आँखोंसे भी ज्यादा अँधेरी थी ।

इसी तरह तीन वर्ष बीत गए, दीपक और रूपकुँवरकी कोई टोह न मिली । रूपकुँवरकी माँ बेटीके वियोगमें रो-रोकर मर गई । सूरदास जीता है, पर उसका हाल मुर्देसे भी बुरा है । पहले शरीर मज़बूत था, अब हड्डियोंका पिंजर रह गया है । अब उसे किसीने हँसते नहीं देखा । गाना भी छूट गया है; जब किसीसे बात करता है, तो उसकी आँखोंमें आंसू आ जाते हैं । चुपचाप घाटपर बैठा रहता है, और दोपहरको उठकर घर चला आता है । साधुओंने बहुत समझाया कि मकान छोड़ दे, मगर सूरदास मकान नहीं छोड़ता । उसे अब भी दीपकके आ जानेकी आशा है । हर रात उसके पलंगपर बिस्तरा बिछाता है, हर सप्ताह उसकी चादर बदल देता है । रोज़ लैम्पकी चिमनी साफ़ करता है, रोज़ पुस्तकोंका गर्दा झाड़ता है । उसकी इस अन्धी, बहरी, निराश न होनेवाली मुहब्बतको देखकर लोगोंके कलेजेमें हूँक-सी उठती है ।

आखिर एक दिन सूरदासके सोंए हुए भाग्य जागे ।

रातका समय था । सूरदास दीपकके पलंगकी चादर बदल रहा था और गुज़रे हुए दिनोंको याद कर रहा था । अकस्मात किसीने दरवाज़ा खटखटाया । सूरदास सचेत हो गया । यह हवाका धक्का न था, न कोई जीव जन्तु था । ज़रूर कोई आया है । यह विचार आते ही सूरदासने झटपटकर किवाड़ खोल दिया, और बिना प्रतीक्षा किए पूछा—कौन, दीपक है क्या ?

आनेवाला—नहीं, दीपक नहीं, दीपक का समाचार है ।

सूरदासकी नस-नसमें खुशी दौड़ गई। वह साधुको घसीटकर अन्दर ले गया, और पलंगपर बैठाकर हाँफते हुए बोला—जल्दी बताओ, क्या समाचार है ?

यह कहकर उसने भटपट लैम्प जला दिया।

साधु—मैंने तुम्हारा दीपक देखा है।

सूरदासका मुँह आशाकी रोशनीसे चमकने लगा। जल्दी-जल्दी आँखें मफककर बोला—कहाँ देखा है, बाबाजी ? कहाँ देखा है ?

साधु—लाहौरमें।

सूरदास—वही था ? कहीं तुमसे भूल तो नहीं हुई ?

साधु—भूल कैसे होगी ? मैं उसे सैंकड़ों और हज़ारोंमें पहचान लूँ। वह राँड भी उसके साथ थी, दोनों बाज़ारमें जा रहे थे। मैंने देखते ही चीन्हा लिया कि वही है। अब तो सा'ब बन गया है। अब वह बिल्कुल सा'ब मालूम होता है। सूरे, जरा चिलम तो दे मुझे।

सूरदासने चिलमपर आग धर दी। साधु दम लगाने लगा।

सूर०—तुमने बुलाया नहीं उसे ?

साधु—बुलाया क्यों नहीं, भट आगे बढ़कर कहा 'बाबू सा'ब कुछ दान मिल जाए।' उसने मेरी तरफ मुस्कराकर देखा और कहा, 'बाबा। कुछ काम क्यों नहीं करते ?' वह राँड बोली 'मुफ्तमें खानेकी आदत पड़ गई है,' मगर दीपकने एक पैसा दे ही दिया। उस राँड का अख्यार होता, तो न देती। बोलो, चलोगे ? मैं उसका मकान भी देख आया हूँ। ग्वालमंडीमें है।

सूरदासको साधुके मुँहसे दीपककी स्त्रीके लिए राँडका शब्द सुनकर ज़हर चढ़ गया, मगर उसने क्रोधको प्रकट न होने दिया। बोला—जरूर चलूँगा। तुम भी चलोगे न ? तुम्हारा किराया मैं दूँगा। आज मुझे बड़ी खुसी है। आज मुझे अपने दीपककी खबर मिली है। उसे सरम लगती होगी, वना आप आकर मुझे ले जाता।

मैं जाते ही छिमा कर दूँगा, तो बड़ा खुस होगा। बोलो, कब चलोगे?
आज ही क्यों नहीं चलते? उसे पाकर मैं जी जाऊँगा।

साधु—आज नहीं सूरे, परसों चलेंगे। मैं तुम्हें उसके दरवज्जेपर पहुँचा कर चला आऊँगा, यह सुरूमें कहे देता हूँ।

सूर०—चले आना; मगर परसों तो बहुत दूर है। अब मुझसे धीरज न होगा। कल चलो।

यह कहकर सूरदासने साधुके पाँव पकड़ लिए। अब वह इनकार न कर सका, बोला—कल ही सही, रुपयोंका परबन्ध कर लो। मेरे पास किराया नहीं है।

सूर०—किराएकी चिन्ता न करो तुम। अब इस समय कहाँ जाओगे? यहीं पड़ रहो। क्यों?

साधु—नहीं सूरे, घाटपर जाऊँगा। सीधा इधर ही आ रहा हूँ। इस वख्त जाने दो, सबसे मिलना है।

साधु चला गया। सूरदास बैठकर सोचने लगा—दीपक क्या कहेगा? देखते ही गलेसे लिपट जाएगा, और छिमा माँगेगा। मैं पहले खफा हूँगा, फिर मान जाऊँगा। उसकी बहू लायक मालूम होती है। चलो, अच्छा हुआ, साधुनीकी लड़की फिर भी फकीरनी ही थी। यह पढ़ी लिखी है। मेरा जरूर खयाल करेगी; ऐसी स्त्रियोंका हिरदा नरम होता है।

सूरदासने तम्बूरा उठाया और गाने लगा। आज उसका सुर कितना मीठा, कितना सुरीला था। आज उसका दिल उमड़ा हुआ था। आज उसकी कुम्हलाई हुई आशा पानी पीकर फिर हरी हो उठी थी। जब सवेरा हुआ, तो उसने मिट्टीके बर्तनसे रुपये निकाले और अंटीमें बाँधकर घाटकी तरफ चला। आज उसके पाँव धरतीपर न पड़ते थे। आज वह उड़ा जाता था।

चौथे दिन रातके समय लाहौरमें ग्वालमंडीके एक दोमंजिले मकानके सामने एक टमटम रुकी, और उसमेंसे वह साधु और सूरदास उतरे। साधु सूरदासको मकानके पास ले गया और दूसरे दिन मिलनेका वादा करके चला गया। सूरदास कुछ देर चुप रहा, इसके बाद उसने धीरेसे किवाड़ खटखटाया।

• थोड़ी देर बाद किसीने अंदर से पूछा—कौन है ?

सूरदासका कलेजा धड़कने लगा—यह वही था, वही आवाज थी, वही उच्चारण था, वही शब्द थे, वही माधुरी थी। जरा भी अन्तर न था। वही जिसके लिए सूरदास तीन साल तक छटपटाता रहा था। जिसके सामने वह अपना जीवन भी तुच्छ समझता था।

“कौन है ?” दीपकने फिर पूछा और उसके साथ ही कमीज पहने नंगे सिर आकर दरवाजेमें खड़ा हो गया।

सूरदासने दीपकके पाँवोंकी चाप पहचान ली और दोनों हाथ फैलाकर कहा—भैया ? मैं हूँ सूरदास।

दीपकने एक क्षणके लिए सूरदासके रूखे भूखे सूखे शरीरको देखा, और इसके बाद ‘दादा ! दादा !’ कहकर उसके गलेसे लिपट गया।

थोड़ी देर बाद दोनों कमरेमें बैठे थे, और बातें कर रहे थे। सूरदासने कहा—देख ! मैंने तुझे आ पकड़ा आखिर। अब कहाँ भागेगा ?

दीपक—शायद आपको विश्वास न हो। मैं कई बार तैयार हुआ कि चलकर आपको यहाँ ले आऊँ। मगर शरम रास्ता रोक लेती थी।

सूरदास—एक खत ही लिख दिया होता।

दीपक—रूपकुँवर कहती थी, मेरी माँको पता लग गया, तो बड़ी परेशानी उठानी पड़ेगी।

सूरदास—वह तो कभीकी मर चुकी । तुम्हें मालूम है या नहीं ?

दीपक—जी हाँ, मालूम हो गया था । आप तो आधे भी नहीं रहे । आप मुँहसे न बोलते तो शायद मैं पहचान भी न सकता । वह बात ही नहीं रही ।

सूरदास (दीपकके शरीरपर हाथ फेरकर)—तुम भी तो बहुत कमजोर हो गए । कुछ दूध पीते हो या नहीं ? भैया, दूध रोज़ पिया करो । दूधमें बड़ी ताकत है ।

दीपक—रोज़ पीता हूँ दादा ! मुझे तो सब कहते हैं, तुम बहुत मोटे हो गए हो ।

सूरदास—चल झूठा कहींका । जो बात कासीमें थी, वह बात यहां कहाँ ? क्या तलब मिलती है ?

दीपक—६०) मिलते हैं दादा । वह भी स्कूलमें पढ़ाती है । ६०) उसे मिलते हैं । सवा सौ हो जाता है । बड़े मजेमें हैं ।

सूरदास—बुढ़ेका तो खयाल ही न था । अब खोपड़ीपर आकर सवार हो गया । तेरी इच्छा बुरा तो न मानोगी, कि यह अन्धा कहाँसे आन मरा ।

दीपक—वह मुझसे बढ़कर प्रसन्न हो रही है । कहती है, अहोभाग्य ! जो हमारा बड़ा कोई घरमें आया ।

मगर प्रसन्नताकी पोल आधी रातको खुली ।

आधी रातका समय था । सूरदासकी आँख खुल गई । साथ के कमरे में दीपक और रूपकुँवर धीरे धीरे बातें कर रहे थे । अन्धोंके कान बहुत पतले होते हैं । सूरदासने एक-एक शब्द सुन लिया । रूपकुँवर कह रही थी—बड़े संकटमें फँस गए । क्या करें ?

दीपक बोला—मैंने इसीलिए चिट्ठी नहीं लिखी थी कि दौड़ा हुआ चला आएगा ।

रूपकुँवर—कह दो, वहीं चला जाए। हम पाँच रुपये हर महीने भेज दिया करेंगे। इसके लिए पाँच ही बहुत हैं।

दीपक—अन्धा कभी न मानेगा।

रूपकुँवर—तो मैं बिठाकर पराठे खिलाऊँ, यह मुझसे भी न होगा। कौन हाथ झुलसे ?

दीपक—यार-दोस्त पूछेंगे 'यह कौन है' तो क्या कहूँगा ?

रूपकुँवर हँस पड़ी—कह देना मेरे पूज्य पिताजी हैं, और क्या ? देखकर निहाल हो जाएंगे।

दीपक—साठ सत्तर वर्षका हो गया, मौत भी नहीं आती। और अभी दस वर्षसे पहले कभी न मरेगा। देख लेना।

सूरदासको ऐसा मालूम हुआ, जैसे खाट उसके नीचेसे निकली जाती है, जैसे उसके दिलपर किसीने सैंकड़ों मनका पत्थर रख दिया है। वही लड़का जिसे उसने इतने लाड-प्यारसे पाल-पोसकर बड़ा किया था, जिसके लिए रात-दिन एक कर दिया था, जिसके पढ़ानेके लिए उसने अपना आत्म-गौरव भी बेच दिया था, वही लड़का आज उसकी मौतके लिए मित्रतें मान रहा था ! जिसे उसने पन्द्रह साल खिलाया, वह उसे एक दिन भी न खिला सका !

सूरदासने दबे पाँव उठकर अपनी लाठी उठाई और चुपचाप दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया। नया शहर था। नई गलियाँ थीं। नए रास्ते थे। पग-पगपर ठोकरें खाता था, और गिरता था, मगर चला जाता था। कहाँ ? किसके पास ? यह वह आप भी न जानता था। वह चाहता था, किसी तरह दीपकके घरसे दूर निकल जाए। थोड़ी देरके बाद बड़े जोरसे बिजली कड़की और इसके साथ ही वर्षा होने लगी। मगर सूरदास अब भी गिरता-पड़ता, ठोकरें खाता, भागा चला जा रहा था। सारी रात वर्षा होती रही, सारी रात सूरदास इधर-उधर भागता, दौड़ता, ठोकरें खाता रहा।

दूसरे दिन पुलिसको सड़कपर एक अन्धे फक्कीरकी लाश मिली।

प्रतापके पत्र

१

रामनिवास, जालन्धर

१ जुलाई १९१५

मेरे प्यारे राधाकृष्ण

नमस्ते । आखिर हमारा ब्याह हो गया, और बड़ी धूम-धामसे । हमारे गाँवके बुढ़े बुढ़े आदमियोंका कहना है कि यहाँ ऐसा ब्याह हमने तो नहीं देखा । पिताजीने दिल खोलकर खर्च किया । इतना दिल खोलकर मानो वह इस अवसरपर अपना सारा धन पानीके समान बहा देंगे, मानो अपना सब कुछ खर्च देंगे । मैंने एक आध बार दबी ज़वानसे कहा कि आप ज्यादा खर्च कर रहे हैं । इसपर मुस्कराकर बोले—तुम्हारा ब्याह है, तुम्हें बोलनेका अख्तियार नहीं, चुपचाप देखते चलो । इस समय मैं किसीकी न सुनूँगा । फिर मुझे मुँह खोलनेका साहस नहीं हुआ । वे खर्च करते थे, मैं चुपचाप देखता था । इसके बाद बारात पेशावर पहुँची । लड़कीवालोंने हमारे ठहरनेका और भोजन आदिका ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया था कि तुमसे क्या कहूँ ! किसीको भी शिकायतका अवसर नहीं मिला । अगर तुम आते, तो देखते कि ब्याह का प्रबन्ध कैसा किया जा

सकता है। असम्भव था कि किसीके मुँहसे कुछ निकले, और वह वस्तु उसी समय हाज़िर न कर दी जाए।

मगर मुझे केवल एक ही खयाल था। सोचता था देखूँ, श्रीमतीजी कैसी हैं? दहेज मिले या न मिले, पर स्त्री अच्छी मिल जाए। कहीं कुरूपा न हो, तबे के समान काली न हो, भड़ी न हो। हे भगवान्! बचा लेना, नहीं तो जीवन ही नष्ट हो जाएगा। भाँवरें पड़नेका समय आया, तो दिल धक धक कर रहा था। मगर मेरे अंदेशो निर्मूल सिद्ध हुए। मैंने उसका माखन सा हाथ देखा, तो शान्ति और संतोषकी साँस ली—वह सुन्दरी थी। कमसे कम काली न थी। स्त्रीका हाथ देखकर उसकी शक्त-सूरतका अन्दाज़ा किया जा सकता है। भाग्यवान् घर अपनी ड्योढ़ीहीसे पहचाना जाता है। तुम हँसोगे, हँस लो। मगर मैं दावेसे कह सकता हूँ, कि अपने ब्याहमें तुम भी यही करोगे। एक ही महीना बाक़ी है, फिर पूछूँगा। मगर फिर भी मुझे बड़ी चिन्ता थी। यह चिन्ता उस समय तक दूर न हुई, जब तक मैंने घर पहुँचकर देवीजीके साक्षत् दर्शन न कर लिए। गाँव-भरकी स्त्रियाँ कहती हैं, बहू क्या है, चाँद है। मैंने देखा, तो मुग्ध हो गया। चलो, यह चिन्ता तो मिटी।

बीस दिन हुए, हम दोनों यहाँ आ गए हैं। बड़े मजेसे कटती है। अब मालूम हुआ है, जीवन किसे कहते हैं। लज्जाने मुझपर जादू कर दिया है। यही जी चाहता है, उसे आँखोंसे ओभल न होने दूँ। हर समय देखता रहूँ। बड़ी सरल-स्वभाव है। जब देखो, हँसती और मुस्कराती रहती है। कभी चुप नहीं बैठती, कभी उदास नहीं होती। मुझे जी जानसे चाहती है। कचहरीसे लौटता हूँ, तो द्वारपर खड़ी पाता हूँ। ज़रा भी देर हो जाए, तो घबरा जाती है। उसकी आँखोंसे प्यार छलक छलक पड़ता है, मानो आँखें क्या हैं अमृतके भरे हुए कटोरे हैं। ऐसा नारी-रत्न पाकर मैं फूला नहीं समाता। कोई रूप चाहता है, कोई प्यार चाहता है। मुझे स्वर्गकी यह दोनो चीज़ें मिल गईं।

एक मज्जेदार घटना सुनो। कल संध्या-समय कुछ मित्र बैठे थे, और इधर-उधरकी बातें हो रही थीं। इतनेमें एक साहब बोले—आज इंग्लिस्तानकी एक बड़ी बढ़िया नाटक कम्पनी आई है, तमाशा देखना चाहिए। सबने हाँ में हाँ मिलाई। मगर मेरा जी न चाहता था, मैंने इनकार कर दिया। बस जनाब, उन शोहदाँने ऐसे ऐसे ताने मारे कि तुमसे क्या कहूँ ? विवश हो गया। पर सोचता था, लज्जा अकेली है, कैसे जाऊँ ? घबरा गया। मुझे किंकर्तव्यविमूढ़ देखकर एक महाशय बोले, क्यों, स्त्रीसे डरते हो क्या ? अरे भाई ! कोई वहाना बना दो। मैं बड़ा चकराया कि झूठ कैसे बोल दूँ ! दूसरे मित्रने कहा, कचहरीमें जजके सामने, और घरमें स्त्रीके सामने जो सच बोले, उससे बड़ा मूर्ख कोई नहीं। इसपर सब हँसने लगे। लाचार झूठ बोलना पड़ा। कह दिया, आज आर्य-समाजकी मीटिंग है, वहाँ देर हो जाएगी। एक दो बजेसे पहले न लौट सकूँगा, तुम सो रहना। उस गरीबको क्या पता था कि यहाँ कोई दूसरा ही मीटिंग है। उदास होकर बोली, मैं जागूँगी।

हम थियेटरमें पहुँचे। नाटक शुरू हुआ। सब मित्र हँसते थे, मुस्कराते थे, ऐक्टरोँके अभिनयपर टीका-टिप्पणी करते थे। मगर मेरा मन बैठा जाता था। नाटककी ओर ध्यान ही न था। आखिर पहले ऐक्टका अंतिम दृश्य आया। यह दृश्य बड़ा हृदयबेधक था। एक बे-परवा शराबी शराबखानेमें बैठा अपना धन, अपना स्वास्थ्य, अपना मनुष्यत्व अपने हाथोंसे नष्ट कर रहा था, और घरमें उसकी स्त्री उसकी तसवीरसे बातें कर रही थी, और समझती थी कि उसका पति कार-बारकी नई नीतिके सम्बन्धमें अपने मालिकसे बातचीत कर रहा है। मैं चौंक पड़ा। मेरी पीठपर किसीने चाबुक मार दिया। यह काल्पनिक नाटकका काल्पनिक दृश्य न था। मैंने नाटकके दर्पणमें अपना काला मुँह देखा और तलमलाकर खड़ा हो गया। मित्र-मंडली रोकती ही रह गई, मगर मैंने उनकी एक न सुनी, और चला आया। घर पहुँचकर लोहे की खिड़की के बाहर से देखा, तो गरीब लज्जा लालटैन

सामने रक्खे बैठी है, और ऊँघ रही है। मैं कट गया। मुझे अपने आपसे घृणा हो गई। मुझे उसके निकट जाते, उसे छूते, उसे हाथ लगाते संकोच हो रहा था। मैंने मुँहसे कुछ न कहा, मगर दिलमें प्रतिज्ञा कर ली है कि अब लज्जासे कभी भूठ न बोलूँगा।

तुम निश्चित रहो, तुम्हारे ब्याह में जरूर आऊँगा।

तुम्हारा मित्र

प्रताप

२

रामनिवास, जालन्धर

१४ सितम्बर, १९१५

प्यारे राधाकृष्णजी !

नमस्ते। पत्र मिला, पढ़कर आश्चर्य हुआ। आखिर इसका क्या मतलब कि भाभीजी का हाल दो सतरोंमें समाप्त कर दिया। रूपवती है, क्रुद लम्बा है—यह बातें तो ब्याह ही में मालूम हो गई थीं। मैंने जो कुछ पूछा था, उसके बारेमें एक भी शब्द नहीं लिखा, हाँ इधर-उधरकी बातोंसे दो कागज काले कर दिए। मैंने पूछा था, भाभीजी का स्वभाव कैसा है ? तुम्हारे साथ लड़ाई-दंगा तो नहीं करती रहती ? दिन भर क्या करती हैं ? कुछ घरका काम-काज भी करती हैं, या केवल उपन्यास ही पढ़नेका शौक है ? बताओ, इन बातोंका तुमने क्या जवाब दिया ? कुछ भी नहीं। एक हम हैं कि अपनी 'मेम साहब' की एक एक बात लिख देते हैं और पूरे विस्तारसे !

रसोई बनानेके लिए नौकर रक्खा था, देवीजीने निकाल दिया। कहती हैं, हमारी आज्ञादीमें फर्क पड़ता है। हर समय सहमे सहमे रहो, कहीं कुछ सुन न ले, कहीं कुछ देख न ले। यह रोग कौन पाले ? भट पड़े सोना जो छेदे कान। मैंने बहुत कहा, कि तुम्हारी

तबीयत बिगड़ जाएगी। मगर जनाब, कौन परवा करता है ? अब सारा काम-काज अपने “श्रीहाथों” से करती हैं, और ज़रा भी नहीं थकती। और फिर मज़ा यह कि हमारा कोई भी काम नहीं रुकता। सारा घर शीशेकी तरह चमकता है। जब नौकर था, ऐसी सफ़ाई उस समय भी न होती थी। मेरे दफ़्तरका चपरासी है, उससे भाजी आदि मँगवा लेती हैं, और सब काम आप करती हैं। यहां तक कि कमरोंकी सफ़ाई भी खुद करती हैं। मैं रोकता हूँ, और वह हँसकर टाल देती हैं। कहती हैं, अपने घरका काम करनेमें लाज कैसी ? अपने पाँव तो रानियाँ भी धो लेती हैं। और फिर इन कामोंको भी ऐसे श्रद्धा-भावसे करती हैं, मानों किसी उपास्य देवताकी पूजा कर रही हों। एक दिन मैंने कहा, लज्जा, तुमको अब यह काम न करने दूँगा। मैं वकील हूँ, कहार नहीं हूँ। जो कहारियाँ भी न करें, तुम वह कर रही हो। इसपर जोशमें आ गईं, और एक पूरा व्याख्यान दे डाला। भाई मुझपर तो रोव पड़ गया। मैं समझता था, सीधी साधी लड़की है। पर यह तो पूरी फ़िलासफ़र निकली। इसके विचार कैसे गम्भीर हैं ! ऐसी स्त्रियाँ मैंने अपने समाजमें नहीं देखीं। लज्जाका गौरव मेरी दृष्टिमें दिन-प्रति दिन बढ़ता जाता है। परमात्मा मुझे उसके योग्य बनाए।

तुम्हारा मित्र
प्रताप

३

रामनिवास, जालन्धर
२० दिसम्बर, १९१५

बन्धुवैर !

नमस्ते। पत्र आपका मिला, पढ़कर आनन्द आ गया। मुझे सुपने में भी यह आशा न थी, कि भाभीजी ऐसे स्वभावकी होंगी ! श्रीमती

प्रतापचन्द बहुत देर तक हँसती रही। फरमाती हैं, ऐसा जवाब दूँगी, कि छटीका दूध याद आ जाए। हमने कहा—हम ऐसा जवाब देंगे कि सातवींका दही याद आ जाए।

तुम क्रिसमसकी छुट्टियोंमें दिल्ली बुलाते हो, मगर हम वहाँ न आ सकेंगे। हमारी सैर यहीं होगी। लज्जा कहती है, इन छुट्टियोंका रास्ता देखते देखते तो आँखें भी पक गईं, अब दिल्ली आने-जानेमें कैसे उड़ा दें ? तुमको भी असुविधा होगी। मुँहसे शायद मुरब्बतके मारे न कहो, मगर दिलमें जरूर गालियाँ देते रहोगे। और जहाँ तक भाभीजीको मैंने तुम्हारे पत्रोंसे पढ़ा है, वह तो साफ साफ कह देंगी कि तुम दोनों अजीब आदमी हो। हमने हँसी-हँसी में खत लिखा था, तुम सचमुच टिकट लेकर गाड़ीमें बैठ गए। इतना भी न हुआ कि एक आध बार नहीं कर दें। बताओ, उस समय मैं क्या उत्तर दूँगा ? तुम तो गरदन खुजलाते हुए छतकी तरफ देखने लग जाओगे। मगर हमारी आँखें तो ऊपर न उठेंगी।

न भाई, यह नहीं होगा। छुट्टियोंका पूरा सप्ताह यहीं बीतेगा। प्रातःकाल साहब बहादुर और मेमसाहब कम्पनी बाग़की सैर करेंगे, दुपहरको ताश खेलेंगे, शामको सिनेमा हालमें जाकर प्रेम, रूप और यौवनके रसीले तमाशे देखेंगे और रातको घर आकर उन तमाशोंके खास खास हिस्सों की नक़्क़ उतारेंगे। कहो, इससे रंगीन और दिल-चस्प सैर और कहाँ होगी ? दिल्लीमें क्या पड़ा है, लाल क़िला और कुतब साहबकी लाट' और छुट्टियोंके रंगीन दिनोंका गला घोटनेके लिए नीरस भाई और एक कोतवाल भाभी ! बाप रे बाप ! ऐसी मूर्खता कौन कर सकता है ? कमसे कम एक वकील तो नहीं, चाहे उसकी वकालत अभी तक न चली हो।

हाँ एक बातका मुझे बड़ा भय है। लज्जाकी छोटी बहन शान्ता यहाँ कन्या-महाविद्यालयमें पढ़ती है। क्रिसमसमें उसको भी छुट्टियाँ

होंगी। कहीं वह न आ जाए। परमात्मा उसे सुबुद्धि दें, वरना हमारी सारी शुभ इच्छाएँ मिट्टीमें मिल जाएंगी।

तुम्हारा—प्रताप

४

रामनिवास, जालन्धर

२८ दिसम्बर १९१५

माई डियर राधाकृष्ण !

नमस्ते। जिस बातका भय था, वही हुई। शान्ता २४ तारीख को हमारे घर आ गई। अगर पहले पता होता तो भगवान् जानता है, तुम्हारा निमंत्रण जरूर स्वीकार कर लेता। और न होता, दिल्लीकी सैर तो हो जाती। और फिर तुम्हारे यहाँ हमें उस लोकलज्जाकी जरूरत न थी, जिसका हमें आजकल यहाँ खयाल रखना पड़ता है। कुँवारी लड़की है, उसके सामने आँख भी उठाएँ, तो शर्म आती है। एक दिन खाना खा रहे थे। मैं मना करता रहा, लज्जाने थालमें और रोटी फेंक दी। मेरा पेट भर चुका था, एक ग्रासके लिए भी जगह न थी। मैंने पूछा—मुझे तो भूख नहीं, अब यह रोटी कौन खाएगा ?

लज्जाने धीरेसे जवाब दिया—आप खाएँगे।

मैं—मुझे तो अब ज़रा भी भूख नहीं। जो खाना था, खा चुका !

लज्जा—खा कैसे चुके ? एक ज़रा-सी रोटी है। खा जाओ।

मैं—नहीं मेरी रानी ! इस समय तो क्षमा ही कर दो।

बस इसी बातपर ख़फ़ा हो गई कि तुमने मेरी बहनके सामने ये शब्द कहे क्यों ? वह दिलमें क्या कहती होगी ? यही कि दोनों निर्लज्ज हो गए। मेरे सामने भी दिल्लगी करनेसे न रुके। और जो उसने विद्यालयमें जाकर अपनी किसी सहलीसे कह दिया, फिर तो

कैसा दुर्भाग्य है, अपने घरमें भी पराए बनकर रहो और अपनी औरत को भी आँख मारो। क्या सोचा था, क्या हो गया ? और शान्ता इतनी भोली है, कि इन बातोंको ज़रा नहीं समझती, रातको भी बहनके साथ ही सोती है। अब हमारा यह हाल है कि खीरका थाल सामने धरा है, खानेको मन ललचा रहा है, मगर आँख उठाकर देखते भी नहीं कि कहीं कोई यह न कह दे, भूखा है, देखते ही टूट पड़ा। हाथ बढ़ाते भी हैं, तो इस शानसे जैसे श्रीमान्जी अनुरोधसे खा रहे हैं। गो सच यह है कि पेटमें चूहे दौड़ रहें हैं। अगर संसारके व्यवहारका भय न होता, तो थाल ही को मुँह लगा देते, चमचेकी भी परवाह न करते, मगर अब...

तुम पूछोगे, आजकल दिन कैसे कटता है ? दफ्तरमें बैठा कानूनी किताबें देखा करता हूँ। मगर केवल देखता हूँ, पढ़नेमें किस मरदूदका जी लगता है ! मगर शान्ताका आना मुझे ही नहीं अखरा, लज्जाको भी बुरा मालूम हुआ है। एक दिन शान्ता छतपर बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी, लज्जाने मुझे इशारेसे कमरेमें बुलाया और मेरा हाथ प्यारसे अपने हाथमें लेकर कहा—खफा क्यों रहते हो ? क्या करूँ, छुट्टियोंके दिन बड़े मजेसे गुज़रते, मगर शान्ताके मारे सिर नहीं उठाया जाता। मैंने एक आध बार कहा भी है कि तुम्हारी पढ़ाईमें अब्बचन पड़ती होगी, विद्यालय चली जाओ। पर वह इतनी भोली है कि ज़रा नहीं समझती। कहती है, कोई बात नहीं; एक सप्ताहके लिए बहन मिली है, उसे तो न छोड़ूँगी।

मैं (लज्जाकी ठुड्डीको हाथसे ऊपर उठाकर)—अगर यह न आती, तो ताश खेलते, प्यार मुहब्बतकी बातें करते और...

लज्जा मेरा संकल्प जानकर पीछे हट गई, और हँसकर बोली—तुम बड़े वह हो। दूर खड़े रहो।

मैं—क्यों लज्जा, यह क्यों नहीं कहती कि हम तुम्हें मिलनेको रोज़ विद्यालय आ जाया करेंगे।

लज्जा (मुस्कराकर)—यह तीर भी खाली गया। वह कहती है, तुम मेरी बड़ी बहन हो, तुम्हें कष्ट न दूँगी।

बताओ, क्या किया जाए ? उधर तुम अपनी गोपीको साथ लिए मथुरा और वृन्दावनकी सैर करते हो। अगर तुम्हारा कहा मान लेते, तो इस संकटमें काहेको फँसते ?

मगर इतना ही नहीं। मेरे दिलपर एक बोझ-सा पड़ा रहता है। तुम मेरे मित्र हो, तुमसे क्या परदा है ? मुझे लज्जापर कुछ संदेह हो गया है। बहुत यत्न करता हूँ, मनको समझाता हूँ, मगर मन नहीं मानता। कल शामको घर आया, तो लज्जा बैठी कुछ लिख रही थी, और ऐसी तन्मय होकर, कि उसे मेरे आनेकी भी खबर न हुई। शान्ता ऊपर थी। मेरे दिलमें खयाल आया कि आगे बढ़कर लज्जाकी आँखोंपर पीछेसे हाथ रख दूँ। चौंक उठेगी। मैं कहूँगा, तुम्हें मालूम भी न हुआ। यह सोच कर मैंने पाँवसे जूता निकाल दिया, और धीरे धीरे आगे बढ़ा। एकाएक वह चौंक पड़ी। उसने मुझे देखा, और काराज छिपा लिया। मैं कहता था, दिखाओ, क्या लिखती थी ? वह कहती थी, क्यों दिखाऊँ ? न दिखाऊँगी। मैंने प्यारसे कहा, क्रोधसे कहा, गम्भीरतासे कहा। मगर उसपर किसी बात का भी असर न हुआ। राम जाने क्या लिख रही थी ? कोई खास ही बात होगी, वरना मुझसे छिपानेकी जरूरत ही क्या थी ? मैं हारकर चुप हो रहा, मगर सन्देहकी आग दिलमें धधक रही थी। सारी रात नींद नहीं आई।

अब ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई क्रीमती चीज खो गई हो, या जैसे किसी अज्ञात भयसे दिल काँप रहा हो। कई बार खयाल आता है कि बात कुछ भी नहीं; अपने भाई या पिताको पत्र लिख रही होगी। मैं भी कैसा छोटे दिलका आदमी हूँ, ज़रा-सी चञ्चलतापर ऐसी सुशीला, प्रेममयी, पतिव्रतापर ऐसा सन्देह ! निश्चय ही मैं पागल हो गया हूँ। पर क्या करूँ, यह सन्देह साँपके विषके समान पल पल

बढ़ता जाता है। संसारकी हर एक चीज बदली हुई दिखाई देती है। परमात्मा करे, यह वहम ही हो। मगर जब तक कागज देख न लूँगा, चैन न आएगा।

तुम्हारा
चिन्ता-ग्रस्त प्रताप

५

रामनिवास, जालन्धर
३ जनवरी १९१६

भाई जान !

तुम्हारा पत्र मिला, मगर अब मुझे समझाना बेकार है। जो होना था, हो चुका। तुम्हारा खयाल है, मेरा दिमाग चल गया है। तुम समझते हो, लज्जा सती-साध्वी है। मेरी भी ऐसी ही धारणा थी। मगर काश ऐसा होता, तो इस समय इतना दुखी, अधीर, अशान्त न होता। तुम्हें यह सुनकर शोक होगा कि लज्जा इस दुनियासे चल बसी, मगर मुझे इसका ज़रा भी शोक नहीं। हाँ, अगर न मरती, तो ज़रूर शोक होता।

वह पत्र मैंने पढ़ लिया। संध्याका समय था, लज्जा शांताको छोड़नेके लिए विद्यालय चली गई थी। मैंने मैदान साफ़ पाकर मेज़की दराज़ खोल ली। मुझे आशा न थी कि ख़त वहाँ होगा। मैं समझता था; वह ऐसी अदूरदर्शी, इतनी मूर्खा नहीं। मगर वह कागज़ वहीं था, उसी तरह, न लपेटा हुआ, न तह किया हुआ। मैंने उसे पढ़ा, और मेरा सिर चकराने लगा। यह मामूली कागज़ न था, लज्जाके पापोंका प्रमाण था। यह चिट्ठी न थी, मेरे प्रेमापमानकी घृणा-पूर्ण कहानी थी। मैंने सिर पीट लिया। किसे खयाल था कि लज्जा जैसी नेक लजीली, प्यार करनेवाली स्त्री ऐसी होगी ? किसी दूसरेके मुँहसे मैं

यही बात सुनकर उसपर कभी विश्वास न करता, मैं उसका मुँह नोच लेता, मैं उसकी गरदन मरोड़ देता। मगर अब... यह संदेह न था, लज्जाके अपने हाथकी लिखी हुई चिट्ठी मेरे सामने थी, और मैं उसे अपनी आँखोंसे पढ़ रहा था। यह प्रेम-पत्र किसी मनमोहनके नाम था—“प्यारे मनमोहन, ब्याह हो गया; पर मैं अब भी तुम्हारी हूँ। मेरा पति मुझे बहुत चाहता है, मेरी हर एक इच्छाको पूरा करना अपना धर्म समझता है। मगर तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मुझे उसकी शक्लसे भी घृणा है। उसे देखकर मेरी देहमें आग-सी लग जाती है। अगर अपने बसकी बात होती, तो एक दिनमें भाग खड़ी होती, और तुम्हारे पास पहुँच जाती। पर अपनी और तुम्हारी बदनामीका भय है.....।

राधाकृष्ण, यह अधूरा पत्र पढ़कर मुझपर बिजली-सी गिर पड़ी। मैं वहीं कुर्सीपर बैठ गया। नहीं, बैठा नहीं, गिर पड़ा, और फूट फूट कर रोया। इस तरह मैं अपने जीवनमें आज तक कभी नहीं रोया। कितनी लज्जा, कैसे शोककी बात है, कि जिस स्त्रीपर मैं अपनी जान निछावर करता था, जिसका प्रेम मेरे दिलका प्रकाश था, जिसकी मुस्कराहट देखकर मेरे शरीरके रोम-रोममें आनन्दकी लहर दौड़ जाती थी, वही स्त्री किसी दूसरेको चाहती थी। और मैं कितना मूर्ख था, कि मुझे इसका ज़रा भी पता न था। वह द्वारपर खड़ी होकर मेरी प्रतीक्षा करती थी, वह मुझे देखकर खुशीसे भूमने लग जाती थी, उसकी आँखें चमकने लगती थीं, मगर प्यारकी ये धोखेबाज़ियाँ केवल इसलिए थीं कि मैं उल्लू बना रहूँ। परमात्मा जाने, इसी छत-तले बैठकर उसने अपने अपवित्र हाथोंसे इसी तरहके और कितने पाप-पूर्ण पत्र लिखे होंगे।

थोड़ी देर बाद वह आ गई। उसके मुँहपर इस समय भी वही सादगी थी, आँखोंमें वही प्रेम ! मगर अब मैं पागल नहीं हो गया। अब मैंने उसका दिल देख लिया था। ऊपर जलकी लहरें खेलती थीं, नीचे

भयानक घड़ियाल बैठा था। जब तक घड़ियाल न देखा था, तब तक धोखा खाता रहा, पर अब मैंने वह घड़ियाल देख लिया था। लज्जाने मेरे बदले हुए तेवर देखे, और डर गई। उसने मुझे मनाना चाहा। उसने मेरे क्रोधका कारण पूछा, मगर मैंने उसे झिड़ककर परे हटा दिया। अब वह रो रही थी। पता नहीं क्यों, उसकी आँखोंमें आँसु देख कर मेरा दिल घबरा गया। मुझे संदेह होने लगा कि मैं उसके साथ अन्याय कर रहा हूँ। मैं आगे बढ़ा कि उसे गलेसे लगा कर चुप करा दूँ। सहसा उसका पत्र याद आ गया। मैंने अपने आपको रोक लिया। उसका यह रोना भी उसके प्रेमके समान धोखा था। मैं पागलोंकी तरह उठ कर बाहर चला गया। वह रोकती रह गई, मगर मैंने उसे धक्का देकर गिरा दिया, और बाहर निकल गया। वह बड़े जोरसे ज़मीनपर गिरी, मगर मैंने ज़रा भी परवा न की।

रातको ग्यारह बजे मैं घर लौटा। लज्जा रसोई घरमें बैठी मेरी राह देख रही थी। पर मुझे भूल न थी, मैंने साफ़ कह दिया, मैं कुछ न खाऊँगा। कितनी धोखेबाज़ थी, इस समय भी इस तरह फूट फूट कर रोई, मानो उसका दिल फटा जा रहा है। मगर मैं उसके कपटको ख़ूब समझता था। दूसरे दिन सोकर उठा तो वह चारपाईपर मरी पड़ी थी। पता नहीं विष खा लिया या भेद खुल जानेके भयसे दिलकी धड़कन बन्द हो गई। मैंने परमात्माको धन्यवाद दिया कि ख़ूबसूरत बलासे पीछा छूटा। ब्याहपर जितना खुश हुआ था, उसकी मौतपर उससे भी ज़्यादा खुश हुआ।

तुम्हारा

प्रताप

६

रामनिवास, जालन्धर

५ जनवरी १९१६

प्यारे भाई !

तुम्हारा खयाल ठीक है। मैं सन्देह ही सन्देहमें मारा गया।

मैंने अपने हाथोंसे अपनी सोनेकी लंका जलाकर भस्म कर ली। वह सचमुच देवी थी। उसके मनमें छलकी छाया भी न थी। मगर मेरी आँखोंपर परदे पड़ गए थे। अगर मैं उस समय ज़रा भी सोच-समझसे काम लेता, तो आज यों रोना न पड़ता। मगर अब क्या हो सकता है ? जो होना था, हो गया। पहले छिपाया था, पर अब न छिपाऊँगा। न छिपानेसे कुछ लाभ है। लज्जाने विष नहीं खाया, न उसे किसी साँपने काटा था, न दिल की धड़कन बंद हुई। उसका हत्यारा मैं हूँ। उसे खुद मैंने मारा है। मेरे ही पापी हाथोंकी निर्दय अँगुलियोंने उसका गला घोट दिया था।

रातका समय था, वह दिन-भरकी चिन्ता और संतापसे थक कर सो गई थी। उसके गुलाबी गालोंपर उसके आँसुओंके निशान अभी तक बाक़ी थे। उसका एक हाथ सिरके नीचे था, दूसरा सीनेपर था। चेहरेपर हार्दिक वेदनाकी गहरी छाया थी। इसपर भी उसकी मोहनी छबिकी शोभासे सारा कमरा जगमगा रहा था। ऊपर बादल थे, नीचे चाँद चमक रहा था। मगर जिसकी आँखें दुखती हों, उसको रोशनी भी चुभती है। मेरी भी यही दशा थी। उसका रूप उस समय मुझे ज़हर मालूम हुआ। मेरा खून खौल रहा था। मैं धीरेसे उसके पलंगपर बैठ गया। उसकी आँखें खुल गईं। उसने मुझे प्यारकी अध-खुली आँखोंसे देखा, और अपने साथ लिटानेके लिए हाथ बढ़ा दिए। अब मैं क्रोधको बसमें न रख सका। मैंने उसका गला पकड़ लिया, और उसे अपनी देहकी पूरी शक्तिसे दबाया। उसकी आँखें बाहर निकल आईं। मगर उसमें भय न था, आश्चर्य था। वह समझ न सकती थी कि मैं क्या कर रहा हूँ, और उसका अपराध क्या था ? वह गला छुड़ानेके लिए चेष्टा करती थी और मैं पागलोंके समान उसे और भी जोरसे दबाता जाता था। यहाँ तक कि उसकी चेष्टा समाप्त हो गई; और इसके साथ ही उसकी जीवन-लीला भी समाप्त हो गई। अब पलंगपर बह न थी, उसकी लाश थी। उस समय मैं

खुश था। मगर वास्तवमें यह मेरी जीत न थी, मेरे जीवनकी सबसे बड़ी हार थी।

इसका ज्ञान मुझे आज ही दोपहरको हुआ। शान्ताकी कुछ पुस्तकें मेरे यहाँ पड़ी थीं, वह लेने आई। बहनका घर था, मगर बहन न थी, शान्ता फूट फूट कर रोने लगी। उसे रोते देखकर मेरी आँखें भी सजल हो गईं। रूमाल निकालकर मुँह पोंछने लगा, तो जेबसे एक कागज़ गिर पड़ा। यह वही कागज़ था जिसने लज्जाका राज खोल दिया था। जिसे देखकर मैं पागल हो गया था। जो उसके पापोंका जीता-जागता प्रमाण था। शान्ताने उसे उठा लिया, और उचटती हुई दृष्टिसे देखकर ठण्डी आह भरी।

मुझे आश्चर्य हुआ—तो क्या यह भी जानती है? मेरे दिलमें उथल-पुथल होने लगी। मैंने काँपते हुए कहा—शान्ता !

शान्ताने अपनी आँसुओंसे भरी हुई आँखें ऊपर उठाईं, और बेपरवाईसे मेरी तरफ देखा। उनमें बहनकी मौतके दुःखके सिवाय और कुछ भी न था।

मैं—क्या तूने यह कागज़ देखा है ?

शान्ता—हाँ देखा है।

और वह अब भी उसी तरह शान्त थी। मेरा दिल बाज़के पंजेमें फँसे हुए कबूतरकी तरह तड़प रहा था।

मैं—यह तुम्हारी बहनका पत्र है।

शान्ता—नहीं, यह उसकी पहली कहानीका पहला भाग है।

मैंने शान्ताके ये शब्द सुने, मगर इनका अर्थ न समझ सका। मगर मैं इतना जान गया, कि मुझसे कोई भयानक भूल हो गई है। इस समय मेरा दिल बड़े जोर जोरसे धड़क रहा था, और उसकी आवाज़ मेरे कानों तक आ रही थी।

मैंने घायल पंछीके समान तड़प कर पूछा—शान्ता, तूने क्या कहा ?

शान्ताने मेरी तरफ देखा और अपनी बहनकी यादमें ठण्डी साँस भर कर कहा—जीजाजी, आपसे क्या कहूँ, बहनजीने यह कहानी कैसे चाचसे लिखनी शुरू की थी। वे इसे छः पत्रोंमें समाप्त करना चाहती थीं। यह उस कहानीका पहला पत्र है, और वह भी अधूरा। मैंने कहा—जीजाजीसे पूछ लो, तो कहानी और भी अच्छी बन जाए। मगर उन्होंने जवाब दिया,—दुर पगली ! उनको मालूम हो गया, तो सारा मज्जा ही किरकिरा हो जाएगा। मज्जा जब है, कि उनको पता भी न लगे, और कहानी किसी पत्रिकामें छपकर सामने आ जाए। हैरान हो जायँगे, दङ्ग रह जायँगे ! कहेंगे, लज्जा, मुझे बिलकुल पता न था कि तू कहानियाँ भी लिख सकती है। पर किसे खयाल था कि मौत घातमें है। कहानी समाप्त न हुई, लिखनेवाली समाप्त हो गई।

मैं तड़प कर खड़ा हो गया—तो वह निर्दोष थी, और मैं ही अन्धा हो गया था। अब मुझे उसकी एक एक बात याद आने लगी। वह भोला-भाला चेहरा, वह सादगी, वह अचरजमें डूबी हुई सुन्दरता, वह सहमी हुई आँखें, आज सब कुछ सुपना हो गया। कैसी स्त्री थी, जिसपर स्वर्गकी देवियोंको भी डाह होता, मगर मैं उसके योग्य न था। मुझे उसकी पूजा करनी चाहिए थी, मगर मैंने अपने निर्दयी हाथोंसे उसका गला घोट दिया और परमात्माका न्याय संसारके इस सबसे बड़े अन्यायको चुपकी आँखोंसे देखता रहा, और उसको ज़रा भी जोश न आया।

अब रात हो गई है। कमरेका दिया रोशन है, मगर मेरे दिलका दीपक बुझ चुका है। किसी किसी समय ऐसा जान पड़ता है, कि वह रसोई घरमें खाना बना रही है। अभी आएंगी, अभी कुरसीके पीछे खड़ी हो जाएंगी। वही मधुर, वही सुकोमल, प्यारके अमृतमें सना हुआ वही स्वर फिर सुनाई देगा। हृदयको विश्वास ही नहीं होता, कि वह मर चुकी

है। मैं इस तरह चला, जैसे कोई सुपनेमें चल रहा हो, और रसोई-घरमें जा पहुँचा। वहाँ प्रकाश था। तो क्या प्रकृतिके न बदलनेवाले नियम बदल गए ? मेरा दिल धड़कने लगा। मैं जल्दीसे आगे बढ़ा। मगर वहाँ पहाड़ी नौकर रोटी बना रहा था, जो मेरे एक वकील मित्रने भेज दिया था। मैं रोता हुआ लौट आया। मुझे विश्वास हो गया कि सचमुच मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया। अगर वह जीती होती, तो वह अपनी रसोईमें किसी पराएको पाँव भी न धरने देती। हा विधाता ! यह प्रेमका नाटक कितनी जल्दी समाप्त हो गया।

कमरेमें वह मेज़ उसी जगह पड़ा है। वह कुर्सी भी वहीं धरी है, जिसपर बैठकर उसने वह पत्र-गाथा लिखनी शुरू की थी। क्लम, दवात, कागज़ सब कुछ वहीं हैं, केवल वह नहीं है। सन्दूकोंमें उसके हाथोंके तह किए हुए कपड़े भी उसी तरह पड़े हैं, खूँटीपर उसकी रेशमी साड़ी उसी तरह लटक रही है। मशीनमें आधी सिली हुई कमीज़ उसकी राह देख रही है। मगर वह कहाँ चली गई ? साहित्यके साथ खेलने चली थी। मगर गरीबको क्या मालूम था कि यह साहित्य-क्रीड़ा नहीं मृत्यु-क्रीड़ा है। मैं वकील हूँ। कचहरीमें आकाश-पातालकी बातें करता हूँ। पर इतनी समझ न आई कि उससे पूछ तो लूँ, यह पत्र किसके नाम है ? सच है, बुरे दिनोंमें आँखें बंद हो जाती हैं।

अब नौ बज गए हैं, दस बजे मेरे और मेरी लज्जाके मा-बाप आ रहे हैं। उनको अपना काला मुँह कैसे दिखाऊँगा ? जब पूछेंगे, कि लज्जा कहाँ है, तो क्या जवाब दूँगा ? उसकी मौतका कारण क्या बताऊँगा ? हे भगवान् ! वह समय कभी न आए। मगर दीवार की घड़ी टिक टिक कर रही है, और समय बीत जाएगा। उस समय मैं क्या करूँगा ? नहीं, यह असम्भव है। यह नहीं होना चाहिए। यह नहीं हो सकता। यह नहीं होगा। अब मैं ज़िन्दा नहीं रहूँगा।

यह दीवार-घड़ी उस रात भी इसी तरह टिक टिक कर रही थी।

मैंने उसका गला दबाया और यह टिक टिक करती रही। वह तड़प कर ठण्डी हो गई, और यह टिक टिक कर रही है। और एक घण्टे के बाद भी जब कि मेरे और उसके अभागे माता-पिता हम दोनोंकी रहस्यमयी मृत्युपर खूनके आँसू बहा रहे होंगे, इसकी टिक टिक इसी तरह जारी रहेगी। नमस्ते।

तुम्हारा अभागा मित्र,
प्रताप



खरा खोटा

१

पंडित प्रभुदत्त बैरिस्टरी पास करके लौटे, तो प्रायः रात रात भर घरसे बाहर रहने लगे। उनके मित्र बहुत थे, हर रोज किसी न किसीके घर दावत रहती। बूढ़े पिता कौशल्यादास बहुत पढ़े-लिखे न थे, मगर उन्होंने दुनिया देखी थी। पुस्तकोंके जानकार न थे, दुनियाके जानकार थे। बेटेके रंग-ढंग देखकर मनमें कुढ़ते थे, मगर मुँहसे कुछ कहते न थे। आखिर जब बेटा रातके बारह बारह बजेतक बाहर रहने लगा, तो उनके धीरजका बन्धन टूट गया। रोगी दिनकी पीड़ा सह लेता है, पर रातका दुख सीनेका पहाड़ हो जाता है। उसे सहना आसान नहीं। पंडित कौशल्यादासका भी यही हाल था। वे समझते थे ये लच्छन अच्छे नहीं, बेटा हाथसे निकला जाता है। रातको घरसे बाहर रहना बड़ियोंकी भूमिका है। कुछ दिनों तक सोचते रहे कि कुछ कहें या न कहें। कहीं बेटा बुरा न मान जाए, कहीं सामने न बोल उठे। आज तक कभी उसने मेरे सामने सिर नहीं उठाया; कहीं ऐसा न हो, मेरी डाँट-डपट सदाके लिए उसे मेरे हाथ से खो दे।

पण्डित कौशल्यादासने कुछ दिनों तक मुँह न खोला। मगर जब उन्होंने देखा कि रोग दिन पर दिन बढ़ता जाता है और व्यसन

आदत बन रहा है तो चुप न रह सके। एक दिन बोले—बेटा, दिनको जहाँ चाहो जाओ, पर रातको बाहर न रहा करो। तुम वहाँ जलसे रचाते हो, हम यहाँ परेशान रहते हैं और तुम्हारी राह देखते हैं। इससे सारे घरकी नींद खराब होती है।

प्रभुदत्त बाहर जानेको तैयार थे। यह सुनकर उनके पाँव रुक गए। धीरेसे बोले—मैं इन दावतोंसे खुद तंग आ गया हूँ। आप शायद विश्वास न करेंगे, पर मैं सच कहता हूँ, मेरा भी शामको घरसे निकलनेको जी नहीं चाहता। मगर मुशकिल यह है, कि जब कोई मित्र बुला भेजता है तो 'न' करना मुशकिल हो जाता है। आप ही बताएँ, क्या करूँ, क्या न करूँ। मैं आप परेशान हूँ।

कौशल्यादास—तो क्या हर रोज़ तुम्हारे मित्र ही बुला भेजते हैं? मुझे यह खयाल न था।

प्रभुदत्त—मैंने विलायतमें शिक्षा पाई है, मुझे वहाँका पानी नहीं लगा। मैं उन लोगोंमें हूँ जो पिताकी आज्ञा न मानना पाप समझते हैं। अब जो हो गया सो हो गया। पर आजकी साँझके बाद कभी घरसे बाहर न निकलूँगा!

कौशल्यादास प्यारसे बेटेकी तरफ़ देखकर बोले—तो क्या आज भी किसी मित्रके यहाँ जा रहे थे?

प्रभुदत्त—जी हाँ। डाक्टर कपिलदेवने बुलाया था।

कौशल्यादास—और कल कहाँ गए थे?

प्रभुदत्त—प्रोफ़ेसर शर्माके यहाँ।

कौशल्यादास—मगर तुम तो लगातार कई दिनोंसे साँझको बाहर जाते हो और आधी रातको लौटते हो। क्या तुम्हारे इतने मित्र हैं? मुझे सन्देह है, वे तुम्हारे मित्र न होंगे, परिचित होंगे। आज कल इतने सच्चे मित्र कहाँ मिलते हैं?

प्रभुदत्तके आत्मा-सम्मानको चोट पहुँची। मुँह लाल हो गया। सँभल कर बोले—मुझे इन में से हर एक पर पूरा विश्वास है। चाहूँ तो जान मांग लूँ, चूँ तक न करेंगे।

कौशल्यादास—यह सब कहनेकी बातें हैं। नई सभ्यता दावे बहुत करती है, मगर कर्म-क्षेत्रमें उसे दो कदम भी चलना कठिन हो जाता है।

प्रभुदत्तकी भौहें टेढ़ी हो गईं। सिर उठा कर बोले—मेरे मित्र ऐसे नहीं हैं।

कौशल्यादास—तुम बुरा तो मानोगे, पर एक सवालका जवाब दो। क्या तुमने कभी उनकी परीक्षा भी की है ?

प्रभु०—परीक्षा उसकी की जाती है, जिसपर सन्देह हो। मुझे उनपर सन्देह ही नहीं है।

कौशल्यादास—मगर मैं तो जब तक परीक्षा न कर लूँ, तब तक किसीपर भी विश्वास नहीं करता। तुम्हारे मित्रोंपर कैसे विश्वास कर लूँ ?

प्रभुदत्तकी आँखें लाल हो गईं, मगर पिताकी तरफ देखकर क्रोध ठण्डा हो गया। जब ज़रा अपने आपमें आए तो बोले—आप चाहें तो परीक्षा कर लें। जब सोना खरा है, तो उसे कसौटीका क्या भय ?

२

रातके एक बजे कौशल्यादास और प्रभुदत्त घरसे निकले और लाला सिकन्दरलालके मकानपर पहुँचे। ये साहब उस शहरके सबसे बड़े ठेकेदार थे। इनसे और प्रभुदत्तसे पुरानी मित्रता थी। स्कूलमें भी एक साथ पढ़े थे। बचपनके दिनोंको याद करके उनकी आँखोंमें चमक आ जाती थी। प्रभुदत्तको यों तो अपने सब मित्रोंपर भरोसा था, मगर लाला सिकन्दरलाल पर ख़ास भरोसा था। उसकी प्रेमसे सनी हुई बातें सुनकर उनका दिल अधीर हो जाता था, और वे आनन्दसे

भूमने लग जाते थे । कौशल्यादासने सबसे पहले उन्हींकी परीक्षाका निश्चय किया । इस समय कौशल्यादासकी बगलमें एक कपड़ा था, जिसमें कोई चीज लिपटी हुई थी ।

सिकन्दरलालने प्रभुदत्त और कौशल्यादासको अपने मकानपर देखा, तो बेहद खुश हुए । बार बार कहते थे—यह मेरा सौभाग्य है, जो आपके दर्शन हुए । प्रभुदत्त तो रोज आता है, मगर आपके चरणोंसे मेरा घर आज ही पवित्र हुआ है । आपने बड़ी कृपा की । आपने बड़ी मेहरबानी की । मैं तो निहाल हो गया ।

कौशल्यादासने बात काट कर कहा—बेटा, क्या कहूँ, तुम्हारे भाईने राजब्र ढाया है । इस समय सहायता के लिए तुम्हारे पास आया हूँ, तुम सहायता न करोगे, तो हमारा बचाव कठिन है ।

सिकन्दरलालने प्रभुदत्तकी तरफ देखा, और डर गए । इस समय न उनके होठोंपर वह मुस्कराहट थी, न आँखोंमें वह प्रकाश । निराशाकी मूर्ति इससे अच्छी किसी चतुर चित्रकारने भी कम बनाई होगी । क्या यह वही हँसमुख प्रभुदत्त था, जिसकी रोशन आँखें मित्र-मण्डलीको जगमगा देती थी ? तब आँखें इतनी उदास और इतनी सूनी सूनी न होती थीं, उस समय मुखपर चंचल मुस्कराहट खेलती थी, इस समय निराशाकी पीली छाया आ बैठी थी ।

हैरान होकर सिकन्दरलालने पूछा—मगर बात क्या है ? मुझे तो चिन्ता लग गई ।

कौशल्यादासने थोड़ी देर सोचा और फिर चारों तरफ देख कर धीरेसे कहा—तुम्हारे दोस्तने आज अपनी स्त्रीकी हत्या कर डाली है ।

सिकन्दरलाल चौंक पड़े । पिता-पुत्रकी तरफ घूर घूर कर देखा और सोचने लगे—ये यहाँ क्यों आ मरे ? मैं इनकी क्या सहायता कर सकता हूँ ? रातके एक बजे आए हैं, पहले पता होता तो किवाड़ ही न

खोलता । नौकरसे कहलवा देता, बीमार हैं, इस समय जगानेसे मना किया है । पर अब क्या करूँ ? इसको भी मेरा ही घर सूझा । और पचासों दोस्त हैं । किसी दूसरेके पास क्यों नहीं ले गया ? मुझसे यह तो न होगा ! पराई आगमें कौन कूदे ? किसीके कानमें भनक भी पड़ गई तो मारा जाऊँगा । घरकी तलाशी होगी, पुलिस पकड़कर ले जाएगी, और सम्भव है, सजा भी हो जाए । उस समय यह मित्रता मेरे किस काम आएगी ? परन्तु 'न' कैसे करूँ ? सैकड़ों बार सच्चे प्रेमके दावे किए हैं, प्यारकी क्रसमें खाई हैं, बढ़ बढ़कर बातें बनाई हैं । यह मनमें क्या कहेगा ?

इन विचारोंमें सिकन्दरलाल कई सिनट तक उलझे रहे, फिर बोले—मुझे यह बात सुनकर बहुत खेद हुआ । इनके लिए मैं जान भी दे सकता हूँ, मगर मेरे पड़ोसमें पुलिस इन्स्पेक्टर रहता है । क्या बताऊँ बड़ा ही हज़रत और काइयाँ है । उसकी आँखें हृदयकी तरह तक पहुँचती हैं । और मुझ जैसे दुर्बल हृदय आदमी की आँखें तो अपने आपही सारा भेद खोल देंगी । तो भी मैं आपसे बाहर थोड़ा ही हूँ । आज्ञा कीजिए, मैं पालन करूँगा ।

प्रभुदत्तने यह जवाब सुना, तो उसकी आँखें खुल गईं । उसे यह खयाल न था । वह समझता था, सिकन्दरलाल मेरे लिए फांसीपर चढ़नेको भी तैयार हो जाएगा । मगर इस उत्तरसे वह हैरान रह गया । खयाल आया कि यह आदमी जब मेरे लिए कुछ करनेको तैयार नहीं तो फिर मुँहसे इतनी बातें क्यों बनाता है ? साफ़ शब्दोंमें क्यों नहीं कह देता कि मुझसे कुछ न हो सकेगा ? कोई सीधा-सादा आदमी होता तो साफ़ शब्दोंमें अपने मनकी बात कह देता । उस समय उसके मनमें यही विचार आया कि क्या सभ्यता झूठका दूसरा नाम है ?

तब उसने अपनी आँखें संसारदर्शी पिताकी ओर उठाईं । उनमें दिल धरा था । मगर सिकन्दरलालको उनमें कुछ भी दिखाई न दिया ।

और कौशल्यादासको ऐसा मालूम हुआ, मानों प्रभुदत्त चिल्ला चिल्ला-कर कह रहे हैं—चलो यहाँ क्या रक्खा है ? मैंने बहुत धोखा खाया, मुझे यह आशा न थी, मैं मूर्ख था ।

३

इसके आध घण्टे बाद पिता-पुत्र दोनों शहरसे बाहर निकले और एक दूसरी कोठीमें पहुँचे । यहाँ मिस्टर के० सी० सेठी इञ्जीनियर रहते थे । ये भी प्रभुदत्तके मित्र थे और इनपर भी प्रभुदत्तको बड़ी आशा थी । आज कौशल्यादास इनके प्रेमकी परीक्षा करने आए थे । मगर प्रभुदत्तके पाँव आगे न बढ़ते थे । उनमें किसीने रस्सी नहीं डाली । बेड़ियाँ नहीं डालीं, उन्हें कोई रोक नहीं रहा था, वे थके-माँदे नहीं थे, फिर भी उनके पाँवमें शक्ति न थी । उनके पाँव अशक्त थे । मगर उन पाँवसे अधिक अशक्त उनका मन था ।

मिस्टर सेठी जगाए गए । पहले तो वे बहुत सटपटाए । मगर जब उनको बताया गया कि पण्डित प्रभुदत्त और उनके पिता आए हैं, तो चुप हो गए । जल्दीसे मरदानेमें आकर बोले—आप बहुत रात बीते आए हैं, यह मिलनेका समय नहीं है । कोई खास बात होगी, ऐसा जान पड़ता है । कहिए, क्या आज्ञा है ?

पण्डित कौशल्यादासने प्रभुदत्तकी ओर इशारा किया और जवाब दिया—तुम्हारे भाईने आज अपनी स्त्रीको मार डाला है । हमने उसका शरीर तो आँगनमें दबा दिया है । पर जब सिर दबाने लगे तब नौकरोंकी आँखें खुल गईं । अब हम सिरका क्या करें ? बाहर दबाना बहुत खतरनाक है । अगर कोई देख लेगा, तो आफत आ जाएगी । वैसे फेंक देना भी ठीक नहीं । अब तो तुम्हारी शरण आए हैं, अपने घरमें जगह दो । जीवन भर तुम्हारा उपकार न भूलेंगे ।

मिस्टर सेठीने कुछ देर तक विचार किया और फिर बोले—माफ़

कीजिए, मैं साफ़गो आदमी हूँ, मुझे झूठ बोलना अच्छा नहीं लगता। मैं आपको धोखेमें नहीं रखना चाहता। यह रोग मेरे बसका नहीं। और जो कहो, कर सकता हूँ, पर अपने आपको इस हत्याके अभियोगमें फँसानेका मुझमें बूता नहीं। मेरे भी बाल-बच्चे हैं, मुझे उनका भी खयाल है। और मैं खुद भी जीना चाहता हूँ।

प्रभुदत्तके अन्देशे पूरे हो गए। यह पानीका ठण्डा भरना न था, लहरें मारनेवाली नदी न थी, यह जलते रेतका थल था। इसमें आकर्षण था, पर सच्चाई न थी! इसमें जादू था, पर प्रेम न था। प्रभुदत्तकी आँखें झुक गईं। आज उन्होंने मित्रोंकी प्रीत खो दी थी। इसकी अपेक्षा वे हजारों रूपयोंका नुक़सान हँसकर सह लेते।

४

आकाशमें तारे जल रहे थे, ज़मीनपर बिजलीके लैम्प जल रहे थे, मगर प्रभुदत्तके हृदयमें अथाह अन्धकार छाया हुआ था। चारों तरफ़ देखते थे, कहीं आशाकी किरण दिखाई न देती थी। सोचते थे, आज तक भौंदू ही बना रहा। कैसी मीठी बातें करते थे! ऐसा जान पड़ता था, मानो इनके बराबर मेरा और कोई शुभचिन्तक न होगा, प्राण तक क़ुरबान कर देंगे। मुझे इनके शब्दोंपर कभी सन्देह तक नहीं हुआ। मैं समझता था, सब कुछ हो सकता है, केवल यह नहीं हो सकता। पर आज आँखें खुल गईं। मैं भी कैसा मूर्ख था, दूधके धोखेमें छल्ला पीता रहा, और कभी सन्देह तक नहीं हुआ। मैं बुद्धिहीन अन्धा था। सोनेके खयालमें पीतल उठा लाया। मगर आज अँधेरा दूर हो गया। अब धोखेमें न आऊँगा।

प्रभुदत्त इन विचारोंमें मग्न थे, और उनके सामने बैठे कौशल्यादास बेटेके अज्ञानपर हँस रहे थे। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा—क्यों बेटा, अभी क्या किसी और पर भी भरोसा है? अगर है तो चलो उसे भी देख लें।

प्रभुदत्तने शरमसे आँखें झुका लीं, और जवाब दिया—अब और शरमिंदा न कीजिए। इनका इस तरह आँखें फेर लेना मुझे कभी न भूलेगा।

कौशल्यादास—तुम्हें इनके ऊपर बहुत भरोसा था ?

प्रभुदत्त—पर अब तो कान हो गए।

कौशल्यादास—कैसी बढ़ बढ़कर बातें बनाते थे !

प्रभुदत्त—भूठकी जीभ बहुत चलती है।

कौशल्यादास—चलो, तुम्हारी आँखोंसे परदा तो हटा, यही शानीमत हैं।

प्रभुदत्त—यह मेरे जीवनका पहला सबक है, आजसे किसीपर विश्वास न करूँगा। एक अँगरेज फिलासफरका वचन है, संसारमें परमेश्वर मिल सकता है, दोस्त नहीं मिल सकता। मैं इस विचारपर हँसता था, मगर आज इसपर विश्वास हो गया। दुनियामें दोस्त नहीं हैं।

कौशल्यादास—यह भी तुम्हारी भूल है। दुनिया सच्चे दोस्तोंसे खाली नहीं है, मगर यह चीज किसी किसी भाग्यवान्के ही हाथ लगती है। हर किसीको नहीं मिलती।

प्रभुदत्त—मैं तो इसे भी भूल ही समझता हूँ। परियोंके समान सच्चे मित्रोंकी कहानियाँ सभीने सुनी हैं, मगर उन्हें देखा किसने है ?

कौशल्यादास—मैंने देखा है।

प्रभुदत्त—मुझे तो अब विश्वास नहीं होता। आपने भी आज्ञमाया न होगा।

कौशल्यादास—अच्छी तरह आज्ञमा चुका बेटा ! चाहो तो तुम भी आज्ञमा लो। फिर तो मानोगे ?

प्रभुदत्त—मगर मेरा दिल नहीं मानता । ये भी बड़ी बड़ी बातें बनाते थे ।

कौशल्यादास—तो आज रातको तैयार रहना, मैं तुम्हें आज अपना मित्र दिखाऊँगा । तुम देखकर चौंक उठोगे । तुम्हारी आँखें खुल जाएंगीं । तुम कहोगे, क्या इस दुनियामें यह भी हो सकता है ? मेरे मित्रोंकी संख्या अधिक नहीं है । मैंने सारी उम्रमें केवल एक मित्र बनाया है । और यह मित्र वह है, जो प्राण दे देगा, पर धोखा न देगा ।

५

आधी रातका समय था, बाप-बेटा फिर घरसे बाहर निकले और चक्करदार गलियोंसे गुज़रते हुए एक छोटेसे मकानके सामने जा पहुँचे । कौशल्यादासने आवाज़ दी—लाला साईंदास !

लाला साईंदास सो रहे थे, आवाज़ सुनकर जाग उठे और नीचे भाँक कर बोले—कौन है इस समय ?

कौशल्यादास—मैं हूँ । दरवाज़ा खोल दो ।

लाला साईंदासने आवाज़ पहचानी और समझ गए कि कोई मुसीबत आई है, नीचे आकर बोले—क्या बात है ? साफ़-साफ़ कह दो ।

यह कहकर वे दोनोंको अन्दर ले गए और एक चारपाईपर बैठ गए । कल वाला नाटक फिरसे दोहराया गया । कौशल्यादासने सारी कहानी फिरसे सुनाई । साईंदास बोले—वह सिर कहाँ है ?

कौशल्यादासने कपड़ेमें लपेटी हुई चीज़की तरफ़ इशारा किया और कहा—मेरे पास है ।

साईंदास—मुझे दे दो ।

कौशल्यादास—क्या करोगे ?

साईदास—ठिकाने लगा दूँगा ।

कौशल्यादास—कहीं भण्डा न फूट जाए !

साईदास—नहीं फूटेगा

कौशल्यादास—कोई भाँप न जाए । मामला बहुत बेढब है ।

साईदास—पर तुम्हें कोई कुछ न कहेगा, यह भरोसा रखो ।

कौशल्यादास—क्या करोगे ?

साईदास—(चिढ़कर) करना क्या है, पुलिस लेकर तुम्हारे मकानपर आ जाऊँगा ।

कौशल्यादास—हूँ !

साईदास—कैसी बहकी-बहकी बातें करते हो आज तुम । तुमने शराब तो नहीं पी ली है ? क्या तुमने मुझे पहली बार देखा है ? फाँसी चढ़ जाऊँगा, पर मुँहसे एक शब्द न निकालूँगा ।

कौशल्यादास—कहना आसान है, पर करके दिखाना आसान नहीं ।

साईदास—तुम मेरा अपमान कर रहे हो । मैं बहुत बातें नहीं जानता, एक बात जानता हूँ । अगर तुम्हें मुझपर विश्वास है, तो सिर मुझे दे दो, मैं अपने-आप निपट लूँगा । अगर नहीं है, घरकी राह लो, और मुझे सोने दो ।

यह कहकर उन्होंने बाप-बेटेकी तरफ लाल-लाल आँखोंसे देखा, जैसे दोनोंको खा जायँगे । प्रभुदत्तको इस क्रोधपर प्यार आ गया । कहते हैं, प्यारका क्रोध हँसीसे भी मीठा होता है । यह क्रोध बनावटी क्रोध न था, घृणाका क्रोध न था, यह क्रोध प्यारका क्रोध था, जिस पर स्वयं प्यार भी निछावर होता है । प्रभुदत्तकी आँखोंमें पानी आ गया । यह पानी कलवाले पानीसे कितना दूर था ! झूठे मोतीमें सच्चे मोतीकी आब आ गई थी ।

कौशल्यादास खड़े हो गए और बोले—मुझे तुम्हारी बातोंसे धोखेकी वृत्ति आती है। मैं कुछ और प्रबन्ध करूँगा।

प्यार सब कुछ सह सकता है, मगर विश्वासघातका कलंक नहीं सह सकता। साईदास पहलेसे ही क्रोधमें थे, इन शब्दों ने आगपर तेल छिड़क दिया। उन्होंने छेड़े हुए नागकी तरह सिर उठाया और फुंकार मारते हुए कहा—मुझे तुमसे यह आशा न थी।

प्रभुदत्त सोचते थे। कितना सज्जन आदमी है, प्रेमके भावमें तन्मय है। अपने प्राणोंकी परवा नहीं, मित्रका ध्यान है। यह आदमी नहीं देवता है। वे चाहते थे, अब पिता कुछ न कहें। प्रेमकी आँखोंमें क्रोध देखकर वे अपने आपको भूल गए, मगर कौशल्यादासने फिर भी कहा—मैं अन्धा नहीं हूँ, तुम्हारी आँखें तुम्हारे शब्दोंका समर्थन नहीं करतीं। तुम्हारे मुँहसे शहद टपकता है, परन्तु हृदयमें जहर भरा है। मैं अपनी और अपने बेटेकी गर्दन तुम्हारे हाथमें कैसे दे दूँ ?

साईदासकी आँखोंमें जल भर आया। पहले बादल गरजता था, अब वर्षा होने लगी। इन आँसुओंकी एक एक बूँद कौशल्यादासके दिलपर आगके अङ्गारे बरसाती थी। उन्हें अपने आपको सँभालना दूभर हो गया। वे चाहते थे, आगे बढ़कर उस प्रेमकी मूर्तिको हृदयमें बिठा लें। मगर अभी नाटक पूरा न हुआ था। उन्होंने एक भावमय दृष्टिसे बेटेकी तरफ देखा और उठकर बाहर निकल आए।

साईदासने चिल्लाकर कहा—जाते हो तो जाओ, मगर एक दिन तुम्हें इस दिनके लिए पछताना पड़ेगा।

कुछ दूर जाकर कौशल्यादासने प्रभुदत्तसे भरीए हुए स्वरमें कहा—तुमने देखा !

प्रभु०—बहुत अच्छी तरह।

कौशल्या०—अब क्या कहते हो ?

प्रभु०—यह आदमी नहीं देवता है। इसका हृदय प्रेमका स्रोत है। कल मुझे व्यावहारिक जीवनका पहला अनुभव हुआ था, आज दूसरा अनुभव हुआ है। मेरा तो जी चाहता है, जाकर उसके पाँवसे लिपट जाऊँ।

कौशल्यादा—अभी नहीं, ज़रा ठहर जाओ। मेरे कानमें कोई कह रहा है कि इस नाटकका कुछ भाग अभी बाकी है। पहले उसे भी देख लो, फिर अपनी राय देना।

कौशल्यादासने ये बातें ऐसे ढंगसे कहीं कि प्रभुदत्त सन्नाटेमें आ गए। उन्होंने अनुभवी बापकी तरफ देखा, मगर यह रहस्य उनकी समझमें न आया।

६

दो दिन बीत गए। दोपहरका समय था। पण्डित प्रभुदत्त बार-रूममें बैठे अँगरेज़ीका एक मासिक पत्र देख रहे थे, मगर उनके मनको शान्ति न थी। मित्रोंकी रुखाई उन्हें रह रहकर अखरती थी। वे अब पहले प्रभुदत्त न थे। कभी मित्र-मण्डलीकी चर्चासे उनका मुँह कमलके समान खिल जाता था, पर अब इस शब्दमें कोई प्रभाव, कोई आकर्षण, कोई जादू न रह गया था। मित्रोंका नाम सुनते तो मुँह फेर लेते, मानो उन्हें अपने हृदयके घाव हरे हो जानेका भय था। एकाएक किसीने उनके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—हैलो !

प्रभुदत्त चौंक पड़े, घूमकर देखा, तो सिकन्दरलाल थे। वही सिकन्दरलाल जिनके बिना उन्हें चैन न पड़ता था, जिनको देखकर वह उछल पड़ते थे। मगर इस समय उन्होंने उनको बेपरवाहीकी दृष्टिसे देखा, जिसमें दुःख, क्रोध और निराशा मिले हुए थे, और धीरेसे कहा—आइए, बैठिए।

शब्द मामूली थे, मगर उनका मतलब मामूली न था। सिकन्दरलालका चेहरा उतर गया। उन्होंने बोलना चाहा, मगर उनके शब्द

होठोंपर जम गए। समयपर हमारी जीभ भी काम नहीं आती। सोचने लगे, बड़ी भूल हो गई। सुलह-सफाई करने आया था, पहली बात भी गँवाकर जाऊँगा। पर अब क्या हो सकता था ? सिकन्दरलालने रूमालसे मुँहका पसीना पोंछा, और छतके पंखेकी तरफ देखकर कहा— बड़ी गरमी है।

प्रभुदत्त—इस समय आपको घरसे बाहर न निकलना चाहिए था।

सिकन्दरलाल—तुम्हारा प्रेम खींच लाया। तुम दो दिनसे मकानपर क्यों नहीं आए ? गैरहाजिरी लग गई।

प्रभुदत्त—अब तो हर रोज़ गैरहाजिरी ही लगेगी।

सिकन्दरलाल—रूठ गए ?

प्रभुदत्त—रूठ जाऊँगा तो आपका क्या बिगड़ जाएगा ?

सिकन्दरलाल—राह देखते देखते आँखें पक गईं।

प्रभुदत्तने तीखे होकर कहा—अब इस स्वाँगकी क्या जरूरत है ? अब तो मैंने तुम्हारा असली रूप देख लिया।

सिकन्दरलाल इस समय तक नरमीसे बातचीत कर रहे थे। गरम ताना सुनकर वह भी गरम हो गए और बोले—तुम्हारे लिए जान गँवा देता ?

प्रभुदत्तने अँगरेज़ी मासिक-पत्र मेज़पर रखकर जवाब दिया—अभी वह मंज़िल बहुत दूर थी, तुम तो पड़ली ही मंज़िलपर हार गए।

सिकन्दरलाल—यार-दोस्तोंसे बातें करते समय तुम्हें ज़रा सावधान रहना चाहिए।

प्रभुदत्त—पर मैं आपको अपना दोस्त ही नहीं समझता, तो सावधान क्या रहूँ ?

सिकन्दरलालकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। कुर्सीपर बैठे थे, खड़े हो गए और चिल्लाकर बोले—अब मैं तुम्हारा शत्रु हो गया ?

प्रभुदत्त—मैं शत्रुको भी तुमसे अच्छा समझता हूँ। तुम मेरे शत्रु भी नहीं हो।

सिकन्दरलाल—समझते हो, क्या कह रहे हो तुम ?

प्रभुदत्त—अच्छी तरह समझता हूँ।

सिकन्दरलाल—तुम्हारी जान मेरी मुट्ठीमें है। चाहूँ तो अभी मसलकर रख दूँ।

प्रभुदत्तने घृणासे कहा—मसल डालो, यह पछतावा भी तुम्हारे मनमें न रह जाए। मगर फिर कभी मित्रताका शब्द मुँहपर न लाना।

७

प्रभुदत्तकी आखिरी आशा भी जाती रही। उनका खयाल था कि मेरे मित्र पछता रहे होंगे। मूर्ख हैं, पर मूर्खी नहीं। उन्हें जब अपनी भूलका ज्ञान होगा तब क्षमा माँगेंगे, गिड़गिड़ाएँगे, और शायद उनके पाँवोंपर आ गिरेंगे। आशा जा चुकी थी, आशाकी झलक बाक़ी थी, मगर सिकन्दरलालकी आँखें देखकर उनकी यह झलक भी जाती रही। शायद कुछ नुकसान पहुँचानेपर तैयार हो जायँ, यह खटक़ा अवश्य लग गया। विश्वास पर्वतका पत्थर है, जो अपनी जगहसे हटनेपर नीचे ही नीचे गिरता जाता है।

मगर एक-दो घण्टे बीत गए, और कोई न आया, यहाँ तक कि चार बज गए और वह कचहरीसे घर चले आए। मगर फिर भी पुलिसका कोई अफ़सर प्रभुदत्तकी खोजमें न आया। प्रभुदत्तकी आशंका निर्मूल निकली। अब उन्हें अपनी ठिठाई दिखाई देने लगी। सोचते थे, मैंने उनसे बहुत अन्याय किया, जो उनपर सन्देह किया। वे डरपोक हैं, मगर विश्वासघातक नहीं। मैंने कैसी कड़वी बातें कहीं, कैसा रूखा व्यवहार किया ! कोई सभ्य आदमी इससे अधिक क्या करेगा ? पर उन्होंने लहूका घूँट पिया, और मनको मसोस कर चले गए। विचार-धारा यहाँ तक ही पहुँच

पाई थी कि कमरेका दरवाजा खुला और पुलिसके डिप्टी सुपरिंटेंडेंट अन्दर आ गए। प्रभुदत्त चौंक पड़े, आशाकी आई हुई भलक फिर अथाह अँधेरेमें लोप हो गई। मगर आज इस अँधेरेने उनके दिलमें जोत जला दी। प्रभुदत्तने खड़े होकर क्लार्क साहबसे हाथ मिलाया और मुस्कराकर कहा—आज इधर कैसे भूल पड़े ?

क्लार्क साहबने प्रभुदत्तके चेहरेकी तरफ देखा, मगर उन्हें वहाँ उस भयके कोई निशान दिखाई न दिए, जो हरएक अपराध अपराधीके चेहरेपर छोड़ जाता है। खिसियाये होकर बोले—आपका मिज़ाज तो अच्छा है ?

प्रभुदत्त खिलखिलाकर हँस पड़े और बोले—खूनीका मिज़ाज कभी अच्छा नहीं हो सकता।

क्लार्क साहब हैरान हो गए। वे समझ न सकते थे कि असली बात क्या है ? जिसने खून किया हो, वह तो पुलिस-कर्मचारीको देखकर ही काँप जाता है। उसका मुँह पीला पड़ जाता है। मगर यहाँ यह हँस रहा है। क्या पापको भी हँसनेकी हिम्मत मिल गई। सोचकर बोले—मिस्टर प्रभुदत्त, बात क्या है ?

प्रभुदत्तने हँसते हँसते सारी कहानी सुना दी। कहा—यह केवल कहानी थी। इसमें सचाई ज़रा भी नहीं। अगर आपको विश्वास न हो, तो अपनी स्त्री बुलाकर आपको दिखा दूँ। मुझे अपने मित्रोंकी परख करनी थी और वह मैं कर चुका। आपको मुफ्तमें तकलीफ हुई। मगर यह मेरा नहीं, लाला सिकन्दरलालका दोष है।

क्लार्क साहब देरतक हँसते रहे, इसके बाद बोले—मगर क्या आप समझते हैं कि वह बुढ़ा साईदास इस आगमें कूदनेको तैयार हो जाएगा ?

प्रभुदत्त—मुझे विश्वास है, हो जाएगा।

क्लार्क साहब—यह भी आपकी सादगी है। कोई आदमी अपना जीवन इतना सस्ता नहीं समझता।

प्रभुदत्त—मगर वह आदमी नहीं है ।

क्लार्क साहब—तो तुम उसे क्या समझता है ?

प्रभुदत्त—देवता ।

क्लार्क साहब—कैसा पगलों-सी बातें करता है तुम ?

प्रभुदत्त—आज्रमा देखो । तुम भी पागल हो जाओगे ।

क्लार्क साहब बाहर निकले । वहाँ कुछ सिपाही खड़े थे । उन्होंने उनमेंसे एकको बुलाकर लाला साईदासके मकानका पता बताया और कहा—जल्दी बुला लाओ । मगर यह समाचार वहाँ पुलिसके सिपाहियोंसे पहले पहुँच गया था, और साईदास अपने आप ही इस तरफ आ रहे थे । वह जानते थे, कि मैं मौतके मुँहमें जा रहा हूँ, मगर न उनके मुँहपर उदासी थी, न आँखोंमें भय । बल्कि मुख-मण्डलपर अभिमानकी सुरस्ती थी । सोचते थे, मैं बुढ़ा हूँ, और कितने दिन जिऊँगा ? मगर प्रभुदत्त अभी नौजवान है, उसने संसारका देखा ही क्या है, और फिर मित्रका पुत्र है । उसे न बचाया, तो जीनेपर लानत है ।

यह सोचते सोचते वे चिक उठा कर कमरेके अन्दर चले आए, और क्लार्क साहबसे बोले—यह खून मैंने किया है ।

प्रभुदत्तका मुख-मण्डल विजयके हर्षसे चमकने लगा, मगर क्लार्क साहबने कड़क कर कहा—तुम इकबाल करता है ?

साई०—हाँ साहब, इकबाल करता हूँ ।

साहब—जानता है, इसका सजा क्या है ?

साई०—हाँ साहब, सब कुछ जानता हूँ ।

साहब—फाँसीका सजा होगा ।

साई०—मामूली बात है ।

क्लार्क साहब अब उसे एक तरफ ले गए और धीरेसे बोले—हम

जानता है, तुमने खून नहीं किया। तुम अपना लाइफ क्यों देता है ? सोचकर जवाब दो

साईं०—नहीं साब, मैंने खून किया है।

साहब—अभी टाईम है, इनकार कर दो। फिर बात हमारा हाथसे निकल जाएगा।

साईं०—साहब यह कभी न होगा। जब खून मैंने किया है, तो इनकार कैसे कर दूँ ? मुझे भी अपने भगवान्‌को मुँह दिखाना है। आप मुझे गिरिफ्तार कर लें। मैं इकबाल करता हूँ।

क्लार्क साहबने टोपी उतारकर लाला साईंदासको सलाम किया और प्रभुदत्तसे कहा—वेल, हमको हार हुआ। यह सचमुच आदमी नहीं एंजलके माफ़क है। हम इसे सलाम करता है।

यह कह कर साहब बहादुरने सबसे हाथ मिलाया और बाहर निकल गए, मगर लाला साईंदास हैरान थे। वह कुछ समझते न थे।

पण्डित कौशल्यादासने आगे बढ़कर उनको गलेसे लगा लिया और कहा—तूने मेरी लाज रख ली ! तू मेरा सच्चा दोस्त है।

प्रभुदत्तकी आँखोंसे खुशीके आँसू बह निकले।

८

आज न पण्डित कौशल्यादास ज़िन्दा हैं, न लाला साईंदास। मगर प्रभुदत्त अभी तक जीते हैं। अब उनकी प्रैक्टिस बहुत चमक गई है। अब उनकी गिनती उच्च कोटिके बैरिस्टरोंमें होने लगी है। अब वे शहरसे बाहर कोठीमें रहते हैं। उनके पास दो-तीन मोटरें हैं। मगर न मित्रोंको दावतें देते हैं, न उनकी दावतें स्वीकार करते हैं। रुपया-पैसा, बाल-बच्चे सब कुछ हैं, उन्हें किसी चीज़की कमी नहीं। पर हाँ, कभी-कभी ठण्डी साँसें भरने लगते हैं। उन्हें लाला साईंदास जैसा मित्र नहीं मिला। आयु बहुत हो गई है, मगर खोज अभी तक जारी है।

बापका हृदय

: १

लाला राजारामने दफ्तरसे आते ही क्रोध-भरे स्वरमें अपनी स्त्रीसे कहा—शादीने आज फिर चोरी की।

कौशल्या लड़कीके लिए कुर्ता सी रही थी, पतिकी आवाज सुन कर उसने सिर उठाया, और आश्चर्यसे बोली—बड़ा पाजी लड़का है ! हर रोज़ मार खाता है, मगर इसकी आँखें नहीं खुलतीं। आज क्या चुराया है ?

राजाराम—कल रात जेबमें सवा रुपया रक्खा था। आज दफ्तर जाकर देखा, तो रुपया था, चवन्नी न थी। बस इसीके हाथ लग गई होगी। कहाँ है, ज़रा बुलाओ तो उसे।

कौशल्याका कलेजा धड़कने लगा। उसने समझ लिया कि आज फिर लड़केकी ख़ैर नहीं। झूठी हँसी हँसकर बोली—तुम कपड़े तो बदल लो। दफ्तरसे थककर आए हो, आते ही क्रोध करोगे, तो स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा। पहले कुछ खा-पी तो लो।

राजाराम—तुम्हारी बातें मैं ख़ूब समझता हूँ। तुम्हारी इच्छा है, मैं उसे कुछ न कहूँ। पर यह कभी न होगा। मैं आज उसकी हड्डियाँ तोड़े बिना न रहूँगा। बोलो, कहाँ है ?

कौशल्या—कहीं खेलने गया होगा, अभी आ जाता है। मगर

जल्दी क्या है, जब आए, तो हड्डियाँ भी तोड़ लेना, चमड़ी भी उतार लेना । कहीं भागा थोड़े ही जाता है ।

राजाराम—बस, मैंने बात की, और तुम्हें ज़हर चढ़ा ।

कौशल्याकी आँखोंमें आँसू आ गए, भरी हुई आवाज़में बोली—मैंने तुम्हें क्या कहा है, जो आते ही गरजने लगे ? तुम्हारा बेटा है, चाहे मारो, चाहे काटो । मेरी क्या मजाल है, जो बोल भी जाऊँ ।

राजाराम—इतना नहीं सोचती कि लौंडा हाथ से निकला जाता है । उसे टेढ़ी आँखोंसे भी देखूँ तो रोने लगती हो । बादमें पछताओगी । फिर मुझे न कहना कि लड़का हाथसे निकल गया है ।

कौशल्याने जवाब न दिया, मुँह फुलाकर धरतीकी ओर देखने लगी ।

राजाराम—तुम्हें तो वहम हो गया है कि मुझे अपनी औलादसे प्यार नहीं । तुम माँ हो, इसमें शक नहीं, मगर मैं भी तो बाप हूँ ।

आखिरी बात सुनकर कौशल्याको फिर बोलनेका साहस हुआ, ज़रा क्रोधसे बोली—बाप हो, मगर बापका प्यार तो तुममें कभी न देखा । गरीब शादी तो तुम्हारी शक्त देखकर सहम जाता है । मारना जानते हो; प्यार करना नहीं जानते ।

राजारामको हँसी आ गई ।

कौशल्या और भी तेज़ होकर बोली—क्या मजाल, जो कभी प्यारसे गोदमें लें लें, या हँसकर दो बातें ही कर लें । हाँ, मारनेको हर समय तैयार रहते हैं । बच्चा है, डरके मारे बोलता नहीं, मगर मनमें क्या कहता होगा ?

राजाराम—यही कि यह मेरा बाप नहीं ।

कौशल्या—चलो, चुप रहो । (ज़रा देर बाद) अगर कलको मुझे कुछ हो जाए, तो इन बच्चोंका क्या हो । रो-रोकर मर जाएँ, जब भी तुमसे आशा नहीं कि इन्हें ज़रा चुप भी करा जाओ ।

राजाराम—लो अब मरनेको भी तय्यार हो गई ।

कौशल्या—कैसे आदमी हैं, हर समय तने ही रहते हैं ।

राजाराम—देवीजीका यह क्रोध अब उतरेगा भी या नहीं ?

कौशल्या—परमेश्वरने सन्तान दे दी, पर यह समझ न दी कि बच्चे शरारतें भी किया करते हैं । बचपन ही में तुम्हारी समझ कहाँ से ले आएँ ?

राजाराम—अगर हुक्म हो, तो आजसे मारना छोड़ दूँ ।

कौशल्या—मारना क्यों छोड़ दो ? मैं यह कभी न कहूँगी । अगर पाजीपन करे तो बापकी तरह मारो, मगर बापकी तरह प्यार भी तो करो ।

राजाराम—और जिसे प्यार करना न आए, वह क्या करे ? मेरे खयालमें मार-पीट मैं कर देता हूँ, प्यार तुम कर लिया करो । अब सारे काम मैं ही कैसे कर सकता हूँ ?

कौशल्या—बस यही तो तुममें ऐब है । हर बातको हँसी-मजाकमें उड़ा देते हो ।

राजाराम—तो अब हँसना भी पाप हो गया ? बहुत अच्छा, अब रोनी सूरत बन जाएँगे ।

कौशल्या—सारा दिन तो राह देखते देखते गुज़रता है, और यह आते ही कोई न कोई ऐसी बात कर देते हैं कि देहमें आग लग जाए ।

राजाराम—(हँसकर) चलो, आज शादीसे कुछ न कहूँगा, अब तो देवी खुश हुई ?

कौशल्या भी हँस पड़ी । प्यार-भरी दृष्टिसे पतिकी तरफ़ देखकर बोली—अपने कमरेमें चलकर कपड़े बदलो । इतनेमें मैं दूध गर्म कर लाऊँ । थक गए होगे ।

शादीके सिरसे मुसीबत टल गई ।

लाला राजाराम सीधे-सादे आदमी आदमी थे। घरका स्याह-सफेद सब कौशल्याके हाथमें था। वह जो चाहती थी, करती थी। राजाराम उसमें कभी दखल न देते थे। उनको यह भी पता न था कि घर में क्या है, क्या नहीं है ? उनको दो रोटियाँ खानेसे मतलब था ; वे कमाते थे, कौशल्या खर्च करती थी। इसी तरह उनके विवाहित जीवनके सात-आठ साल बीत गए। कौशल्याको पतिसे कोई शिकायत न थी। सखी-सहेलियोंमें बैठती, तो उनकी प्रशंसाके पुल बाँध देती। कहती, ऐसा पति भगवान् सबको दे। उनमें कोई भी ऐब नहीं, यहाँ तक कि सिगरेट भी नहीं पीते। ज़रा ज़ोरसे बोलूँ, तो दब जाते हैं। मगर एक काँटा था, जो उसके दिलमें सदा खटकता रहता था; उनको बच्चोंसे प्यार न था। कभी उनको गोदमें बिठाकर प्यार न करते थे, कभी बाज़ार न ले जाते थे। ज़रा-ज़रा-सी बातमें भी धमका देते थे, और ज़ोर-ज़ोरसे बोलने लगते थे। कोई मिलने-जुलनेवाला अपने बच्चोंको साथ ले आता, तो उनकी भी परवा न करते। कौशल्या कहती, तुम्हारी इतनी उम्र हो गई, पर तुम्हें यह समझ अब तक न आई कि कोई घरमें आए, तो उसके बच्चेके सिरपर प्यारसे हाथ फेर देना उसका बड़ा भारी सत्कार करनेके बराबर है। वह तुम्हारे पास बैठे रहते हैं, तुम उनकी बात भी नहीं पूछते। सोचते होंगे, कैसा अभिमानी है, सीधे मुँह बात ही नहीं करता। पता नहीं दफ़्तरका काम कैसे कर लेते हो तुम ? वहाँ भी भूलें करते होंगे।

राजाराम मुहब्बतसे सनी हुई यह बातें सुनते, तो हँस पड़ते। कौशल्याको भी हँसी आ जाती। मगर उसके मनकी चिन्ता दूर न होती थी।

इतवारका दिन था, लाला राजाराम धूपमें लेटे एक अखबार देख रहे थे। इतनेमें कौशल्या बेटीको लिए हुए आकर उनके पास बैठ

गई, और अखबार छीनकर बोली—लो सुनो ! आज तुम्हारी बिटियाने एक नई बात सीखी है !

राजाराम—मालूम होता है, अब मुझे अखबार न देखने दोगी तुम । बड़ा अजीब लेख है ।

कौशल्या—मेरी बिटियाकी बात उससे भी अजीब है ।

राजाराम—भाईको बुलाना सीख लिया होगा ।

कौशल्या—वाह ! मेरी बेटी क्या मामूली बातें सीखती है ? तुम्हारा जी खुश कर देगी आज ।

यह कहकर कौशल्याने शकुन्तलासे कहा—क्यों बेटी ! तू मरेगी या नहीं मरेगी ?

शन्नीने माँकी तरफ देखकर जोरसे सिर हिलाया और कहा—हाँ ! राजारामको हँसी आ गई ।

कौशल्या—तू मरना जानती है ?

शन्नीने फिर उसी तरह सिर हिलाया, और तोतली ज़बानसे कहा—हाँ दानती हूँ ।

कौशल्या—कैसे मरेगी ? ज़रा बाबूजीको मरकर दिखा दे ।

शन्नी अपना नाटक दिखानेको फट माँकी गोदसे उतर आई । इसके बाद उसने कौशल्याके सिरसे दुपट्टा उतार लिया और उसे ओढ़कर ज़मीनपर चुपचाप लेट गई ।

राजाराम हँस-हँसकर लोटे जाते थे ।

कौशल्या—(धीरेसे) ज़रा देखते चलो । (ऊँची आवाज़से) शन्नी ! शरी ओ शन्नी !! बाप रे बाप ! कैसी लड़की है, पता नहीं कहाँ चली गई ? (सहसा चौंककर) अरे, यह तो यहाँ लेटी है !

शन्नीने उसी तरह लेटे लेटे मगर सिर हिला-हिलाकर जवाब दिया—छन्नी नहीं, छन्नी नहीं । माँ ! छन्नी नहीं ई ई ।

कौशल्या—तो क्या शन्नी मर गई ?

शन्नी—(सिर हिलाकर) हाँ छन्नी मल दई ।

राजारामने हँसकर शन्नीको ज़मीनसे उठा लिया, और उसका मुँह चूमकर कहा—क्यों बिटिया रानी ! मरनेकी क्या जरूरत है ? तेरी माँको बड़ा दुःख होगा, अब कभी न मरना ।

शन्नीने दोनों हाथोंसे बापका मुँह पकड़ लिया, और उनकी आँखोंमें अपनी शक्त देखते देखते कहा—वो ओ ओ छन्नी ! वो ओ ओ छन्नी !

कौशल्यापर ब्रह्मानन्दकी मस्ती छा गई । वह किसी दूसरी दुनियामें पहुँच गई । इतनी खुशी उसे अपने लिए दो हज़ारके गहने लेकर भी न होती । वह यही चाहती थी । उसकी सब से बड़ी ख्वाहिश यही थी । वह अपने पतिका स्नेह माँगती थी, पर अपने लिए नहीं, अपनी सन्तान के लिए । एकाएक उसे शादीका ध्यान आया । घरमें मिठाई बँट रही हो, तो माँको अपने सारे बच्चोंका खयाल आता है । वह यह नहीं देख सकती, कि एक बच्चा सब कुछ ले जाए, दूसरे मुँह ताकते रहें । आज उसके यहाँ पिताका प्यार बँट रहा था । पता नहीं कितने दिनों बाद । वहन अपना भाग ले चुकी थी, अब भाईकी बारी थी । कौशल्याने दुपट्टा ओढ़कर शन्नीको गोदमें लिया, और जल्दीसे नीचे उतर गई । वहाँ शादी कागज़की नाव बना रहा था । कौशल्याने उसका मुँह धोया, सिरमें तेल डाला, कंधी की, नए कपड़े पहनाए, और धीरेसे कहा—जा, जाकर बाबूजीको अपने कपड़े दिखा आ । भागकर जा ।

शादी नए कपड़े पहनकर दिलमें फूला न समाता था, मगर बापके पास जानेकी बात सुनकर उसका चेहरा उतर गया । वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा, पर उसका दिल धक धक कर रहा था ।

वह बापके सामने जाकर खड़ा हो गया, मगर वे फिर अखबार देख रहे थे । उनको मालूम भी न हुआ कि शादी सामने खड़ा है ।

उन्होंने सिर उठाकर देखा भी नहीं। तब उसने कहा—पिताजी, नए कपड़े !

राजारामने चौंकर सिर उठाया, और फिर अखबार पढ़ते हुए कहा—क्या है शादी, क्या है ?

शादी—नए कपड़े !

राजारामने बिना सिर उठाए जवाब दिया—तुमने नए कपड़े पहने हैं ? बहुत अच्छा किया। खराब न करना। अब जाओ जाकर खेलो। मैं अखबार पढ़ रहा हूँ। अच्छा !

शादी खुश हुआ, परन्तु कौशल्या खुश न हुई। उसकी मुराद पूरी न हुई। वह सीढ़ियोंके पास खड़ी यह सब कुछ देख रही थी। शादी नीचे जाने लगा तो उसने उसे फिर पकड़ लिया और धीरेसे उसके कानमें कहा—पीछेसे जाकर अपने बाबूजीकी गरदनमें बाहें डाल दे।

शादी फिर उदास हो गया। वह सोचता था, नए कपड़े पहने हैं, चलकर अपने दोस्तोंको दिखाऊँगा। मगर माँ ने फिर उसी स्नेह-हीन कठोर-हृदय बापकी ओर ढकेल दिया जो अखबार पढ़ता था, प्यार न करता था। उसपर जैसे कोई घोर संकट आ पड़ा। कमजोर विद्यार्थी फिर परीक्षा देने चला। उसके पाँव काँप रहे थे, मुँहका रङ्ग उड़ा जाता था। दैवयोगसे एक बार पास हो गया था, क्या अब दूसरी बार भी पास हो जाएगा ? नहीं, उसे इसकी ज़रूर भी आशा न थी। मगर वह फिर गया, और बापकी पीठकी तरफ़ जाकर खड़ा हो गया। मगर उसकी गरदनमें बाँहें डालनेकी हिम्मत उसमें न थी। कहीं नाराज़ न हो जाएँ, एक बार हँसकर टाल चुके हैं पर अबके तो जान न बचेगी। उसने सीढ़ियोंकी तरफ़ देखा, कि अगर माँ न हो, तो भाग जाए। लेकिन माँ वहीं खड़ी थी, और शादीको इशारेसे कह रही थी, कि देखता क्या है ? लिपट जा, बाँहें बापके गलेमें डाल दे।

अब शादीके लिए कोई और रास्ता न था। उसने जानपर खेल

कर अपनी नन्हीं-नन्हीं बाँहें खोलीं और बड़े जोरके साथ बापके गले से लिपट गया राजाराम अखबार पढ़नेमें लीन थे। मटका जो लगा तो उनके हाथसे अखबार गिर गया। चौंककर बोले—अरे कौन शादी !

शादीने उनकी ओर मुस्कराकर देखा। मगर यह मुस्कराहट स्वाधीनताकी सचेत, प्रकाशमय, प्रसन्नता-पूर्ण मुस्कराहट न थी, जिसके पीछे क्रहक्रहा छिपा रहता है। यह पराधीनताकी प्राणहीन, तेजहीन; सशंक मुस्कराहट थी, जो भयकी छाया तले चलती है, और पग-पगपर काँपती है। उस समय यह मुस्कराहट कैसी फीकी, कितनी उदास दिखाई देती है ! यही दशा शादीकी मुस्कराहटकी थी।

राजारामने शादीकी तरफ़ क्रोधसे देखा और कड़ककर कहा—जा जाकर खेल ! नए कपड़े पहने हैं, तो क्या मुझे अखबार न पढ़ने देगा ? पाजी कहींका। ऊपर आ गिरता है।

शादी डरकर चला आया, और चुपचाप नीचे उतर गया। कौशल्याकी आँखोंमें आँसू आ गए। विद्यार्थीके फ़ेल होनेपर उस्ताद भी उदास हो जाता है। उसने ठंडी आह भरी और अपनी कोठरीमें जाकर चारपाईपर लेट गई। इस समय उसकी आँखोंमें पानी था, हृदयमें आग। रह-रहकर सोचती थी, कैसे कठोर-हृदय हैं, इन्हें बच्चोंसे ज़रा भी स्नेह नहीं। अगर हँसकर दो बातें कर लेते, तो इनका क्या ब्रिगड़ जाता ? ऐसे धमका दिया, जैसे कोई फ़क़ीरका लड़का भीख माँगने आया हो। इन्हें अखबारकी चाह है, बच्चेकी चाह नहीं। इतना भी न सोचा, कि गरीबका दिल छोटा हो जाएगा। कौशल्याकी आँखोंके आँसू उसके गालोंपर बहने लगे।

शकुंतलाने माँके मुँहपर अपने सुकोमल हाथ फेरते हुए कहा—माँ !

कौशल्याने बेटीका मुँह चूम लिया और रोते-रोते बोली—क्यों, शत्री, क्या है ?

शक्तीने मनको मोह लेनेवाले ढँगसे भूम-भूमकर कहा—छत्री नहीं ई ई ई । छत्री नहीं ई ई ई ।

कौशल्याकी आँखें अपने बेटेके दुर्भाग्यपर आँसू बहा रही थीं, मगर उसके होंठ बेटेकी तोतली बातोंपर हँस रहे थे, जैसे कभी-कभी वर्षा में भी धूप निकल आती है ।

मगर राजाराम अपने अखबारके दिलचस्प लेख में तन्मय थे, और कौशल्याके नारी-हृदय में सुख और दुःख कैसे वेदनापूर्ण भाव पैदा हो रहे हैं, इसका उन्हें ज़रा भी पता न था ।

३

इसके कुछ दिन बाद राजारामके मकानपर सङ्गीत-सभाका उत्सव हुआ । उनके दफ्तरके लोगोंने उन्हीं दिनों एक सभा (Happy Club) कायम की थी । इस सभाके बहुतसे सदस्य गाने-बजानेके शौकीन थे । हर शनिवारकी रातको किसी-न-किसी मेम्बरके मकानपर जमा होते थे, और दो घड़ी दिल बहलाते थे । लाला राजाराम गाना-बजाना बिलकुल न जानते थे, मगर संगीतका शौक उन्हें बचपनसे था, Happy Club के मेम्बर बन गए । आज उनके यहाँ इसी सभाकी साप्ताहिक मीटिंग थी । अन्दर-बाहर दौड़ते फिरते थे । ताराचन्द गाता था, हंसराज हारमोनियम बजाता था, और बाक़ी लोग तन्मय होकर सुनते थे । यह ताराचन्द रागी न था, न उसे राग-विद्याके नियमोंका बोध था, मगर उसका गला ऐसा सुरीला, और रसीला था कि सुनकर मज़ा आ जाता था । लोग कहते तेरी आवाज़ में जादू है, तभी तो तू मन मोह लेता है । मगर इस समय राजाराम का इधर ध्यान भी न था । वे मेम्बरोंके आदर-सत्कारमें लीन थे । सोचते थे, कोई यह न कहे, राजारामका प्रबन्ध ठीक न था । किसी को सिगरेट देते थे, किसीको दियासलाई, किसीको पान-सुपारी । इतनेमें एक साहब बोले—बाबू ताराचन्दका गला बैठनेकी धमकी दे

रहा है। जल्दीसे मिसरी और इलायची दो, नहीं तो गला बैठ जाएगा और सभाकी शोभा लेट जाएगी।

लाला राजाराम भागे भागे घरके अन्दर गए, और स्त्रीसे बोले—मिसरी और इलायची कहाँ है ?

कौशल्याने आलमारीसे एक प्लेट निकालकर पतिके हाथपर रखवा और पूछा—यह कौन गा रहा है ?

राजाराम—ताराचन्द है।

कौशल्या—खूब गाता है। आवाजमें मिठास है।

राजाराम—क्या कहने ! सभी मस्त हो रहे हैं।

यह कहकर वे लौटनेको थे कि कौशल्याने धीरेसे कहा—जरा एक बात तो सुनते जाओ।

राजाराम—(ठहरकर) क्या कहती हो। जो कुछ कहना हो, जल्द कहो। देर हो गई तो ताने मारेंगे कि मिसरी घरमें न होगी, बाज़ार से लाए हो। जभी देर हो गई।

कौशल्या—अरे तो क्या ये लोग इतने शोहदे हैं ? दूसरोंकी इज्जतकी परवाह ही नहीं करते ?

राजाराम—एक जगह काम करनेसे बे-तकल्लुफी हो जाती है, इसमें बुरा क्या है। कहो क्या कहती हो ?

कौशल्या—बच्चोंको भी लेते जाओ। बार-बार जाकर भाँकते हैं।

राजाराम—भाँकने दो, अन्दर जाकर क्या करेंगे ? गानेकी आवाज़ यहाँसे भी सुनाई देती है, और बिलकुल साफ़।

कौशल्या—एक तरफ़ बिठा देना, बैठे रहेंगे।

राजाराम—और जो कोई शरारत की तो फिर ?

दोनों बच्चे सामने खड़े अपनी किस्मतका फ़ैसला सुननेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कौशल्याने पूछा—कोई शरारत तो नहीं करोगे ?

शादी—चुपचाप बैठे रहेंगे ।

राजाराम—तुम चुप-चाप बैठना जानते ही नहीं, चुप-चाप कैसे बैठोगे ? कहने लगे, चुप-चाप बैठे रहेंगे ।

शादीका चेहरा निस्तेज हो गया । वह एक कोनेसे सटकर रोने लगा । मगर शन्नी इतनी आसानीसे पिंड छोड़नेवाली न थी । उसने पिताकी टाँगोंसे लिपटकर कहा—छत्री नहीं ईं ईं ईं । छत्री नहीं ईं ईं, और फिर माँका दुपट्टा पकड़कर उसे जोरसे खींचने लगी और रोने लगी, जिसका भाव यह था कि इन्हें कहो, ले चलें ।

कौशल्याने कहा—नहीं शरारत करेंगे, ले जाओ !

राजारामका मन न मानता था कि ये बच्चे वहाँ आरामसे बैठेंगे, मगर स्त्रीके सामने बोलते हुए उन्हें डर लगता था । सोचते थे कि अगर इसे क्रोध आ गया, तो अभी गरजने लगेगी । इसकी आवाज बाहरतक सुनाई देगी, सारा मज्जा किरकिरा हो जाएगा । एक जलसा बाहर हो रहा है दूसरा अन्दर होने लगेगा । बे-बसीसे बोले—खैर आ जाओ । मगर शोर न मचाना । नहीं ऐसा पिटोगे कि याद रहेगा ।

शादीके बहते हुए आँसू रुक गए । चेहरेपर हँसी आ गई । कुरते से आँखें साफ़ करते हुए बोला—हम शोर नहीं मचाएँगे ।

राजाराम—शन्नीको उठा लो और चले आओ ।

शादी बहनको उठाकर बाहर ले गया, और उस कमरेमें जाकर जहाँ गाना हो रहा था, एक तरफ़ बैठ गया, और शन्नीको भी पास बिठा लिया । शन्नीने अपनी बड़ी बड़ी आँखोंसे इतने आदमी देखे तो डर गई और उठकर भाईकी गोदमें जा बैठी ।

राजाराम मिसरी और इलायची बाँटने लगे । वे जबतक दूर थे, शन्नी चुप रही, मगर जब बिलकुल निकट आ गए, तब उसका धीरज जाता रहा । उसने एक हाथसे अपने सिरके लम्बे बालोंको पीछे हटाया और दूसरा हाथ फैलाकर कहा—मैं !

जो पास बैठे थे, वे हँसने लगे । राजारामने मिसरीकी तीन-चार डलियाँ उसके हाथपर रख दीं और कहा—यह लो, यह “मैं” की डलियाँ हैं । चुपचाप खा लो, मगर आवाज न निकले ।

शादीके दिलमे कुछ कुछ होने लगा । उसकी आँख मिसरीपर थी । वह अपनी जीभ होठोंपर फेरता था । उसे आशा थी, अभी उसे भी मिलती है । मगर राजाराम आगे बढ़ गए, और उसे मिसरी न मिली । शादीकी आँखें सजल हो गईं । उसका चेहरा उतर गया । वह सोचने लगा, सबको मिली है मुझको क्यों नहीं मिली ? अगर माँ होती, तो यह अन्याय कभी न करती । जब बड़ा हूँगा और रुपया कमाऊँगा, तो पन्द्रह-बीस रुपयेकी मिसरी ले आऊँगा और पेट भर कर खाऊँगा । सबको दूँगा, पर बाबूजीको एक डली भी न दूँगा । माँगेंगे, तो कहूँगा तुमने भी तो मुझे न दी थी, अब शन्नीसे माँगो । शन्नीको भी न दूँगा, कहूँगा, बाबूजीसे माँगो, मुझसे क्यों माँगती हो ?

मगर वह बड़ा होनेका, रुपया कमानेका, पेट भरकर मिसरी खानेका और बापको चिड़ानेका शुभ-अवसर अभी दूर था, और शन्नीकी मिसरी जल्दी जल्दी समाप्त हो रही थी । शादीने एक डली उठाकर अपने मुँहमें डाल ली, और मुँह दूसरी तरफ फेर लिया । अगर शन्नी न देखती, तो किसीको पता भी न लगता, मगर उसने देख लिया और मचल गई । शादी उसे मनाता था, और वह गुस्सेसे उसका मुँह नोचती थी, कि मेरी मिसरी तूने खाई क्यों ? इसके बाद वह फर्शपर लेट गई और चीख चीखकर रोने लगी । गानेमें एक आवाज भी सुनाई दे तो गाना बद-मज्जा हो जाता है । ताराचन्दने गाना बन्द कर दिया, और पूछा—यह रोती क्यों है ?

कई आदमियोंने शन्नीको मनानेका यत्न किया, मगर वह चुप न हुई, और भी जोर जोरसे रोने लगी । जहाँ सङ्गीत-ध्वनि गूँजती थी, वहाँ चीखें गूँजने लगीं । राजाराम किसी कामसे अन्दर गए थे,

बाहर आए तो यह दृश्य देखा, लपककर शन्नूके पास पहुँचे और लाल लाल आँखें निकालकर बोले—क्या हुआ है, जो यों चिल्ला रही है तू ?

एक आदमीने कहा—नादान है। धीरेसे बोलिए, नहीं डर जायगी। बच्चे आखिर बच्चे हैं।

शन्नूके देवता कूच कर गए। उसकी आँखोंके आँसू आँखोंमें रुक गए। डरते डरते बोली—छादी। अर्थात् शादीने मेरी मिसरीकी डली छीन ली है।

राजारामकी देहमें आग-सी लग गई। मगर इसने आदमियोंके सामने क्या कहते ? लहूका घूँट पीकर रह गए, और धीरेसे मगर क्रोध-भरे स्वरमें बोले—दोनों बाहर निकल जाओ। तुम यहाँ बैठने लायक नहीं।

बच्चे हमारी भाषा समझें, या न समझें, पर वह हमारी आँखोंका भाव समझनेमें कभी भूल नहीं करते। शन्नूने समझ लिया कि इस समय चूँ भी की तो पिटूँगी। चुप-चाप भाईकी गोदमें चली गई। शादी उसे लेकर बाहर निकल गया। मगर राजारामकी क्रोधाग्नि अभीतक शांत न हुई थी। उन्होंने आँगनमें जाकर शादीको पकड़ लिया और क्रोधसे काँपती हुई आवाज़में कहा—क्यों पाजी ! तूने इससे मिसरी क्यों छीनी ? लोग क्या कहते होंगे ? यही न कि इसने कभी मिसरीका मुँह नही देखा ? यही न कि इसके घरमें गरीबी बरसती है ?

शादीने बहनको गोदसे उतारकर ज़मीनपर खड़ा कर दिया और आप सिर झुकाकर नीचे देखने लगा। राजाराम बिफरे हुए शेरके समान उसके सामने खड़े थे, और क्रोधसे दाँत पीसते थे।

शन्नूने मार-पीटके पूर्व-चिह्न देखे, तो रोती हुई भाग गई और रसोई-घरमें जाकर माँसे बोली—माँ, बाबू, छादी—माँ बाबू छादी। अर्थात् बाबूजी शादीको पीट रहे हैं।

कौशल्याने जल्दीसे बाहर निकलकर देखा, तो राजाराम लड़केको बुरी तरह पीट रहे थे। ऐसी निर्दयतासे कोई धोबी कपड़ेको भी पत्थरपर न पटकता होगा। माँका हृदय अधीर हो गया। उधर माँको देखकर शादीकी भी चीखें निकल गईं। कौशल्याने शादीका हाथ पकड़कर उसे अपनी तरफ खींच लिया और कहा—बस भी करो क्या अब मार ही डालोगे ? गुस्सेकी भी हद्द होती है।

राजाराम (क्रोधसे काँपते हुए) मैंने कहा न था कि इन्हें अन्दर ही रहने दो। उस समय तो सुनती ही न थीं।

कौशल्या—तो अन्दर जाकर किसका खून कर आया है यह, जो इसको मारनेपर तुल गए हो ?

यह कहकर उसने अपने दुपट्टेके आँचलसे शादीका मुँह पोंछा, और पतिके मुँहकी तरफ देखने लगी।

राजाराम—किसका खून किया ? सारी सभाका खून किया।

कौशल्या—बहुत अच्छा किया, बहुत ठीक किया। यह घर है, रंगशाला नहीं है। ऐसी सभाएँ सजानी हों, तो बाहर जाकर सजाया करो। घरमें बच्चे रहेंगे।

राजाराम—जरा और जोरसे बोलो, तुम्हारी आवाज़ बाहर तो अभी जाती ही नहीं।

कौशल्या—जाती है तो जाए। मुझे किसीका डर नहीं।

राजाराम—लोगोंको तमाशा दिखा लो, शरम तो न आती होगी।

कौशल्या—संसारकी सारी शरम क्या मेरे ही लिए रह गई है ? जब तुम्हें अजान बच्चेको मारते हुए शरम नहीं आती, तो मुझे उसे बचाते हुए क्यों शरम आए ?

राजाराम—देखो, मैं बे-शरम हूँ मगर इतना गया गुजरा नहीं हूँ कि तुम्हारी बकवास सामने खड़ा सुनूँ।

कौशल्या—और मैं भी इतनी गई गुजरी नहीं हूँ कि अजान बच्चे को अपनी आँखोंके सामने पिटते हुए देखूँ, और चुप रहूँ। यह असम्भव है। अगर कोई हड्डी-वड्डी टूट गई, तो संकट मुझीपर टूटेगा, तुम्हारा क्या है ? तुम तो दफ़तर चले जाओगे।

राजारामने स्त्रीकी तरफ़ देखा, तो डर गए। इस समय उसके चेहरेपर क्रोध था, आँखोंमें आगकी चिनगारियाँ। राजाराम समझ गए कि अब अगर एक भी शब्द और बोले, तो वह बारूदके ढेरपर दियासलाईका काम दे जाएगा। चुप-चाप बाहर चले गए। मगर बाहर सन्नाटा छाया हुआ था। राजाराम मुस्करानेकी चेष्टा करते हुए बोले—गाना क्यों बन्द कर दिया आप लोगोंने ? गाइए ना।

हैपी क्लबके सदस्योंने एक दूसरेकी तरफ़ देखा, मानो आँखों ही आँखोंमें एक दूसरेसे पूछा कि यहाँ तो पति-पत्नीमें संग्राम छिड़ गया, अब ठहरें या चलनेकी तैयारियाँ करें।

राजाराम सीधे-सादे आदमी जरूर थे, पर मूर्ख न थे। दोस्तोंकी इन निगाहोंके अर्थ समझनेमें उन्हें ज़रा भी देर न लगी। लज्जाने चेहरा कानोंतक लाल कर दिया। मगर साहससे बोले—गाओ ना ! गाते क्यों नहीं ? जल्सा जारी रहे।

ताराचन्द फिर गाने लगा, हँसराजकी उँगलियाँ फिर बाजेके सुरोंपर नाचने लगीं। इधर यह राग-रङ्गका उत्सव हो रहा था, उधर घरके अन्दर शादी सिसकियाँ भर रहा था, और कौशल्या उसे गलेसे लगाकर चुप करानेका यत्न कर रही थी।

४

दूसरे दिन शादी बुखारमें बेसुध पड़ा था। राजाराम डर गए। सोचने लगे, कैसी मूर्खता की, अब कौशल्या शेर हो जाएगी। कहेगी

उस समय मारते थे, अब घरमें बैठकर इलाज भी करो । कौशल्याके सामने उनकी आँखें न उठती थीं । न उनमें उससे बात-चीत करनेका साहस था । वे समझते थे, मैंने मुँह खोला, और कौशल्याने कड़कना शुरू किया । कौशल्या की कड़क उनके लिए बिजलीकी कड़कसे भी डरावनी थी । चुपचाप जाकर एक डाक्टरको बुला लाए, और राहमें सारी घटना उसे सुना दी ।

डाक्टरने शादीको देखा, और नुसखा लिखने लगा । कौशल्याने घूँघटकी आड़में पतिसे कहा—पूछो कोई हड्डी-वड्डी तो नहीं टूटी ? राजारामका कलेजा धड़कने लगा ।

डाक्टरने कहा—हड्डी नहीं टूटी, सिर्फ डर गया है । इसीसे बुखार चढ़ गया है । और कोई बात नहीं ।

राजारामकी जानमें जान आई । कौशल्याने फिर पूछा—कबतक उतर जाएगा यह बुखार ?

डाक्टरने कहा—एक-दो दिनमें । घबरानेकी बात नहीं । (नुसखा देकर) दिनमें तीन बार । सिर्फ दूध पिए ।

मगर तीन दिन बीत गए, और बुखार न उतरा । कौशल्या चिन्ताके मारे मरी जाती थी । सारी सारी रात जागती रहती । चौथी रात राजारामने कहा—आज तुम सो रहो, आज इसके पास मैं बैठूँगा ।

कौशल्या—तुमको जागनेकी आदत नहीं, बीमार हो जाओगे ।

राजाराम—नहीं होता । तुम जाकर आराम करो ।

कौशल्या—तुम्हें कष्ट होगा ।

राजाराम—भूल भी तो मेरी ही है ।

कौशल्या—अगर जागे, तो कल दफ्तर कैसे जाओगे ?

राजाराम—छुट्टी ले लूँगा ।

कौशल्या—न भई ! मैं तुम्हें न जागने दूँगी । जाओ, जाकर आराम करो, नहीं कल सारा दिन तबीयत खराब रहेगी ।

राजाराम—मालूम होता है, तुमने बीमार होनेका निश्चय कर लिया है ।

यह कहकर राजाराम सोनेको चले गए । कौशल्याने शादीकी देह देखी, और ठंडी आह भरी—बुखार अभीतक न उतरा था । उसकी आँखोंमें पानी आ गया, और दिलमें बुरी-बुरी बातें उठने लगीं ।

इतनेमें घड़ीने दस बजाए । शादीने एकाएक चिल्लाकर कहा—माँ ! पानी ।

कौशल्याने प्यारसे शादीको बाँहका सहारा देकर उठाया और कहा—पहले दवा पी लो, फिर पानी मिलेगा ।

शादी—न ! पहले पानी दो । बड़ी प्यास लगी है ।

यह कहते कहते वह रोने लगा ।

कौशल्या अधीर हो गई । हम बीमार बच्चेपर सखती नहीं कर सकते । उसने शादीको पानी पिला दिया, और कहा—दवा ठहरकर पिलाऊँगी । अब ज़रा लेट जा ।

शादीने माँकी तरफ प्यार-भरी दृष्टिसे देखा और कहा—मेरे साथ तू भी लेट जा ।

कौशल्या लेट गई । शादीने अपना सिर उसकी छातीमें छिपा लिया, और अपना हाथ उसके मुँहपर फेरने लगा ।

माँकी ममता जागना चाहती थी, मगर प्रकृतिके नियम अटल हैं । थोड़ी देर बाद कौशल्याको नींद आ गई ! अब उसे तन-बदनकी

सुध न थी। उधर राजाराम अपनी शय्यापर तड़पते थे, मगर उन्हें नींद न आती थी। वही प्रकृति जिसने माँको सुला दिया था, बापको जगा रही थी। वह सोना चाहते थे, सोनेका यत्न करते थे, मगर नींद उनसे कोसों दूर थी। आखिर उठ बैठे, मगर अपनी इच्छासे नहीं, किसी दैवी-शक्तिके इशारे पर। उनको मालूम न था कि वे क्या कर रहे हैं, किधर जा रहे हैं? पर वह चल रहे थे। वह नंगे पाँव, नंगे सिर, घरसे निकले, और घरके पासवाले मन्दिरकी तरफ़ रवाना हुए।

रातका समय था, एक बज चुका था। चारों तरफ़ सन्नाटा था, लोग अपने अपने घरमें आरामकी नींद सो रहे थे। माँकी भी आँखें बन्द हो गईं थीं। मगर बापका स्नेह बेटेकी जीवन-भिक्षा माँगनेके लिए नंगे-पाँव नंगे-सिर मन्दिरकी तरफ़ भागा चला जाता था। उस समय मन्दिरके द्वार बन्द थे, और मन्दिरका पुजारी अपनी कोठरीमें पड़ा सो रहा था।

राजाराम मन्दिरकी सीढ़ियोंपर औंधे मुँह गिर पड़े और बेटेकी सलामतीके लिए ऊँचे घरवाले, नीली छतवाले, परमात्मासे प्रार्थना करने लगे। और उनके आँसुओंसे सङ्गमरमरकी सीढ़ियाँ तर हो गईं।

यह वही बे-परवा, वही कठोर-हृदय बाप है, जिसे बच्चोंसे ज़रा प्यार न था, जिसने उनको कभी गोदमें लेकर उनका मुँह न चूमा था। आज वही बाप रातके अँधेरेमें बेटेके लिए प्रार्थना करने आया आया है।

प्रातःकाल जब कौशल्याकी आँख खुली, तो साढ़े सात बज चुके थे। उसको अपने आप पर क्रोध आया कि वह सो क्यों गई? तब उसने अपना हाथ शादीकी देहपर फेरा, और उसकी आँखें आनन्दसे चमकने लगीं—शादीका बुखार उतर चुका था, और वह इस समय मजेसे सो रहा था। कौशल्या जल्दीसे उठकर पतिको यह शुभसमा-

चार सुनानेके लिए उनके कमरेकी तरफ दौड़ी। मगर उनकी चारपाई खाली थी। कम्बल, कपड़े, जूता, सब कुछ वहीं था, केवल वे न थे। कौशल्याने कोना कोना ढूँढा, परन्तु उनका कहीं पता न था। सहसा उसकी दृष्टि सीढ़ियोंकी तरफ गई, द्वार किसी भक्तकी आँखके समान खुला था। कौशल्या डर गई।

इतनेमें कहारीने ऊपर आकर कहा—बहू ! बाबूजी साथवाले मन्दिरमें सीढ़ियोंपर पड़े रो रहे हैं, और किसीके उठाए नहीं उठते।

कौशल्याने यह बात अचरजके साथ सुनी, और सब कुछ समझ गई। वह दंग रह गई। उसे आज मालूम हुआ कि वह जिसे खुशक नाला समझे बैठी थी, वह गहरा सागर था। ऊपर रेत थी, नीचे पानी लहरें मारता था। उसने रेत देखी, पानी न देखा, मगर आज यह पानी रेतके पदोंको फाड़कर बाहर छलक रहा था। जैसे फव्वारे से जलकी धारा उछलती है। कौशल्याकी आँखें सजल हो गईं। आज उसको ऐसा मालूम हुआ, जैसे मुद्दतकी कमी एक क्षणमें पूरी हो गई हो। आज उसकी खुशीका ठिकाना न था। आज वह फूली न समाती थी। आज उसे अपना पति देवता दिखाई देता था।

थोड़ी देर बाद पति-पत्नी शादीके पास बैठे हँस हँसकर बातें कर रहे थे।

कौशल्या—बुरा न मानना। मैं आजतक यही समझती रही, कि तुम्हें बच्चोंसे ज़रा भी प्यार नहीं।

राजाराम—और आज ?

कौशल्या—आज तुम्हारा असली रूप देख लिया।

राजाराम—(मुस्कराकर) यह भी हमारी चाल थी, खा गईं ना धोखा ? हमने नाटक किया था।

कौशल्या—चलो हटो, अब तुम्हारी बातोंमें न आऊँगी। कहते

हैं, हमने नाटक किया था। कोई उस समय देखता, तो हैरान रह जाता। कैसे भागे भागे गए थे ? तन-बदनकी सुध न थी। दरवाजा भी खुला छोड़ गए। कोई चोर-उचक्का आ जाता, तो सब जमा-जत्था उठाकर ले जाता। क्यों ?

राजाराम—मगर जो चीज़ पा ली, वह घरके सारे सामानसे भी क़ीमती है। बल्कि मेरा ख़याल है, उसके सामने सारे संसारका सामान भी तुच्छ है।

कौशल्या किसी दूसरी दुनियामें पहुँच गई; बोली—यह प्यार आजतक कहाँ छुपा हुआ था ?

राजारामने मुस्कराकर स्त्रीकी तरफ़ देखा, और कहा—तुम्हारे दिलमें।

मास्टर आत्माराम

१

स्वयंसेवकने कहा—वह हमारे मास्टर साहब हैं ।

मैं चौंक पड़ा । मुझे कभी सन्देह भी न हुआ था कि वह मास्टर हो सकता है । मैं समझता था, कोई मामूली घरेलू नौकर होगा । या शायद किसी वकीलका चपरासी हो । इससे ज्यादा मैंने उसे कभी कुछ नहीं समझा । कितने आश्चर्यकी बात है कि जो आदमी रातके बारह-बारह बजेतक मेरी और दूसरे उपदेशकोंकी सेवा करता रहता था, जिसे हमारे जूते साफ करने, बिस्तर भाड़ने, और मैले कपड़े धोनेमें भी संकोच न था, वह स्कूलका मास्टर निकला । मुझे बड़ा अभिमान है कि मैं आदमीका चेहरा देखकर उसे पहचान सकता हूँ । मगर मुलतानके उस उदास, निराश, चुपचाप रहनेवाले अद्भुत आदमीके सामने मेरी यह शक्ति बिलकुल बेकार सिद्ध हुई । मगर मुझे अब भी सन्देह था कि शायद स्वयंसेवक भूलसे किसी दूसरे आदमीका जिक्र कर रहा हो । मैंने पूछा—तुम किस आदमीके विषय में कह रहे हो ? मेरा इशारा उस आदमीकी तरफ है, जो रातको हमें दूध देने आया था, और सुबह सैर कराने आया था ।

स्वयंसेवक—जी हाँ, मैं भी उन्हींकी बात कह रहा हूँ ।

मैं—तुम मेरे रातके व्याख्यानमें थे ?

स्वयंसेवक—जी हाँ, था ।

मैं—व्याख्यानके शुरू होनेपर जिस आदमीने मेज़पर लेम्प रक्खा था, मैं उसकी बात कर रहा हूँ ।

स्वयंसेवक—वही मास्टर साहब हैं ।

मैं—तुम जरूर भूल कर रहे हो । मैं ऐसा मूर्ख नहीं कि एक साधारण नौकर और स्कूलमास्टरमें भी फर्क न समझ सकूँ । (थोड़ी देर बाद) अच्छा, यह वताओ, उसका नाम क्या है ?

स्वयंसेवक—लाला आत्माराम, बी० ए०; बी० टी० । हमारे ही स्कूलमें सेकण्ड मास्टर हैं ।

मैं—मगर शक्त-सूरतसे तो मालूम नहीं होता, कि वह ग्रेजुएट होंगे । अगर वह मुझसे आप कहते कि मैं ग्रेजुएट हूँ, मैं तब भी न मानता । समझता, झूठ बोल रहे हैं । और मुझे तो अभी तक विश्वास नहीं होता कि वह ग्रेजुएट होंगे ।

स्वयंसेवक—किसीको भी विश्वास नहीं होता कि यह महात्मा ग्रेजुएट हैं ।

मैं—कपड़े बिल्कुल कुलियोंके-से पहनते हैं । बल्कि मेरा तो खयाल है, कुलियोंके कपड़े भी इनसे अच्छे होते हैं ।

स्वयंसेवक—घरमें इससे भी बुरे पहनते हैं । हाँ, जब इन्स्पेक्टर आनेवाला हो, उस दिन कपड़े बदल आते हैं ।

मैं—और बहुत उदास रहते हैं । मैंने उनकी आँखोंमें कभी खुशी की जोत नहीं देखी । यों कामको हर समय तैयार रहते हैं । मेरा खयाल है, सदा दिल ही दिलमें कुढ़ते रहते हैं ।

स्वयंसेवक—मगर किसीको कुछ बताते नहीं हैं। हेड-मास्टर साहबने कई बार अनुरोध किया; मगर कुछ न बताया। केवल इतना ही कहा—मैंने पाप किया है, यह उसका प्रायश्चित्त है।

मैं—अजीब आदमी हैं।

स्वयंसेवक—मगर आदमी शरीफ हैं। आपको कोई काम हो, रातके दो बजे बुला भेजिए—दौड़ते हुए चले आएँगे। एक बार भी 'नहीं' न कहेंगे। और फिर जनाव पुरुषार्थी ऐसे हैं कि सारी सारी रात काम कराते रहिए, आँख भी न झपकेंगे, न थकेंगे, न ढीले पड़ेंगे।

२

मुझे और भी आश्चर्य हुआ। स्वयंसेवकके चले जानेपर बार-बार सोचता था, इसकी तहमें जरूर कोई रहस्य है, कोई छिपी हुई घटना। मगर वह घटना क्या है? इस आदमीने ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिसका प्रायश्चित्त करनेके लिए अपने आपको इस तरह लोगोंकी दृष्टिमें गिरा रहा है? इसने कौन-सी आग जलाई है, जिसमें अब यह आप इस तरह जल रहा है?

सन्ध्याका समय था, मेरा व्याख्यान शुरू होनेमें केवल एक घंटा बाकी था। पंडालमें लोग अभी से जमा हो रहे थे। उनके चिल्लानेकी आवाजें मेरे कानों तक पहुँच रही थीं। मगर मुझे व्याख्यानकी ज़रा भी चिन्ता न थी, मैं ज़रा भी न सोचता था कि आज क्या कहूँगा? मेरे सामने इस समय एक ही सवाल था—यह मास्टर साहब कौन हैं? इनका गुप्त इतिहास क्या है? इन्होंने क्या पाप किया है? यह क्यों अपने आपको अपमानित करते हैं? मैं यह जाननेके लिए अधीर हो रहा था।

इतनेमें दरवाज़ा खुला और एक आदमी अन्दर आया। यह मास्टर आत्माराम थे। इससे पहली रातको भी मेरा व्याख्यान था।

भीड़के अधिक होनेके कारण मेरा गला बैठ गया था। डॉक्टर भल्ला ने मेरे लिए गलेकी टिकियाँ भेजी थीं, ताकि व्याख्यान देते समय आवाज़ साफ़ रहे। मास्टर आत्माराम वही टिकियाँ लेकर आए थे। उन्होंने शीशी मेज़पर रख दी, और धीरेसे पूछा—आप भोजन कब करेंगे ? इस समय या व्याख्यान देनेके बाद ? अगर इस समय खाना चाहें, तो ले आऊँ। अगर बादमें खाना हो, तो कह आऊँ।

मैंने इस प्रश्नका उत्तर न दिया, और उठकर उनका हाथ थाम लिया। वे कुछ घबरा गए। शायद उनको मुझसे ऐसे सुलूककी आशा न थी। मगर मैंने इसका ज़रा भी खयाल न किया और कहा—मास्टर साहब ! मुझे आपसे शिकायत है कि आपने मुझे धोखा दिया, वरना मुझसे ऐसी गुस्ताखी कभी न होती।

मास्टर साहबने मेरी ओर आश्चर्यसे देखा और कहा—आप क्या कह रहे हैं ? मैं आपका मतलब नहीं समझा।

मैं उनको घसीटकर अपनी चारपाईके पास ले गया, और उन्हें अपने साथ बिठाकर बोला—मैं अभी समझाए देता हूँ। बैठिए।

मगर वे उठनेके लिए छटपटाने लगे—मुझे छोड़ दीजिए। मैं फ़र्शपर बैठूँगा।

मैं—(हँसकर) चुपचाप बैठे रहिए, नहीं तो मैं ज़बरदस्ती करूँगा।

मास्टर साहब—(मिन्नतें करते हुए) पण्डितजी, परमात्माके लिए मुझे छोड़ दीजिए। मैं यहाँ बैठने योग्य नहीं, आपके चरणोंमें बैठूँगा।

मैं—चरणोंमें बहुत बैठ चुके, अब सिरपर बैठना होगा।

मास्टर साहबने मेरी तरफ़ दीन दृष्टिसे देखा, और बोले—मुझे मजबूर न करें, मैं आपके साथ कभी न बैठूँगा।

मैं—मगर क्यों ? साथ बैठनेमें आखिर हजे क्या है ? आप शरीफ हैं, शिक्षित हैं, एक हाई स्कूलके सेकण्ड मास्टर हैं । फिर भी.....

आत्माराम—मैं इस सम्मानका अधिकारी नहीं हूँ—मैं नराधम हूँ । मैंने पाप किया है ।

मैंने उनका हाथ छोड़ दिया । वे जल्दीसे फर्शपर बैठ गए । अब उनका चेहरा फिर शान्त था । थोड़ा-सा हँसकर बोले—मेरा स्थान यहीं है । मैं यहीं खुश हूँ ।

मैंने उनके कन्धेपर प्यारसे हाथ रक्खा, और अपनी आँखें उनकी आँखोंमें डालकर कहा—अपनी कहानी सुनाओ । मेरी प्रतिज्ञा है, मैं उसे सुने बिना यहाँसे न उठूँगा ।

मास्टर आत्मारामने एक ठण्डी साँस भरी, और दो गर्म आँसू टपकाकर कहा—मुझसे एक पाप हो गया है, अब प्रायश्चित कर रहा हूँ । बस यही मेरी कहानी है ।

मैं—नहीं; मैं सारी घटना सुनना चाहता हूँ । और (एक-एक शब्दपर जोर देकर) मैं यह पूरी कहानी सुने बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा । बोलो, क्या कहते हो ?

आत्माराम—(विवशतासे) इससे कुछ लाभ न होगा, उल्टा आप भी दुःखी हो जाएँगे ।

मैं—आपका दिल तो हलका हो जाएगा ।

आत्माराम—मैंने यह घटना आज तक किसीसे भी नहीं कही ।

मैं—शायद आपसे ऐसी सहानुभूति, और ऐसे आग्रहसे किसी ने पूछा भी न होगा ।

आत्माराम—आप क्षमा नहीं कर सकते मुझे ?

मैं—मैं प्रतिज्ञा कर चुका ।

आत्माराम—(सिर झुकाकर) तो फिर किसी समय कह सुनाऊँगा । अब तो आपके व्याख्यानका समय है । आप सुनते हैं, कितना शोर मच रहा है ? पाँच हजारसे कम आदमी न होंगे । मेरी दुःख भरी कहानी सुनकर आपका दिल भर आया, तो व्याख्यान खराब हो जायगा ।

मैं—मास्टरजी, मुझे इस समय व्याख्यानकी ज़रूरत भी चिन्ता नहीं है । आप इनकार करते हैं, मेरा शौक और भी बढ़ता जाता है । जबतक सुन न लूँगा, चैन न आएगा ।

आत्माराम मेरे मुँहकी तरफ देखने लगे ।

मैंने झुककर उनके कन्धोंपर दोनों हाथ रख दिए, और कहा— अब तो आपको कहना ही पड़ेगा । देर करना व्यर्थ है ।

आत्मारामने आकाशकी तरफ देखकर ठण्डी साँस भरी, और इसके बाद धीरे-धीरे यों कहना शुरू किया—

३

पण्डितजी, मैं जालन्धरका रहनेवाला हूँ । मेरे पिताजी वहाँ कपड़ेकी दूकान करते थे । वे बहुत अमीर न थे, पर गरीब भी न थे । उनकी गिनती शहरके सुप्रसिद्ध लोगोंमें होती थी । उनकी बात टालनेका किसीमें साहस न था । शहरके गुण्डे भी उनके सामने सिर न उठाते थे । उनकी सच्चाई और निर्भयताके दृष्टान्त जालन्धरमें आज भी आपको सुनाई देंगे । मगर मेरे भाग्यमें उनकी छत्र-छाया न लिखी थी । मैं अभी दो ही वर्षका था कि उनका देहान्त हो गया । मुझे उनकी शक्त-सूरत भी याद नहीं । भगवान् जाने, कैसे थे, कैसे नहीं थे । लोग उनकी आज भी तारीफ करते हैं ।

मेरा पालन-पोषण मेरी विधवा माँने किया। उसकी एक सहेली शिवाँ होशियारपुरकी रहनेवाली थी। वह भी विधवा थी। उन दोनोंमें असीम प्रेम था। उनका प्रेम देखकर सन्देह होता था कि वह सगी बहनें हैं, सखियाँ नहीं हैं। जब कभी मिलनेका अवसर आता, तो सारी सारी रात बातें करती रहतीं। रात समाप्त हो जाती, उनकी बातें समाप्त न होतीं। वह प्यार, वह स्नेह, वह विशुद्ध भाव आज भी याद आते हैं, तो दिलसे धुआँ-सा उठने लगता है। उनकी एक लड़की थी-कमला। मुझसे तीन-चार वर्ष छोटी होगी। दोनों सखियों ने हमारी सगाई कर दी और निश्चित हो गई।

उस जमानेमें मैं कॉलेजमें दाखिल हुआ ही था। सगाई होनेपर मुझे हार्दिक आनन्द हुआ। मैंने कमलाको एकाध बार देखा था; वह भी बचपनमें। मुझे उसकी शक्त-सूरत, रंग-रूप कुछ भी याद न था। मगर इसपर भी मुझे प्रसन्नता हुई। जब एकान्तमें बैठता, कमलाकी ख्याली मूर्ति आँखोंके सामने आकर खड़ी हो जाती, और मेरी दुनियामें जोत जगमगा उठती। मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे एक हँसमुख, भोली-भाली सुन्दरी बाला लज्जासे सिर झुकाकर मेरी तरफ़ प्रेम-पूर्ण दृष्टिसे देख रही है। कभी-कभी ऐसा मालूम होता था, जैसे वह मुझसे बातें कर रही है। धीरे-धीरे कल्पना-जगत्की इस कल्पित मोहनी मूर्तिसे मेरा प्रेम बढ़ने लगा। मैंने इसे मायाकी जीती-जागती रूपवती लड़की समझ लिया, जिसे विधाताने मेरे ही लिए पैदा किया है। मगर भाग्यने मेरे लिए कुछ और ही सोच रक्खा था। जब मैं ट्रेनिंग कॉलेजमें भर्ती हुआ, तो एक दिन पता नहीं, किस तरह मेरे दिलमें विचार उठा, कि अगर वह मेरे आदर्शपर पूरी न उतरी, तो क्या होगा? जीवन नष्ट हो जाएगा, सारी आशाएँ मिट्टीमें मिल जाएँगी, सारे सुपनोंपर पानी फिर जाएगा। यह आशंका न थी, मेरी तबाहीका श्रीगणेश था। काश वह घड़ी मेरे जीवनसे निकल जाती; काश मैं उस समय सो जाता, किसी दुर्घटना

से घायल हो जाता, तो आज मेरा जीवन ऐसा भयानक, ऐसा निराशापूर्ण, ऐसा शोकमय न होता। उस अशुभ दिनके बाद मेरे मनको सच्चा आनन्द कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैंने इस सन्देहको, इस वहमको दूर करनेका बहुत यत्न किया, मगर यह सन्देह दूर न हुआ। कुछ ही दिनोंके बाद मैंने स्थिर कर लिया कि कमलासे ब्याह न करूँगा, किसी और लड़कीसे देखकर करूँगा। पर आज सोचता हूँ, उस समय मुझे क्या हो गया था ? शायद मैं पागल हो गया था। शायद मेरा दिमाग चल निकला था। न कुछ देखा, न सुना; और निश्चय कर लिया। आदमी समझते सोचते हुए भी कैसा अन्धा हो जाता है, यह आज समझता हूँ, उस समय ज़रा भी खयाल न था।

गर्मीकी छुट्टियोंमें घर गया, तो एक दिन माँ ने कहा—क्यों बेटा, अब ब्याह कब करेगा ? शिवाँ आई थी, तो कहती थी, लड़की जवान हो गई है। कब तक बिठा रखे ?

मैं खाना खा रहा था, चुपचाप खाता रहा।

माँ ने थोड़ी देर मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा की और फिर बोली—समय बड़ा विकट है। लड़कियोंको कुँवारा बिठा रखना आसान नहीं।

मैं अबके भी चुप रहा।

माँ—मैं भी उस दिनके लिए तड़प रही हूँ, जब तू दुल्हा बनकर और सेहरा बाँधकर घोड़ीपर सवार होगा।

मैंने फिर भी जवाब न दिया।

माँ—(मेरे थालमें भाजी डालते हुए) अगर तू कहे, तो इस बिसाखमें ब्याह कर दूँ ?

अब चुप रहना कठिन था। मैंने धीरेसे कहा—मैं अभी ब्याह न करूँगा माँ।

माँ ने स्नेहपूर्ण दृष्टिसे मेरी तरफ देखा, और कहा— तो क्या तू

बुढ़ा होकर ब्याह करेगा ? ज़रा इस लड़केकी बातें सुनो । कहता है, अभी ब्याह न करूँगा । पण्डित गोकुलचन्दका लड़का मायाधारी तुमसे तीन महीने छोटा है, उसका ब्याह हुए दो वर्ष बीत गए । लाला कर्ताकिशनका लड़का चूनीलाल.....

मैं—(बात काटकर) मुझे औरोंसे क्या मतलब ? मैं अभी ब्याह न करूँगा ।

माँ—अच्छा यह भी न सही । जानता है, तेरे बापका ब्याह कब हुआ था । १३ वर्षकी उमरमें । उस समय मैं आठ वर्षकी थी ।

यह कहते-कहते उसकी आँखें सजल हो गईं । उसकी आवाज़ गलेमें फँस गई । उससे और न बोला गया । वह चुपचाप दीवारकी तरफ़ देखने लगी । मेरा भी दिल भर आया, हाथका ग्रास हाथ ही में रह गया ।

थोड़ी देर बाद उसने फिर ठण्डी साँस ली और कहा—आज अगर तेरा बाप होता, तो क्या तू फिर भी अभी तक कुँवारा ही बैठ रहा ? न बाबा ! मैं अब तेरी एक न सुनूँगी । तू तो पागल है । पढ़-लिख गया तो इससे क्या ? मगर है वही पागल । ज़रा भी कर्क नहीं पड़ा ।

मैंने हँसकर जवाब दिया—पागल हूँ, तो पागलखाने भेजो, ब्याह क्यों करती हो ? इससे तो यह मालूम होता है कि तुम भी पागल हो गई हो ।

अब माँको भी हँसी आ गई; ठोड़ीपर उँगली रखकर बोली—बाबा ! पता नहीं, तूने इतनी बातें कहाँसे सीख लीं ? पर एक बात कहे देती हूँ, तुझे ब्याह करना पड़ेगा ।

मैंने खानेका थाल परे हटा दिया, और गम्भीरतासे कहा—माँ, मैंने एक बार कह दिया है, अभी ब्याह न करूँगा । यह मेरा अंतिम निश्चय है । मैं इसे नहीं बदल सकता ।

शायद माँको अबतक यही खयाल था कि यह इन्कार जीभका है, दिलका नहीं। लड़के माँ-बापके सामने ऐसा ही कहा करते हैं। मगर मेरी दृढ़ता देखकर माँका चित्त उदास हो गया, बोली—तो क्या जवाब दूँ ? लड़की तो जवान हो गई है।

मैं—कहो, कहीं और ब्याह दें। हिन्दुस्थानमें मेरे सिवाय और भी बहुत से लड़के हैं ? और वह जवान भी हैं।

मेरी इस बातसे माँके कलेजेमें तीर-सा लगा। स्नेहकी मूर्तिने क्रोधका रूप धारण कर लिया। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं, जैसे चन्दनको भी रगड़ा जाए, तो उससे आग निकलती है। क्रोधसे बोली—अपनी स्त्रीका ब्याह दूसरे पुरुषसे होते देखेगा, और फिर भी सिर उठाकर चलेगा ? तू आदमी है, या जानवर है ?

माँका यह रूप देखकर मेरे देवता कूच कर गए। मेरे मुँहसे एक भी शब्द न निकला। मुँहमें जवान थी, जवानमें बोलनेकी शक्ति न थी। मैं चाहता था, माँ एक बार फिर उसी तरह प्यारसे अपना अधिकार जताकर कह दे, तुझे ब्याह करना होगा, तो मैं सिर झुका कर स्वीकार कर लूँ, चूँ भी न करूँ। मगर माँने यह शब्द न कहे, और उठकर चारपाईपर जा लेटी। मैं भी बाहर चला आया। अब मैं फिर वही जिद्दी, वही महामूर्ख, वही वहमी आत्माराम था, जिसने न कुछ देखा, न सुना, और समझ बैठा कि कमलासे ब्याह करके उसका जीवन अन्धकारमय हो जाएगा। पहले-पहल यह सन्देह कोमल पौदा था, जिसे उखाड़ना ज़रा भी कठिन नहीं होता। आदमी चाहे तो पैरसे भी उखाड़ दे। मगर अब वही पौदा वृक्षका रूप धारण कर चुका था, जिसे हाथी हिलाना चाहे, तो वह भी न हिला सके। परमात्मा ही जानता है, संसारमें मुझ जैसे अभागों कितने हैं, जो अपने ही निर्मूल सन्देहके जगत्में भटक-भटककर तबाह हो जाते हैं।

कुछ दिन बाद होशियारपुरसे पत्र आया कि जल्दी मंजूरी भेजो, तो तैयारियाँ शुरू करूँ। मुझे तो शहरमें मुँह दिखाना भी मुश्किल हो गया है। पत्र पढ़कर मैं सोचने लगा, माँको दिखाऊँ या न दिखाऊँ। फिर सिरपर सवार हो जाएगी, फिर वही गालियाँ मिलेंगी, और क्या पता, जबरदस्ती ब्याह कर दे ? मैं घबरा गया। एक दिन सोचता रहा, दो दिन सोचता रहा, तीसरे दिन मार्ग मिल गया। मैंने माँकी तरफसे पत्र लिख दिया। उस पत्रका आशय यह था:—

बहन। क्या कहूँ ? कहते हुए भी शरम आती है। जी चाहता है, कहीं डूब मरूँ। तुम्हें कभी मुँह न दिखाऊँ। मगर मेरा इसमें ज़रा भी दोष नहीं। आत्मारामश्री बुद्धिपर पत्थर पड़ गए हैं। कहता है, मैं ब्याह न करूँगा। क्या क्या आशाएँ थीं—सबपर पानी फिर गया। कमलाको अपनी बहू बनाकर मुझे कैसा स्वर्गाय आनन्द प्राप्त होता। अफ़सोस !

मुझे आत्मारामसे अब ज़रा भी आशा नहीं। मैं समझा-समझा कर थक गई, मगर उसपर असर नहीं होता। कैसे कहूँ, कि कमलाको कहीं और ब्याह दो। पर विवश हूँ।

तुम्हारी दुखी बहन,

रामदेवी

पण्डितजी ! यह पत्र लिखकर मैंने समझा, कि सिरसे कोई भार उतर गया, कोई भयानक रोग टल गया। मगर यह रोग न टला था, मैंने अपने जीवनका सबसे बड़ा रोग खरीद लिया था। मैं कितना पतित, कितना पापी, कितना हृदयहीन हूँ ! उस समय मुझे खयाल न आया कि मैं क्या कर रहा हूँ ? माँको मालूम भी न हुआ, और यह पत्र होशियारपुर जा पहुँचा। मेरा पत्र पाकर शिवाँको कितना दुःख हुआ होगा, यह मुझसे छिपा न था। इसीसे उसने मेरी माँ को पत्र लिखना भी बन्द कर दिया। प्रेम जब क्रोधमें आता है, तो चुप हो

जाता है, बोलता नहीं है। मगर यह बात ज्यादा दिन छिपनेवाली न थी, एक दिन खुल गई।

वैसाखकी एक सन्ध्या थी। मैं सैर करके घर लौटा, तो माँ चुपचाप बैठी थी। उसकी आँखें रो-रोकर सूज गई थीं। मुझे देखते ही उसकी आँखोंसे फिर आँसू बहने लगे। रोते-रोते बोली—बेटा ! तूने बुरा किया। यह तुझे चाहिए न था। गरीब लड़कीका दिल टूट गया है। जबसे तेरा पत्र गया है, दिन-रात रोती रहती है। उसके मामाने एक वर ठीक किया है, मगर वह कहती है, मेरा ब्याह हो चुका। हिन्दूकी लड़की हूँ, दूसरा ब्याह न करूँगी। मगर उसका मामा ब्याह करनेपर तुला हुआ है। भगवान् जाने ! क्या हो, क्या न हो ! मगर तूने बुरा किया। अब भी कुछ हो सके, तो कर ले, वरना मैं कुछ खा मरूँगी। हाय, बेटा, तूने इतना भी न सोचा कि मैं तेरी माँ हूँ।

वह फूट-फूट कर रोने लगी। वह रात जिस तरह मैंने गुजारी है, यह मैं ही जानता हूँ। दूसरे दिन मैं होशियारपुरकी गाड़ीमें बैठ गया। मैंने फ़ैसला कर लिया कि जाते ही शिवाँ के पाँव पकड़ लूँगा। कहूँगा तू मेरी माँ है, मुझे माफ़ कर या सज़ा दे। परन्तु वहाँ पहुँचा, तो द्वारपर ब्याहके चिह्न दिखाई दिए। मेरा कलेजा काँप गया। उस समय मुझे जो कोई देखता, वह यही समझता कि यह पागल है। और मैं सच-मुच पागल ही था। मेरी विचार-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। मुझे इतना भी मालूम न था कि मैं क्या कर रहा हूँ ? आँगनमें पहुँचा तो शिवाँ सामने आती दिखाई दी। मगर इस दशामें कि उसके चेहरेपर हवाईयाँ उड़ रही थीं। मुझे देखा, तो उसकी आँखोंसे आगकी ज्वाला निकलने लगी। दाँत पीसती हुई बोली—अब तू यहाँ क्यों आया है ? क्या मेरी बेटाकी हत्या करके भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ ?

यह कहकर वह वापस चली गई। मुझे जैसे किसीने काठ मार

दिया । जैसे किसी दैवी शापसे मेरे पाँव ज़मीनमें गड़ गए । घरमें मुहल्ले-भरकी स्त्रियाँ जमा थीं, शिवाँकी आवाज़ सुनकर उनमेंसे कुछ बाहर चली आई । एक-दो मुझे पहचानती थीं । एक बोली —अरे बेटा ! तूने तो अनर्थ किया । यह लड़की न थी, हीरा थी । इसे ठुकरा कर तेरा भी भला न होगा । गरीबने ज़हर खा लिया ।

मैंने कलेजा थाम लिया । इतनेमें दूसरी स्त्री बोली—वह तो सती थी, सती । रातको व्याह था, पहले ही ज़हर खा लिया ।

तीसरी—शायद बच जाए ।

मुझे कुछ आशा हो गई ।

दूसरी—(सिर हिलाकर) अब क्या बचेगी वहन । अब तो डॉक्टर भी जवाब दे गया ।

मेरा दिल फिर बैठ गया ।

तीसरी—डॉक्टर कोई परमेश्वर थोड़ा ही है । परमेश्वर चाहे, तो अब भी बचा ले । वह चाहे तो मुर्दा जी उठे ।

चौथी—इसमें क्या शक है । वह सब कुछ कर सकता है । पर-मात्मा करे, बच ही जाए । गरीबने दुनियाका देखा ही क्या है ?

पाँचवीं—(रोकर) कल मैं सारा दिन पास बैठी रही, मुझसे ज़िक्र भी नहीं किया । हाँ चुप थी । अब मालूम हुआ, उसके मनमें मौत बस चुकी थी । क्या बोलती और क्या बताती ?

दूसरी—उदास तो उसी दिनसे थी, जिस दिनसे (मेरी तरफ़ घृणासे इशारा करके) इसका पत्र आया था । उस दिनके बाद उसके मुँहपर किसीने रौनक नहीं देखी । सदा चुप रही । सदा मनको घुन लगा रहा ।

तीसरी—क्यों बेटा, इसमें क्या कीड़े पड़े थे, जो तूने मँगनी तुड़ा ली ? ऐसी लड़की तो हमारे सारे शहरमें न होगी । उसे पाकर तेरी किसमत जाग उठती ।

चौथी—(घृणासे मुँह फेरकर) बहन ! तुम भी किससे बातें करती हो । ऐसे आदमीको तो मुँह न लगाना चाहिए । आदमी काहे को है, राक्षस है । बल्कि उससे भी बुरा ।

पहली—(ठण्डी साँस भरकर) वाह कमला ! तू भी गई । अभी तेरी उमर ही क्या थी ? दुनियामें आई थी, कुछ दिन तो दुनियाकी बहार भी देखती ।

मैं अवाक् खड़ा था । क्या कहता, क्या न कहता ? अपने आपको धिक्कार रहा था । इतनेमें एक लड़की अन्दरसे दौड़ती हुई आई, और मुझसे बोली—जल्दी चलो; तुम्हें बुला रहे हैं ।

मैं भागता हुआ अन्दर गया । वह ज़मीनपर पड़ी तड़प रही थी । इस समय भी वह कैसी सुन्दरी, कैसी मोहिनी थी । ऐसा मालूम होता था, जैसे किसी निर्दयीने फूलको तोड़कर भूमिपर पटक दिया है । उसने मेरी तरफ एक बार देखा, और फिर आँखें बन्द कर लीं । उस अन्तिम दृष्टिमें जो प्यार, जो अभिमान, जो दुःख, जो उलहना भरा था, उसे मैं आजतक नहीं भूल सका ।

उसकी माँ ने रोकर कहा—बेटी कमला ! (घबराकर जल्दीसे) अरी बेटी कमला ! देख कौन आया है ?

मगर कमलाने जवाब न दिया ।

स्त्रियोंने जल्दीसे उसके हाथपर आटेका दीपक रख दिया ।

तो क्या सचमुच उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई ? इतनी

जल्दी ! इतनी छोटी उम्रमें ! उसकी माँका हृदय-वेधक विलाप वायु-मण्डलमें गूँजने लगा, स्त्रियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं ।

जब मैं बाहर निकला तो आसमान चक्कर खा रहा था, ज़मीन घूम रही थी । मेरे पाँवतले भूमि न थी । हृदयके अन्दर आग लगी हुई थी । इस घटनाको पाँच साल बीत चुके हैं, वह आग उसी तरह सुलग रही है । न दिनको चैन आता है, न रातको आराम मिलता है । रातको ऐसा मालूम होता है, मानो कोई कन्धा पकड़कर हिला रहा है । जागता हूँ, तो कोई कमरेमें सिसकियाँ भरता हुआ मालूम होता है । सोता हूँ, तो सुपनेमें भयानक शक्लें देख कर चौंक उठता हूँ । उस समय मैं अपने आपमें नहीं रहता । मेरी गगन-भेदी चीखोंसे सारे मुहल्लेके लोगोंकी नींद हराम हो जाती है । अब मुझे कोई किराएपर मकान भी नहीं देता । कहते हैं, कौन मुहल्ले-भरसे लड़ाई मोल ले । तुमपर तो रातको भूत सवार हो जाता है । बड़ी मुश्किलसे शहरके बाहर एक मकान मिला है । उसीमें अपनी माँके साथ अपने दुःखमय जीवनके दिन काट रहा हूँ । मगर आह ! वह उसकी अन्तिम प्रेम-पूर्ण दृष्टि, वह उसकी जवानी और सुन्दरताकी मौत, एक पलके लिए भी नहीं भूलती । कैसी आनवाली थी ! उसने मुझे देखा नहीं था, मुझसे बातचीत नहीं की थी, न उसका मुझसे पत्र-व्यवहार था । केवल नामका सम्बन्ध था; उसीपर निछावर हो गई । वह इस स्वार्थमय संसारकी लड़की न थी, कोई सनातन समयकी सती थी । आज भी उसके जीवनके अन्तिम क्षण मेरी आँखोंके सामने फिर रहे हैं; वही घर, वही आँगन, वही स्त्रियोंसे भरा हुआ कमरा, वही उसमें लेटी हुई स्वर्गकी देवी, जो मुझे देखे बिना मरना भी न चाहती थी । हाय शोक ! मैंने क्या कर दिया ? आज पूरे पाँच सालसे उसे याद कर-करके रो रहा हूँ । मगर न वह भूलती है, न मौत आती है, जो इस जीवनका अन्त हो । इसीलिए मैंले कपड़े पहनता हूँ, गन्दा खाना खाता हूँ, अपने आपको अपनी

और दूसरोंकी आँखोंमें गिराता हूँ कि शायद इसी तरह मेरे पापका प्रायश्चित हो जाए ।

४

यह कहते-कहते उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे । मेरी ज़बानसे एक भी शब्द न निकला; हाँ हृदयमें आग-सी लग गई । थोड़ी देर बाद वे उठकर मेरा जूता ले आए, और मेरे सामने रखकर बोले—
चलिए, व्याख्यानका समय हो गया है ।

मगर मुझे जूते पहननेका होश न था ।



साइकिलकी सवारी

१

भगवान ही जानता है, जब मैं किसीको साइकिलकी सवारी करते या हारमोनियम बजाते देखता हूँ, तो मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है ! सोचता हूँ, भगवानने ये दोनों विद्यायें भी खूब बनाई हैं । एकसे समय बचता है, दूसरीसे समय कटता है । मगर मज्जा देखिए, हमारे प्रारब्धमें बीसवीं सदीकी ये दोनों विद्याएँ नहीं हैं । न साइकिल चला सकते हैं, न बाजा बजा सकते हैं । पता नहीं, कबसे यह धारणा हमारे मनमें बैठ गई है कि हम सब कुछ कर सकते हैं, मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते ! भगवानने ये दोनों चीजें दुनियाके लिए बनाई हैं, हमारे लिए नहीं बनाई ।

शायद १६३२ की बात है कि बैठे-बैठे खयाल आया, चलो साइकिल चलाना सीख लें । और इसकी शुरुआत यों हुई कि हमारे लड़केने चुपचुपातेमें यह विद्या सीख ली, और हमारे सामनेसे सवार होकर निकलने लगा । अब आपसे क्या कहें कि लज्जा और घृणाके कैसे-कैसे खयाल हमारे मनमें उठे हैं । सोचा, भई, क्या हमी संसार भरमें फिसड़ी रह गए हैं ? सारी दुनिया चलाती है, ज़रा-ज़रासे छोकरे

चलाते हैं, मूर्ख और गँवार चलाते हैं। हम तो परमात्माकी कृपासे फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे ? आखिर इसमें मुश्किल क्या है ? कूदकर चढ़ गए और ताबड़तोड़ पाँव मारने लगे। और जब देखा कि कोई राह में खड़ा है, तो टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा, तो क्रोध-पूर्ण आँखोंसे उसकी तरफ देखते हुए पाससे निकल गए। बस, यही तो सारा गुर है इस लोहेके घोड़ेकी सवारी का। अब ऐसा मालूम हुआ कि हम 'बे फजूल' मरे जाते थे, और तिलको ताड़ समझे बैठे थे। अब सोचा, हम भी कुछ दिनोंमें सीख लेंगे। बस जनाब ! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाए, परवा नहीं। सीखेंगे और यार दोस्तोंको हैरान कर देंगे।

दूसरे दिन हमने अपने फटे-पुराने कपड़े तलाश किए, और उन्हें ले जाकर श्रीमतीजीके सामने पटक दिया कि ज़रा मरम्मत तो कर दो।

श्रीमतीजीने हमारी तरफ अचरज-भरी दृष्टिसे देखा और कहा—इन कपड़ोंमें अब जान ही कहाँ है, जो मरम्मत करूँ ? ये तो फेंक दिए थे। आप कहाँसे उठा लाए ? वहीं जाकर ढाल आइए।

हमने मुस्कराकर श्रीमतीजीकी तरफ देखा। इसका मतलब यह था कि तुम्हें क्या मालूम, हमारे क्या क्या इरादे हैं ! मुँहसे कहा—तुम हर समय बहस न किया करो। आखिर मैं इन्हें ढूँढ़-ढाँढ़कर लाया हूँ, तो ऐसे ही तो नहीं उठा लाया। कृपा करके इनकी मरम्मत कर डालो जल्दीसे !

मगर श्रीमती बोली—पहले बताओ, इनका क्या बनेगा ?

हम चाहते थे, घरमें किसीको कानोंकान खबर न हो, और हम साइकिल सवार बन जाएँ। और इसके बाद जब इस विद्याके पंडित हो जाएँ, तो एक दिन जहाँगीरके मक्कबरेको जानेका निश्चय करें। घरवालोंको ताँगेमें बिठा दें, और कहें, तुम चलो, हम दूसरे ताँगेमें आते हैं। और जब वे चले जाएँ, तो साइकिलपर सवार होकर उनको

रास्तेमें जा लें। हमें साइकिलपर सवार देखकर उन लोगोंकी क्या हालत होगी ! हैरान हो जाएंगे; दंग रह जाएंगे; आँखें मल-मलकर देखेंगे कि कहीं कोई और तो नहीं है ? मगर हम ऐसा जाहिर करेंगे जैसे कुछ मालूम ही नहीं है, जैसे यह सवारी हमारे लिए मामूली बात है।

मगर श्रीमतीजीने कहा—पहले बताओ, इनका क्या होगा ?

भक्त मारकर बताना पड़ा कि रोज़-रोज़का तोंगेका खर्च मारे डालता है। साइकिल चलाना सीखेंगे और पैसे बचाएँगे।

श्रीमतीजीने बच्चेको सुलाते हुए हमारी तरफ़ देखा और मुस्करा कर बोलीं—मुझे तो आशा नहीं कि आपसे यह बेल मँदे चढ़ सके। खैर कोशिश कर देखिए। मगर इन कपड़ोंका क्या करोगे ?

हमने ज़रा रोवसे कहा—आखिर बाइसिकिलसे एक-दो बार गिरेंगे या नहीं ? और गिरनेसे कपड़े फटेंगे या नहीं ? जो जाहिल हैं, वे नए कपड़ोंका नुकसान कर बैठते हैं। जो बुद्धिमान हैं, वे पुराने कपड़ोंसे काम चलाते हैं। और हमारा खयाल है, हम बुद्धिमान हैं।

मालूम होता है, हमारी इस युक्तिका जवाब हमारी स्त्रीके पास कोई न था, क्योंकि उन्होंने हमारी बातका जवाब न दिया, और उसी समय मशीन मँगवाकर उन कपड़ोंकी मरम्मत शुरू कर दी।

इधर हमने बाज़ार जाकर जैम्बकके दो डिब्बे खरीद लिए कि चोट लगनेपर उसका उसी समय इलाज किया जा सके। इसके बाद बाहर जाकर एक खुला मैदान तलाश किया, ताकि दूसरे दिन से साइकिल सवारीका सबक शुरू किया जा सके।

२

अब हमारे सामने यह सवाल आया कि अपना उस्ताद किसे बनाएँ ? पहले तो यह सोचा कि बिना उस्तादके सीखो। हमारे लड़के

ने क्या किसीकी शागिर्दी की थी ? कहता था, मैंने तो ऐसे ही सीख लिया । एक बार गिरा, दो बार गिरा, तीसरी बार गिरनेकी नौबत ही नहीं आई । मगर फिर सोचा कि वह लौंडा है, हम तो लौंडे नहीं हैं । आदमी जो काम सीखना चाहे, नियमसे सीखे, नहीं तो नुक़सान उठाता है और दुनिया उसपर हँसती है । इसलिए यह तो निश्चय कर लिया कि किसीको उस्ताद बनाएँ । मगर यह निश्चय न कर सके कि किसे बनाएँ ? आखिर हमारा उस्ताद कोई ऐसा ग़ौरा नत्थू खैरा तो नहीं बन सकता । इसी उधेड़बुनमें बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायण आ गए और बोले—अमां ! हो जाए एक बाज़ी शतरंजकी । ज़रा आवाज़ दो लड़केको । शतरंज और मुहरे उठा लाए । आज हम तुम्हें हराएँगे ।

हमने सिर हिलाकर जवाब दिया—नहीं तिवारी ! आज तो जी नहीं चाहता । आज नहीं खेलेंगे हम ।

तिवारीने अपने घुटे हुए सिरसे टोपी उतारकर हाथमें ले ली और चोटीपर हाथ फेरकर बोले—हम तो इतनी दूरसे चलकर आए हैं, कि एक दो बाज़ियाँ खेलेंगे । तुमने कह दिया जी नहीं चाहता ।

हमने कहा—अगर जी न चाहे तो कोई क्या करे ?

यह कहते कहते हमारा गला भर आया ! तिवारीका दिल पसीज गया । हमारे पास बैठकर बोले—अरे भाई ! मामला क्या है ? घरवालीसे झगड़ा तो नहीं हो गया ?

हमने कहा—तिवारी भैया ! क्या कहें ? सोचा था, लाओ, साइ-किलकी सवारी ही सीख लें । मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता, जो हमारी मदद करे । बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख़यालमें, जो हमारा उस्ताद बननेके योग्य हो ?

तिवारीने हमारी तरफ़ बेबसीकी आँखोंसे ऐसे देखा, मानो हमको कोई रूज़ाना मिल रहा है, और वे ख़ाली हाथ रहे जाते हैं ।

बोले—मेरी मानो, तो यह रोग न पालो । अब इस उम्रमें साइकिल पर चढ़ोगे ? और फिर यह भी कोई सवारियोंमें सवारी है कि डंडेपर उकड़ूँ बैठे हैं, और पाँव चला रहे हैं । जो देखे, उसे हँसी आए । अजी लानत भेजो इस खयालपर, और आओ एक बाजी खेलो । कहने लगे, साइकिल चलाना सीखेंगे ! क्या ताँगे टूट गए हैं ?

मगर हमने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं । साक़ समझ गए कि तिवारी ईर्ष्याकी आगमें फुँका जाता है । हमने मुँह फुलाकर कहा—भई तिवारी ! हम तो ज़रूर सीखेंगे, कोई आदमी बताओ ।

तिवारी सोचमें पड़ गया । हमने फिर आग्रह किया—भई बताओ भी ।

तिवारी—आदमी तो ऐसा है एक । मगर वह मुफ्त नहीं सिखाएगा । फ़ीस लेगा । दे सकोगे ?

हम—कितने दिनमें सिखा देगा ?

तिवारी—यही दस-बारह दिनमें । और क्या ?

हम—और फ़ीस क्या लेगा हमसे ?

तिवारी—औरोंसे पचीस लेता है । तुमसे बीस ले लेगा हमारी खातिर । इससे कमपर राज़ी न होगा ।

हमने सोचा—दस दिनमें सिखाएगा, और बीस रुपये फ़ीस लेगा । दस दिन—बीस रुपये । बीस रुपये—दस दिन । अर्थात् दो रुपये रोज़ाना, अर्थात् साठ रुपये महीना; और वह भी एक-दो घंटेके लिए । ऐसी तीन-चार ड्यूटियाँ मिल जायँ, तो ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया । हमने तिवारीसे तो इतना ही कहा कि जाकर मामला तय कर आओ । मगर जीमें खुश हो रहे थे कि साइकिल चलाना आ जाए तो एक ट्रेनिंग स्कूल खोल दें, और तीन-चार सौ रुपया महीना कमाने लगे । मोज़ हो जाए; आमदनीकी एक और मद खुल जाए ।

इधर तिवारीजी मामला तय करने गए, उधर हमने यह शुभ समाचार जाकर श्रीमतीजीको सुना दिया कि कुछ दिनों बाद हम एक ऐसा स्कूल खोलनेवाले हैं, जिसमें तीन-चार सौ रुपया महीनेकी आमदनी होगी। और हम उस स्कूलमें लड़कोंको साइकिल चलाना सिखाएंगे ?

श्रीमतीजी बोलीं—तुम्हारी इतनी उमर हो गई, मगर यह मुआओछापन न गया। पहले आप तो सीख लो, फिर स्कूल भी खोल लेना। मैं तो समझती हूँ कि तुम सीख ही न सकोगे; दूसरोंको सिखाना तो दूरकी बात है। फिर स्कूल कब खुलेगा, और आमदनी कब होगी ?

हमने बिगड़कर कहा—यह तुममें बड़ी बुरी आदत है कि हर काममें टोक देती हो। हमसे बड़े बड़े सीख रहे हैं, तो हम क्यों न सीख सकेंगे ? और पहले तो शायद सीखते, शायद न सीखते, मगर अब जब तुमने टोका है, तो जरूर सीखेंगे। तुम भी क्या कहोगी !

श्रीमतीजी बोलीं—मैं तो कहती हूँ, तुम हवाई जहाज चलाओ; यह बाइसिकल क्या चीज है ? पर तुम्हारे स्वभावसे डर लगता है। एक बार गिरोगे, तो देख लेना, बाइसिकल वहीं फेंक-फाँककर भाग आओगे। फिर धीरेसे यह भी कह दिया—भगवान् किसीको स्त्री न बनाए। बात करना भी पाप हो गया—अब हम हर काममें टोकनेवाले हो गए ! हमें क्या पड़ी है ? सीखोगे, अपने लिए, न सीखोगे, अपने लिए। हमें क्या मतलब ? आमदनी किसे अखरती है ? और पतिकी इज्जत कौन नहीं चाहता ?

इतनेमें तिवारीने बाहरसे आवाज दी। हमने जाकर देखा, उस्ताद साहब खड़े हैं। काला रंग, नाटा कद, भद्दी-सी शक्त्त-सूरत, मोटी गर्दन, गलेमें काला तागा, मैली लुङ्गी, पाँवमें कसूरी जूता, जो पहलवान लोग पहनते हैं, छोटी छोटी आँखें। पहले तो मनमें आया, कह दें, हमें यह उस्ताद पसन्द नहीं। फिर सोचा, हमें साईकिल

चलाना सीखना है। हमें इनको किसी फ़िल्ममें हीरो थोड़ा बनाना है। यह सोचकर हमने शरीफ़ विद्यार्थियोंके समान श्रद्धा भावसे हाथ बाँधकर प्रणाम किया, और चुपचाप खड़े हो गए। उस्तादने हमें धूरकर देखा।

तिवारी—यह तो बीसपर मानते ही न थे। बड़ी मुश्किलसे मनाया है। पर पेशगी लेंगे। कहते हैं, पीछे कोई नहीं देता।

हम—अरे भई ! हम देंगे। दुनिया लाख बुरी है। मगर फिर भी भले आदमियोंसे खाली तो नहीं है। यह बीस रुपया तो चीज़ ही क्या है ? हम अपना धर्म लाखोंके लिए भी न गँवाएँ। बस, एक बार हमें साइकिल चलाना सिखा दें, फिर देखें हम इनकी क्या क्या सेवा करते हैं। जो उस्तादकी सेवा न करे, उसका भला कैसे होगा ?

मगर उस्ताद साहब नहीं माने। बोले—फ़ीस पहले लेंगे।

हम—और अगर आपने नहीं सिखाया, तो क्या होगा ?

उस्ताद—नहीं सिखाया, तो फ़ीस लौटा देंगे। भगड़ा खत्म।

हम—और अगर फ़ीस भी नहीं लौटाई तो ?

उस्ताद—अब इस 'तो' का जवाब तो मेरे पास है नहीं, मगर इतना कह सकता हूँ कि ऐसी बे-ईमानियाँ हमें बदनाम न कर देंगी ?

इसपर तिवारीने कहा—अजी साहब ! क्या यह तिवारी मर गया है ? शहरमें रहना हARAM कर दूँ, बाज़ारमें निकलना बन्द कर दूँ। फ़ीस लेकर काम न करना कोई हँसी-खेल है ?

जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है, तो हमने फ़ीसके रुपये लाकर उस्तादकी भेंट कर दिए और कहा—उस्ताद ! कल सबेरे सबेरे ही आ जाना। हम तैयार रहेंगे। हमने इस कामके लिए कपड़े भी बनवा लिए हैं, और अगर गिर पड़े, तो

घावपर लगानेके लिए जैम्बक भी खरीद लिया है। और हाँ, हमारे पड़ोसमें जो मिस्त्री रहता है, उससे साइकिल भी माँग लिया है। आप सवेरे ही चले आएँ तो हरिका नाम लेकर शुरू कर दें। क्योंकि जो काम हरिका नाम लेकर शुरू किया जाता है, उसमें भगवान् बरकत देता है।

तिवारीजी और उस्तादने हमें हर तरहसे तसल्ली दी, और चले गए। इतनेमें हमें याद आया कि एक बात कहना भूल गए। नंगे पाँव नंगे सिर भागे, और उन्हें बाज़ारमें जा लिया। वे हैरान थे। हमने हाँफते हाँफते कहा—उस्ताद ! हम शहरके निकट नहीं सोखेंगे। शहरके उधर जो बारा है, वहाँ एक तो ज़मीन नरम है, चोट कम लगती है। दूसरे वहाँ कोई देखता नहीं है। हम इन देखनेवालोंसे डरते हैं।

३

अब रातको आरामकी नींद कहाँ ? बार बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया। ज़रा भी ऊँघ जाते, तो साइकिलके सुपने आते थे। एक बार देखा कि हम साइकिलसे गिरकर घायल हो गए हैं, अस्पतालमें एक अँगरेज़ हमारा आपरेशन कर रहा है और हमारी स्त्री रो रोकर कह रही है कि मैं विधवा हो गई। दूसरी बार देखा कि हम ज़मीनपर खड़े हैं, और हमारा साइकिल आसमानपर चल रहा है। फिर ऐसा मालूम हुआ कि हमारे उस्तादने हमें गोदमें उठाकर उछाल दिया। दूसरे क्षणमें देखा, तो हम साइकिलपर सवार हैं, साइकिल आपसे आप हवामें उड़ा जा रहा है और लोग हमारी तरफ़ आँखें फाड़ फाड़कर देख रहे हैं। एकाएक शैतानने आकर हमारे कंधेपर हाथ रख दिया, और हम ज़मीनपर गिर पड़े। इतनेमें हमारी आँख खुल गई—देखा, यह सब सुपना था। हम चारपाईपर थे और हमारी स्त्री हमारा कंधा हिला हिलाकर जगा रही थी।

उठकर देखा, तो दिन निकल आया था। जल्दीसे जाकर वे पुराने कपड़े पहन लिए, जैम्बकका डिब्बा हाथमें ले लिया और नौकर को भेजकर मिछी साहबसे साइकिल मँगवा लिया। इसी समय उस्ताद भी आ गए, और हम हरिका नाम लेकर बाग़की तरफ़ चल दिए। लेकिन अभी घरसे निकले ही थे कि बिल्ली रस्ता काट गई, और एक लड़केने छींक दिया। क्या कहें, हमें कैसा क्रोध आया है उस नामुराद बिल्लीपर और उस शैतान लड़केपर। मगर क्या करते? दाँत पीसकर रह गए। एक बार फिर भगवान्‌का पावन नाम लिया, और आगे बढ़े। पर बाज़ारमें पहुँचकर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ़ देखता है, मुस्कराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है? और यह लोग मुस्कराते क्यों हैं? एकाएक हमने देखा कि हमने जल्दी और घबराहटमें पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिए हैं, और लोग इसीपर हँस रहे हैं। सिर मुँडाने ही ओले पड़े। पहला कदम ही ग़लत।

हमने उस्तादसे माफ़ी माँगी, और घर लौट आए। अर्थात् पहला दिन व्यर्थ गया। दो रुपये का खून हो गया।

दूसरे दिन निकले, तो हमारे घरके पास जो लाला साहब रहते हैं, वे सामने आ गए और मुस्कराकर बोले—कहिए, कहाँ जा रहे हैं?

यह लाला साहब यों तो बहुत भले आदमी हैं, मगर इनकी एक आदत बहुत बुरी है। जिससे मिलते हैं, उसीसे पूछते हैं, कहाँ चले? कई बार समझाया है कि लालाजी! जब कोई कामपर निकले और उससे 'कहाँ' पूछा जाए, तो वह काम कभी नहीं होता, और जिसका काम बिगड़ जाता है, वह 'कहाँ' पूछनेवालेको गालियाँ देता है। मगर लाला साहबपर ज़रा असर नहीं होता। इस समय हमने उनसे बचने की कितनी कोशिश की है, किस तरफ़ मुँह मोड़ा है, किस किस तरह बचे हैं, मगर उनकी 'कहाँ' की तोपसे कौन बच सकता है? महात्मा जीने सामने आकर गोला दाग़ ही तो दिया।

हमने जल-भुन कर जवाब दिया—नरकको जा रहे हैं ! आप भी चलेंगे क्या ? बड़ी अच्छी जगह है ।

लाला साहब—अरे ! मैंने तो केवल यह पूछा था कि आप कहाँ जा रहे हैं ?

हम—और हमने प्रार्थना की है कि नरकको जा रहे हैं । दो आदमियोंकी जगह खाली है । अगर आप न पूछते, तो आपका क्या बिगड़ जाता ? दुनियामें कौन-सी कमी रह जाती ?

लाला—भगवान् जानता है, मुझे यह मालूम न था कि आप किसी जरूरी कामके लिए जा रहे हैं !

हम—तो हम बेकार घूमा करते हैं । मानो हमारा दिमाग खराब है । हम गधे हैं ।

लाला—अजी जनाब ! आप भी क्या बात करते हैं ? मैं आपकी शानमें ऐसी गुस्ताखी कर सकता हूँ ? मेरा मतलब यह था—

हम—कि हमसे 'कहाँ' न पूछा, तो प्रलय आ जाएगा । ज़रा सोचिए, आपसे कितनी बार हमने हाथ बाँध बाँधकर नम्र निवेदन किया है कि हमें इस 'कहाँ' से डर लगता है । मगर आपको यह ऐसा रोग लगा है कि पीछा ही नहीं छोड़ता । आज ही साइकिल चलाना सीखने जा रहे थे । यह देखिए, पुराने कपड़े और यह देखिए जैम्बक का डिब्बा और ये उस्ताद साहब और यह साइकिल । मगर इस 'कहाँ' ने आजका दिन भी खराब कर दिया । आपने तो मुस्कराकर पूछ लिया—कहाँ ? हमारा दो रुपयेका खून हो गया । आपको क्या मालूम, हमने उस्ताद साहबको दस दिनके बीस रुपये दिए हैं ।

उधर उस्ताद साहबने साइकिलकी घण्टी बजाकर हमें अपने पास बुलाया और बोले—मैं एक गिलास लस्सी पी लूँ । आप ज़रा साइकिलको थामिए दो मिनटके लिए ।

लाला साहबने यह अवसर पाया, तो प्राण लेकर भाग निकले। वरना हम उनसे उस दिन कागज़ लिखा लेते कि अब फिर किसीसे 'कहाँ' नहीं पूछेंगे।

४

उस्ताद साहब जब लस्सी पीने लगे, तो हमने साइकिलके पुरजों की ऊपर-नीचेसे परीक्षा शुरू कर दी, और लालाजीसे जो बदमज़गी हो गई थी, उसे मिटानेके लिए मुँहमें गुनगुनाने लगे:—

भगवान् ने साइकिल भी अजब चीज़ बनाई।

फिर कुछ जीमें जो आया, तो उसका हैंडल पकड़कर ज़रा चलने लगे। मगर दो ही क़दम गए होंगे कि ऐसा मालूम हुआ, जैसे साइकिल सीनेपर चढ़ा आता है। अब तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि यह सब ज़ालिम लालाजीके 'कहाँ' की तासीर है, वरना बेजान साइकिलमें यह हिम्मत कहां कि हम जैसे शेरमर्दपर धावा बोल दे। इस समय हमारे सामने यह गंभीर प्रश्न था कि क्या करना चाहिए? युद्ध-क्षेत्रमें डटे रहें या हट जाएँ? सोच-विचारके बाद यही निश्चय हुआ कि यह लोहेका घोड़ा और फिर लालाजीका 'कहाँ' इसके साथ! इसके सामने हम क्या चीज़ हैं, बड़े बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। बल्कि हमारा खयाल है, अगर अर्जुन और भीम होते, तो वह भी भाग निकलते। इसलिए हमने साइकिल छोड़ दिया, और भगौड़े सिपाही बनकर मुड़ गए। पर दूसरे क्षणमें साइकिल अपने पूरे जोरसे हमारे पाँवपर गिरा और हमारी राम-दुहाई बाज़ारके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक गूँजने लगी। उस्ताद जी लस्सी छोड़कर दौड़े आए और दयावान् लोग भी जमा हो गए। सबने मिल-मिलाकर हमारा पाँव साइकिलसे निकाला। भगवान्के एक भक्तने जैम्बकका डिब्बा भी उठाकर हमारे हाथमें दे दिया।

दूसरेने हमारी बगलोंमें हाथ डालकर हमें सँभाला और सहानुभूति से पूछा—चोट तो नहीं आई ? ज़रा दो-चार क़दम चलिए । नहीं लहू जम जाएगा तो बड़ी दिक्कत होगी ।

हम बेशर्मीके समान खड़े हो गए, और हमने अपने शरीरका सारा भार पाँवपर डालकर देखा कि पाँव जोर खाता है या नहीं । उस्तादने साइकिलको अच्छी तरह देखकर कहा—यह तो टूट गया, बनवाना पड़ेगा ।

आजका दिन भी गया ।

और यह हम पहलेसे ही जानते थे । यह लालाजीके खूनी 'कहाँ' की तासीर थी । इस तरह दूसरे दिन हम और हमारा साइकिल अपने घरसे थोड़ी दूरीपर घायल हो गए । हम लँगड़ाते हुए घर लौट आए, साइकिलको ठोंक-पीटकर ठीक करनेके लिए मिस्त्रीकी दूकानपर भेज दिया, और तीसरे दिनका इंतज़ार करने लगे ।

मगर हमारे वीर हृदयका साहस और धीरज देखिए—अब भी मैदानमें डटे रहे । कई बार गिरे, कई बार शहीद हुए, घुटने तुड़वाए, हाथपाँव छिलवाए, कपड़े फड़वाए । पर जनाब, क्या मजाल, जो जी छूट जाए ! आठ-नौ दिनमें साइकिल चलाना सीख गए । मगर अभी तक उसपर चढ़ना नहीं आता था । कोई परोपकारी जीव सहारा देकर चढ़ा देता, तो फिर लिए चले जाते थे । हमारे आनन्दकी कोई सीमा न थी । सोचते थे, मार लिया मैदान हमने ! दो-चार दिनमें पूरे उस्ताद बन जायँगे, इसके बाद पहले स्कूलके मास्टर, फिर कालिजके प्रोफ़ेसर और इसके बाद प्रिंसिपल, मोटर ट्रेनिंग कॉलेज, और तीन-चार सौ रुपया महीना । तिवारीजी देखेंगे, और ईर्ष्यासे जलेंगे, और हम मुस्कराएँगे । शहरमें इज़्ज़त भी बढ़ जाएगी ।

उस दिन उस्तादने हमें साइकिलपर चढ़ा दिया और सड़कपर छोड़ दिया कि लिए जाओ, अब तुम सीख गए ।

अब हम साइकिल चला रहे थे, और दिल ही दिलमें फूले न समाते थे कि आखिर हमने सिंहगढ़को जीत ही लिया। मगर हाल यह था कि कोई आदमी दो सौ गज्जके फ़ासिलेपर भी होता, तो हम गला फाड़-फाड़कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब ! ज़रा बाईं तरफ़ हट जाइएगा। हम नए सवार हैं, और साइकिल हमारे बसमें नहीं है। दूर फ़ासिलेपर कोई गाड़ी दिखाई देती, और हमारे प्राण सूख जाते। कभी कभी ऐसा खयाल आता कि यह गाड़ी हमें अपनी लपेट में लेनेके लिए आ रही है। उस समय हमारे मनकी जो दशा होती, उसे हमारा परमेश्वर ही जानता है। जब गाड़ी निकल जाती, तब कहीं जाकर हमारी जानमें जान आती।

सहसा सामनेसे तिवारी आते दिखाई दिए। हमने उन्हें भी दूरसे ही अल्टीमेटम दे दिया कि ओ तिवारी ! बाईं तरफ़ हो जाओ, वरना साइकिल तुम्हारे ऊपर चढ़ा देंगे। तुमसे बड़ा मूज़ी और कौन मिलेगा ?

तिवारीने अपनी छोटी छोटी आँखोंसे हमारी तरफ़ देखा और मुस्कराकर कहा—ज़रा एक बात तो सुनते जाओ।

हमने एक बार हैंडलकी तरफ़ दूसरी बार तिवारीकी तरफ़ देख कर जवाब दिया—इस समय कैसे बात सुन सकते हैं ? देखते नहीं हो, साइकिलपर सवार हैं। कहने लगे, एक बात सुनते जाओ। अरे भाई ! साइकिल चला रहे हैं, साइकिल। बात कैसे सुनें ?

तिवारी—तो क्या जो साइकिल चलाते हैं, वे किसीकी बात नहीं सुनते ? बड़ी ज़रूरी बात है। ज़रा उतर आओ। फिर चढ़ जाना।

हमने लड़खड़ाते हुए साइकिलको सँभालते हुए जवाब दिया—उतर आएँ, तो फिर चढ़ाएगा कौन ? अभी चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा। चढ़ना कल सीखेंगे।

तिवारी चिल्लाते ही रह गए, हम आगे निकल गए। इस समय

हमें उनकी बेबसीपर जो मज्जा आया है, उसे क्या बयान करें ? जी चाहता था, एक बार लौटकर उनका मुँह फिर देख आएँ ।

इतनेमें सामनेसे एक ताँगा आता नज़र आया । हमने उसे भी दूरही से डाँट दिया—बाईं तरफ़ रहना भाई ! अभी नया चलाना सीखा है । नौसिखिए हैं हम ।

ताँगा बाईं तरफ़ मुड़ गया । हम अपने रास्ते चले जा रहे थे । एकाएक पता नहीं, घोड़ा भड़क उठा, या ताँगेवालेको शरारत सूझी । जो भी हो, ताँगा हमारे सामने आ गया । हमारे हाथ-पाँव फूल गए । ज़रा-सा हैंडल घुमा देते, तो हम दूसरी तरफ़ निकल जाते । मगर बुरा समय आता है, बुद्धि पहले भ्रष्ट हो जाती है । उस समय हमें ख़याल ही न आया कि हैंडल घुमाया भी जा सकता है । उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि विधाताने हमारे साइकिलके लिए वही रास्ता नियत कर दिया है, जिसपर ताँगा आ रहा है ।

क्षण-भरमें हमारे जीवनकी सारी घटनाएँ हमारी आँखोंमें फिर गई, और दूसरे क्षणमें हम और हमारा साइकिल दोनों ताँगेके नीचे थे ।

५

जब होशमें आए, तो हम अपने घरमें थे, और हमारी देहपर कितनी ही पट्टियाँ बँधी थीं । हमें होशमें देखकर श्रीमतीजीने कहा—क्यों ? अब क्या हाल है ? मैं न कहती थी साइकिल चलाना न सीखो । उस समय तो किसीकी सुनते ही न थे । ले लिया न मज्जा ?

हमने सोचा, लाओ, सारा इलज़ाम तिवारीपर थोप दें, और आप साफ़ बच जाएँ । बोले—यह सब तिवारीकी शरारत है ।

श्रीमतीने मुस्कराकर जवाब दिया—यह तो तुम उसको चकमा दो, जो कुछ जानता न हो। उस ताँगेपर मैं ही तो बाल-बच्चोंको लेकर घूमने निकली थी, कि चलो सैर भी कर आएँगे और तुम्हें साइकिल चलाते भी देख आएँगे।

मैंने लाजवाब होकर आँखें बन्द कर लीं।

उस दिनके बाद फिर कभी हमने साइकिलको हाथ नहीं लगाया।



दो परमेश्वर

१

संध्याका समय था। एक जोगी बाजारसे गुज़र रहा था।
दूकानोंके दीपक जल चुके थे और उनके बुझ जानेवाले
प्रकाशमें लोगोंके नश्वर चेहरे इस तरह चमक रहे थे, जिस तरह
यौवनके चमनमें रूप जगमगाता है।

सहसा किसी विलास-प्रिय और अमीर आदमीकी रखैल वेश्याने
अपना सिर मकानकी खिड़कीसे बाहर निकाला, जोगीके पवित्र वस्त्र
पर पानकी पीक थूकी, और मुस्कराने लगी।

जोगीने ऊपर देखा और यह देखकर कि वह स्त्री अपनी मूर्खता
पर लज्जित होनेके बदले मुस्करा रही है, उसे आश्चर्य हुआ। उसने
जोरसे चिल्लाकर कहा—ऐ नादान ! परमेश्वरके पुत्रोंका यों अपमान
न कर। उसकी दृष्टिमें तेरा यौवन, और तेरा रूप दोनों निर्मूल हैं।
वह शराफ़तकी इयादा परवाह करता है।

उस सुन्दरीका लाल चेहरा और भी लाल हो गया। उसने क्रोध
से पीछे मुड़कर अपने यौवनके लोभी, अपने रूपके उपासककी तरफ़

देखा और कहा—तूने सुना ! एक तुच्छ भिखमंगा भरे बाज़ारमें खड़ा मेरे यौवनका तिरस्कार करता है, और मुझे गालियाँ देता है ।

विलासी अमीर जो रमणीके मर जाने, मिट जाने, बरबाद हो जानेवाले रंग-रूपकी मदिराके नशेमें दोनों लोकोंकी तरफसे अन्धा हो रहा था, लाठी लेकर नीचे उतरा, और ईश्वर-भक्त जोगी पर पिल पड़ा । और उसने अपने हाथ, पाँव, और लाठी की पूरी शक्ति से उसे उसकी 'गुस्ताखी' के लिए सज़ा दी ।

जोगीका चीत्कार आकाशमें गूँज रहा था; मगर पृथ्वीवालोंके कान इस तरफसे बिलकुल बन्द थे । जोगीकी किसीने मदद न की ।

रातको प्रकृतिका न दिखाई देनेवाला हाथ हिला और दूसरे दिन सौन्दर्यका अन्धा अमीर अपने पापके बिस्तरेपर मरा पड़ा था ।

२

स्त्रीने हृदयकी हायका यह जीता-जागता चमत्कार देखा, तो उसका खून उसके शरीरमें ठंडा हो गया । वह नंगे सिर, नंगे पाँव, शहरके बाहर गई, और जोगीके खुरदरे पैरोंपर अपना सुन्दर सिर रखकर रोने लगी ।

जोगीने उसे देखा, और कहा—माई उठ ! मेरा परमेश्वर अपने किसी प्राणीकी ऐसी बेबसी नहीं देखना चाहता ।

मगर स्त्रीने चरण न छोड़े । वह अब अपने किएपर शर्मिदा हो रही थी, और रो रही थी, और उसके पश्चातापके आँसू जोगीके पाँव पर गिर रहे थे । उसने रुक-रुककर कहा—महाराज ! मैं अन्धी थी, मैंने भूल की, मुझसे पाप हुआ । मुझे गालियाँ दीजिए । मुझे मारिए, मेरी पीठकी खाल उधेड़ दीजिए । मगर मुझे अपने क्रोधकी आगसे बचा लीजिए ।

जोगीने उसके मरे हुए प्रेमीका सारा समाचार सुना, और फूट-फूटकर रोते हुए कहा—माई ! यह मेरा और तेरा भगड़ा नहीं था, मेरे और तेरे परमेश्वरका भगड़ा था । तेरे परमेश्वरको गुस्सा आया, उसने मुझे मारा । मेरे परमेश्वरको गुस्सा आया, उसने तेरे परमेश्वर को मारा । मेरे परमेश्वरके शस्त्र भारी थे, वह जीत गया, तेरा परमेश्वर निर्बल, और कमजोर था, वह हार गया ।

जोगी एकाएक तीसरे आदमीकी तरफ मुड़ा और अपने हाथ उसके कन्धोंपर रखकर बोला—तेरा परमेश्वर कौन है ?

वह स्त्री और पुरुष दोनों इस सवालपर हैरान थे । वह समझ न सकते थे, कि जोगीका मतलब क्या है ?

जोगी उठा, और उनको इसी हालमें छोड़कर बोले बिना कुटिया के बाहर निकल गया ।



मजदूर

१

सारा दिन काटन-मिलमें मजदूरी करनेके बाद, जब कल्लू शाम को सात बजे घर पहुँचा, तो सुखिया बुखारमें उसी तरह बेसुध पड़ी थी, जिस तरह वह उसे सवेरे छोड़ गया था। कल्लू थका-माँदा उदास आया था, घर आकर और भी उदास हो गया। आज पन्द्रह दिनसे यही हो रहा था। सुखियाका जी कुछ भी अच्छा देखता, तो उसका मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठता, उसकी थकान उतर जाती। मगर सुखिया आज भी अपने फटे पुराने कम्बलोंमें उसी तरह बेहोश पड़ी थी। कल्लूने उसके माथेपर हाथ रखकर देखा और ठंडी आह भरकर ज़मीनपर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद उसकी विधवा बहन रधिया अपने लड़केको लेकर आई और उसे पुआलपर लिटाकर बोली—भय्या, आज भी उसी तरह पड़ी रही। परमेसर जाने, भाग्यमें क्या बदा है ?

कल्लू—तुमने औषध तो पिला दी थी ?

रधिया—औषध कहाँ है ? वह तो रात ही चुक गई थी।

कल्लू—तो बच्चनलालकी दूकानसे क्यों न ले आई ? क्या इतनी दूर जाते हुए पाँव दुखते थे ?

रधिया रुखाईसे बोली—वह देता नहीं । कहता है पहले पिछले दाम चुका दो, तब और दूँगा ।

कल्लू—तूने कुछ कहा ही न होगा, नहीं वह जरूर दे देता । जवानका बुरा है, मनका बुरा नहीं । उस दिन जाकर मैंने उससे अपने दुःख-दर्दकी दो बातें की थीं, तो रोने लगा था । कहता था—कोई चिन्ता न करो, जब औषधकी जरूरत पड़े, मेरे पास आ जाया करो; मुदा तुम्हें क्या ? तुम समझती हो, तुमने जरा खुशामद कर दी, तो तुम्हारी हेटी हो जाएगी, तुम्हारा सिर झुक जाएगा, तुम्हारी इज्जत चली जाएगी । तुममें यह औगुण बुरा ।

रधियाने आँखें नचाकर जवाब दिया—हमसे तो खुशामद नहीं होती उस आदमीकी ! तुम्हारी महरिया बीमार है, तुम जाकर उसके पैरोंपर गिरो । मुदा मुझसे यह न होगा ।

कल्लू यह जवाब सुनकर बोला—रामाके लिए गुड़ लेना हो, तो लालताप्रसादकी दूकानपर जाकर घंटों बैठी रहो; मगर सुखियाके लिए औषध लानी हो, तो तुम्हारी इज्जत चली जाती है । इतना भी खयाल नहीं कि भाई सारे सारे दिन करखन्नेमें काम करता है, लाओ उसकी कुछ मदद ही कर दूँ । भाई मजूरी करता है, बहन रानी बनी फिरती है । पर ठीक है, जो तन लागे सौ तन जाने । बीमार सुखिया है, तुम्हें क्या ? तुम ऐस करो, तुम मौज-बहार मनाओ । तुम्हारा रामा राजी रहे । तुम्हें मेरी क्या परवाह और भाभीकी क्या चिन्ता ?

कल्लूके हाथमें टीनका एक डिब्बा था, जिसमें वह सुबहको सत्तू रखकर अपने साथ ले जाता था । उसपर एक मैला कपड़ा बाँधा था । कल्लू उसे खोलने लगा ।

रधिया बोली—परारथना करो कि रामा भी बीमार हो जाए, तुम्हारी खुसी हो जाएगी ।

कल्लू डिब्बेको रखने जा रहा था, बहनकी बात सुनकर वहींसे लौट आया और बोला—देख रधिया, सामकी बेला ऐसी बात न कर, नहीं तो मेरे मुँहसे भी कुछ निकल जाएगा । तू सुखियाको गैर समझती है, मैं रामाको गैर नहीं समझता ।

रधिया—तानोंसे तो कलेजा छेद डालते हो मेरा ।

कल्लू—और तू कौन सरबतकी-सी बातें करती है, कि सुनकर जी खुस हो जाए । जब देखो, लड़नेको तय्यार रहती हो । भाभी बीमार पड़ी है, तुम्हे लड़ाई सूझती है । सारा दिन मजबूरी करके आया हूँ, इसपर भी यह गरम-मिजाजी, कि कुछ खाने-पीनेको तो पूछा नहीं, लड़नेको तय्यार हो गई । तू औरत है, या डायन है ?

रधियाने शरमिंदा होकर सिर झुका लिया और सुखियाके सिर पर हाथ फेरने लगी । थोड़ी देर बाद सकुचाती हुई बोली—मुझे उसकी दूकानपर जाते सरम लगती है । जब दीदे फाड़-फाड़कर देखता है, तो यही जी चाहता है, कि उसका खून पी जाऊँ । मुझे और जहाँ कहो, चली जाऊँ, पर उसकी दूकानपर न भेजो । मैं वहाँ न जाऊँगी ।

कल्लू रधियाका मुँह ताकने लगा ।

रधिया बोली—भाई, तू मान चाहे न मान, मगर यह बच्चनलाल भला आदमी नहीं है, इसके मनमें खोट है ।

कल्लू सन्नाटेमें आ गया । बच्चन इतना कमीना है, यह सुनकर उसे ऐसा क्रोध आया कि उसी समय जाकर बच्चनलालकी मरम्मत कर दे । उसे मालूम हो जाए—हम गरीब हैं, बेहया नहीं हैं । मगर अपनी दशा देखकर ज्वत्त कर गया । हाँडी उबलेगी भी, तो अपना आप जलाएगी ।

मगर गाँवमें बच्चनलालके सिवा और किसीसे दवा न मिल सकती थी। कल्लू हृदयपर पत्थरकी सिल रक्खे आध घण्टे बाद उसी बच्चनलालकी दूकानपर गया और उसकी खुशामदें करने लगा। आत्माभिमान क्रोधमें आकर लड़नेको तैयार हो गया था, पर जरूरत ने उसका गला घोट दिया।

२

सुखियाको दवा मिली, पर उससे कुछ लाभ न हुआ, उलटे बीमारी और बढ़ गई। पहले चुपचाप पड़ी रहती थी, आज रह-रह कर कराहने भी लगी। कल्लू और रधिया दोनों देखते थे, और ठंडी आहें भरते थे। जब सुखिया चुप हो जाती, दोनों लेट जाते; जब कराहने लगती, तो दोनों उठकर बैठ जाते। भोंपड़ेमें रोगकी उदासी छाई हुई थी, जिसे रातके सन्नाटेने और भी भयानक बना दिया था।

रातके दो ढाई बजेका समय था, सुखिया कराह-कराह कर ज़रा चुप हो गई थी। कल्लूने कुप्पीकी मध्यम धुँएँदार रोशनीमें सुखियाके पीले चेहरेकी तरफ़ निराश नेत्रोंसे देखा और रधियासे कहा—परमेसर जाने, इसे कितनी तकलीफ़ होती होगी। पन्द्रह दिन तो हो गए होंगे औसध पिलाते।

रधिया—आज सोलहवाँ दिन है भय्या !

कल्लू—बड़ा जालिम बुखार है, अभी उतरता नहीं।

रधिया—परमेसरकी किरपा हो तो कल ही उतर जाय।

कल्लू—देखो, मूँ कैसा सूख गया है।

रधिया—बुखार उतर जाए, तो फिर ताकत आते देर न लगेगी ! चार दिनमें दौड़ती फिरेगी।

कल्लू—मुझे तो अन्देसा है, कि यह न बचेगी। जरा सोच, अब तो करवट भी नहीं बदल सकती।

रधियाने प्रेमसे डाँटकर कहा—जी मत छोटा करो भय्या, औसध देते चलो। राम भला करेगा।

कल्लू—बच्चनलाल कहता है, दूध पिलाते जाओ। यह नहीं सोचता कि इन गरीबोंके इहाँ दूध कहाँसे आएगा ? सत्तू तक तो मिलता नहीं।

रधिया—किसीसे करजा ले लो भय्या।

कल्लू—अब और कौन करजा देगा हमें ? बाल-बाल तो बँधा हुआ है। जीना होगा, जी जाएगी; मरना होगा, मर जाएगी। पर अब किसीसे करजा तो न माँगा जाएगा। और माँगें भी, तो देता कौन है ? कोई एक दिन दे, दो दिन दे। हमारा तो रोज-रोजका यही हाल है। अब तो करजा न माँगूँगा रधिया !

रधिया—करजा न माँगोगे, तो काम कैसे चलेगा ? तलब कब तक मिलेगी तुम्हें ?

कल्लू—तलब तो कल मिल जाएगी; पर उससे क्या होगा ? इधर आएगी, उधर उठ जाएगी। इग्यारा रुपये मिलेंगे, बीससे ज्यादा करजा है। आते ही आते खतम हो जाएँगे। बल्कि आते बाद में हैं, खतम पहले हो जाते हैं। इस पर भी लोग कहते हैं, दूध पिलाओ। गंगाका मारग सभी बताते हैं, गंगा जानेका खरचा कोई भी नहीं देता।

रधिया—खरचा तो भगवान ही दे सकता है, दूसरा कौन दे ?

कल्लू—गरीबोंको भगवान भी नहीं देता रधिया ! वह भी अमीरोंको ही देता है। जिनकी बड़ी बड़ी तनखाहें हैं, उनको हर साल तरकी मिल जाती है, जो भूखे मरते हैं, उन्हें कोई पूछता भी नहीं। बड़ोंसे अपसर भी डरते हैं, परमेसर भी डरता है। मजूरोंसे कोई भी नहीं डरता। उन्हें हर कोई डराता है।

सुखिया जोरसे कराहने लगी। दोनों भाई-बहन उठकर उसके सिरहाने जा बैठे।

रधिया—(स्नेहके स्वरमें) क्यों भाभी ! दर्द होता है ?

सुखिया—(कराहकर) उठा ले भगवान ! अब नहीं सहा जाता !

३

प्रभातका समय था। सरदीके मारे हाथ-पाँव ऐंठे जाते थे। जी चाहता था, बिस्तरेसे बाहर न निकलें, मगर मजदूरोंकी किस्मतमें आराम कहाँ ? कल्लू मुँह अँधेरे उठ बैठा। पहले उसने एक पुराना कपड़ा जलाकर चिलम सुलगाई, और कुछ देर तम्बाकू पिया। इसके बाद मोटा कुरता पहना, और कई सालका पुराना कम्बल ओढ़ लिया। इसके बाद उसने धीरेसे ताकि कहीं सुखियाकी आँख न खुल जाए, रधियाको जगाया, और कहा—ले मैं चलता हूँ, कुछ सतुआ है, या नहीं ? ले आ, रात भी कुछ नहीं खाया। जरा गुड़ भी देना, सूखा सतुआ गलेसे नीचे नहीं उतरता।

रधियाने ज़मीनकी तरफ देखते हुए जवाब दिया—तुम गुड़को रोते हो, यहाँ सतुआ भी खतम है। कच्ची दाल है, कहो, वह ले आऊँ। भिगोकर खा लेना।

कल्लूका उदास चेहरा और भी उदास हो गया, मरी हुई आवाज़ में बोला—चलो वही बाँध दो।

रधियाने दाल एक कपड़ेमें बाँधकर भाईको देते हुए कहा—अब घरमें अनाजका एक दाना भी नहीं है। तलब लाओगे, तो सामको कुछ बन जाएगा, वहीं बाँट आए, तो आज भी चूल्हा गर्म न होगा।

कल्लूने कच्ची दालकी पोटली लौटाते हुए कहा—रधिया ! मैं

आदमी हूँ, राखस नहीं हूँ। तू और रामा भूखे रहो, और मैं खा लूँ, ऐसा बेसरम अभी नहीं हुआ। लो, रामाको खिला देना। मेरा भगवान है, और क्या? जवान आदमी हूँ, एक दो दिन न खाऊँगा, तो मर न जाऊँगा। मगर तू औरत है—रामा बच्चा है।

रधियाकी आँखें आँसुओंसे भर गईं। बोली—ऐसी बातें न कहो भय्या। मरी बहन और भी मर जाएगी। तुम रात भी भूखे रहे हो, आज भी न खाओगे, तो काम कैसे होगा? सारा दिन चक्कर आते रहेंगे भैया! हमारा गुजारा हो जाएगा, तुम यह दाल ले जाओ।

मगर कल्लूने दाल न ली और घरसे बाहर निकल गया। रास्ते में कई मजदूर मिल गए। वे आपसमें दिल्लगी करते, हँसते-खेलते गाते चले जाते थे। कल्लूकी जवान वन्द थी। न बोलता था, न हँसता था। उसके साथी चाहते थे, कि वह भी हँसे-बोले। आज तलबका दिन है, शामको सबकी मुठियाँ गर्म होंगी; लेकिन कल्लूको रुपये मिलनेकी ज़रा भी खुशी न थी। रुपये उसके हाथमें आएँगे और वहीं खड़े-खड़े बँट जाएँगे। सुबहको जिस तरह खाली हाथ जा रहा है, शामको उसी तरह खाली हाथ लौट आएगा। ऐसी तलब मिली, न मिली। दोनों बराबर।

महावीरने आकर कल्लूके कन्धेपर हाथ रख दिया और कहा—उदास क्यों हो भैया! बोलते-चालते नहीं हो, क्या बात है?

घीसूने सहानुभूतिके स्वरमें कहा—क्या बोले भाई! बेचारेकी महेरिया बीमार है। कई दिनसे बुखार चढ़ा हुआ है। अब क्या हाल है कल्लू? अभी उतरा या नहीं?

कल्लूने ठंडी साँस खींचकर कहा—अभी तो नहीं उतरा भाई। भगवानकी किरपा होगी, तो उतर जाएगा।

घीसू—इलाज किसका है? उसी बच्चनलालका या किसी औरका?

कल्लू -- इलाज क्या है, मनकी दौड़ है ! हम मजूर लोग क्या इलाज करेंगे ? इलाजके लिए रुपये चाहिएँ, वह हमारे पास हैं नहीं ।

घीसू—आज तो तलब मिलेगी !

कल्लू—तलबसे ज्यादा करजा देना है । सबके सब उसी दम आकर घेर लेंगे ?

महावीर—एक पैसा न देना किसीको । कहना—मेरी महेरिया बीमार है, अगले महीने दूँगा ।

कल्लू—लड़नेको तैयार हो जाएँगे वह लोग ।

घीसू—हो जाएँ, तुम्हारी बलासे । पहले बीमारीका इलाज, पीछे लेना-देना । अगर जोरू मर गई, तो रोते फिरोगे, पर यह समय हाथ न आएगा, रुपये तो फिर भी मिल जाएँगे ।

कल्लू—बहुत करजा है भय्या । तुम गीत गाते थे, मेरा जी रोने को चाहता था । मगर रोनेसे भी क्या होता है ?

महावीरने कहा—एक बात करो । वाकर साहबके पास एक दर-खास भेज दो, सायद उसे दया आ जाए ।

घीसू—हाँ, यह तुमने खूब सोचा । छुट्टीपर जा रहा है, जरूर कुछ न कुछ दे मरेगा । साफ साफ लिख देना, कि पन्द्रह बरस इहाँ काम करते हो गए, अब नहीं निभती । सिरपर बहुत करजा चढ़ गया है । सरकार माँ-बाप हैं, कुछ मदत करें । क्यों अब्दुल ! तुम्हारा क्या खयाल है ? बोलो । कुछ फैदा होगा या नहीं ?

अब्दुल अबतक चुपचाप चला जा रहा था । घीसूकी बात सुनकर बोला—दरखास किससे लिखवाओगे ?

कल्लूको कुछ कुछ आशा हो चली थी, बोला—कादिर बाबूसे न लिखवा लें । अँगरेजी, फारसी सब कुछ जानते हैं ।

महाबीर—बस, बस, बस, ठीक है। उन्हींसे लिखवाओ ! हमारे दफ्तरमें ऐसा जोग आदमी और कोई नहीं है।

घीसू—महेरियाकी बीमारीका जरूर जिकर कराना। अपसर लोगों पर इसका बहुत असर होता है।

अब्दुल—यह बात तो तुमने मेरे मुँहसे छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। कादिर बाबूको समझा देना, कि ऐसी दरखास लिखें कि साहबके मनमें बैठ जाए।

महाबीर—लो, अब फिकर-फाका छोड़कर एक गीत सुना दो। अभी तो आधा फासिला भी खतम नहीं हुआ।

कल्लू—भैया ! आज माफ कर दो, आज जरा भी जी नहीं चाहता।

घीसू—वाह ! जी कैसे नहीं चाहता ? अगर रोनेसे तुम्हारी महेरियाका बुखार उतरता हो, तो हम सब रोनेको तैयार हैं। मुदा इससे होता क्या है ? तुम रंज होकर आप भी बीमार हो जाओगे। चलो सुरु करो कोई सुन्दर-सा गीत। जरा जी बहले; जरा मन लगे।

कल्लूने अब्दुल और महाबीरकी तरफ दीन नेत्रोंसे देखा, मानो आँखोंकी जवानसे कहा—क्या यह बखत गीत गानेका है ? मगर अब्दुल और महाबीर दोनों घीसूके पक्षपाती निकले और कल्लूको विवश होकर गाना पड़ा। गाते-गाते उसे अपना सारा दुःख-दर्द भूल गया। ऐसा मालूम होता था, जैसे उसे कोई चिन्ता नहीं, जैसे उसे जीवनकी सारी विभूतियाँ प्राप्त हैं, जैसे वह स्वाधीन पंखीके समान प्रसन्न है।

४

दोपहरका समय था। मजदूर दो-दो, चार-चारकी टोलियाँ बना कर धूपमें बैठे अपना अपना सतुआ खा रहे थे। जिनके पास सतुआ न

था, वह कच्ची दाल और हरी मिर्च उड़ा रहे थे। कल्लूके पास कुछ भी न था, न उसे इसकी परवा थी। वह कादिर बाबूसे अरजी लिखवा रहा था। उसे आशा थी, कि वाकर साहब उसकी जरूर सुन लेंगे। जब एक बजे वह अपनी मशीनपर आया, तो उसके चेहरेपर आशा झलक रही थी। आज उसका दिल काममें न लगता था। बार-बार दरवाजेकी तरफ देखता था, कि कोई चपरासी बुलाने आ रहा है या नहीं? आखिर तीन बजे वाकर साहबने उसे बुला भेजा। कल्लूका कलेजा धड़कने लगा। आशा उसे इतनी समीप कभी दिखाई न दी थी। उसने जाते-जाते महावीरको मर्म-भरी आँखोंसे देखा और मुस्कराया, मानो कहा—लो देखो, काम बन गया।

साहबके कमरेके पास पहुँचकर, कल्लूने अपने पाँव साफ किए, काँपते हुए हाथोंसे परदा हटाया और अन्दर चला गया।

साहब बहादुर कुरसीपर बैठे, बिजलीकी रोशनीमें, कागजोंपर हस्ताक्षर कर रहे थे और उनके सिगारका धुआँ कमरेमें भरा हुआ था। कल्लूने झुककर दोनों हाथोंसे सलाम किया और चुपचाप खड़ा हो गया।

साहबने सलामका कोई जवाब न दिया और कागजोंपर हस्ताक्षर करते रहे। इतनेमें एकाउण्टेण्टने आकर एक कागज साहबके सामने रख दिया। यह वाकर साहबके छः महीनेके वेतन और सफरखर्चका हिसाब था। साहबने कागजपर निगाह डाली और कहा—६५१३) नौ हजार पाँच सौ तेरह रुपया?

एकाउण्टेण्टने कहा—जी हुजूर।

साहबने पूछा—हमारी सीट बुक हुई?

एकाउण्टेण्ट—जी हुजूर, हो गई। आज टामस कुकका तार भी आ गया है।

साहबने सिगारका कश लगाया और रसीदपर हस्ताक्षर कर दिए। बाबू चला गया। तब साहब कल्लूसे बोले—बेल कल्लू! क्या बोलने माँगटा है दुम ? बोलो।

कल्लू—हुजूर मैंने दरखास दी थी।

साहब—मुँहसे बोलो, क्या माँगटा है ?

कल्लू—हुजूर मैंने इस कम्पनीमें पन्द्रह साल चाकरी की है। आजकल बड़ी विपतामें हूँ—सरकार ! मुझपर बड़ा करजा हो गया है, कुछ मदत मिल जाए, तो जी जाऊँ। माई-बाप, आपकी जानको दुआएँ देता रहूँगा। बड़ी आफत है सरकार।

यह कहकर कल्लूने दोनों हाथोंसे फिर सलाम किया।

साहब—(प्रार्थना-पत्रको पढ़ते हुए) तुम्हारा नौकरी पन्द्रह सालका है। रुपये कहाँ खर्च कर डालता है ? ताड़ी पीटा है ? जुआ खेलटा है। बोलो क्या करटा है इतना पैसा ?

कल्लू—सरकार ! मैंने कभी जुआ नहीं खेला, कभी ताड़ी नहीं पी। आजकल मेरी जोरू बहुत बीमार है हुजूर !

साहब—ओ ! हमें अफसोस है ! डाक्टरका दवाई दो, नहीं वह मर जाएगा। देसी हकीम गधाका माफ़िक है। वह कुछ नहीं जानता।

कल्लू—डाक्टरका इलाज कहाँसे करूँ हुजूर। बड़ा गरीब हूँ। कुछ मदत मिल जाए, तो कर सकता हूँ। पन्द्रह सालसे हुजूरकी चाकरी की है ! आपका गुलाम हूँ, आपके पास आया हूँ।

साहब—हमको अफसोस है, कम्पनी कुछ नहीं करने सकटा। कम्पनीको कई लाखका लॉस हुआ है। मैंनेजर साहब कहटा है, हम कुछ नहीं कर सकटा ! जाओ, अपना काम देखो।

यह कहकर वाकर साहबने एक मोटा-सा फाइल उठाया और उसे देखने लगे। कल्लू बाहर निकल आया। इस प्रार्थना-पत्रपर जो जो आशाएँ थीं, सब पर पानी फिर गया। अब उसके सामने फिर वही निराशा और अंधकार और चिन्ता थी। क्या करेगा वह अब ?

बाहर निकला, तो, बहुतसे मजदूरोंको घबराए हुए इधर-उधर दौड़ते देखा। चारों तरफ सनसनी-सी फैली हुई थी। मालूम हुआ कि कम्पनीने डेढ़ सौ मजदूरोंको नोटिस दे दिया है। हर एकके प्राण सूखे हुए थे, कि कहीं उसे भी जवाब न मिल गया हो। सभी परमात्मासे प्रार्थना कर रहे थे कि इस सूचीमें उनका नाम न हो। ऐसा भय छाया हुआ था कि कोई आगे बढ़कर इतना भी न पूछता था, कि किस किसको जवाब मिला है। हर एकको अपनी अपनी पड़ी थी।

इतनेमें एक चपरासी कमरेमें दाखिल हुआ। सबकी आँखें उसकी तरफ उठ गईं। उसके हाथमें लिफाफोंका एक पुलिन्दा था; पर यह लिफाफे न थे, गरीबोंकी मौतके वारंट थे। यह चपरासी बड़ा हँसमुख था। आप हँसता रहता था, मजदूरोंको हँसाता रहता था। आज उसकी सूरत यमदूतसे भी भयानक थी। जिसके पास रुककर लिफाफा निकालता, वही काँप उठता। जिसके सामनेसे निकल जाता, उसकी जानमें जान आ जाती। कल्लू और महावीर दोनों साथ-साथ काम करते थे। चपरासी आकर महावीरके पास रुक गया और उसके नामका लिफाफा खोजने लगा। महावीरके हाथ-पाँव फूल गए। सिटपिटाकर बोला—अच्छा ! मेरे नामका भी लिफाफा है ?

चपरासीने हार्दिक समवेदनासे कहा—भैया ? छुरी फिर गई है। डेढ़ सौ आदमी काटकर रख दिए, डेढ़ सौ ! भगवान जाने अब ये बेचारे क्या करेंगे और कहां जाएंगे ?

महावीरने लिफाफा लिया और सिर पर हाथ रखकर वहीं गिर पड़ा। चहकता हुआ पंखी एकाएक गोलीका निशाना बन गया।

इधर कल्लूका दम घुट रहा था, कि देखें उसकी क्या गति होती है ? ऐसा भाग्यशाली नहीं है, कि कल्ले आम हो और वह बचा रहे; लेकिन शायद !

उसी समय चपरासीने उसके नामका लिफाफा भी सामने रख दिया । कल्लूपर बिजली-सी गिर पड़ी । जैसे खड़ा था, वैसे ही खड़ा रह गया । उसके होठोंपर हाय न थी, न आँखमें आँसू थे । जैसे किसीने कलेजेमें दूर तक छुरी उतार दी दो । साधारण पीड़ा हो, तो रोगी रोता-चिल्लाता है, असाधारण दर्द हो, तो बेहोश हो जाता है । उस समय चिल्लानेकी शक्ति ही नहीं रहती ।

इसके बाद तंख्वाह बँटने लगी; मगर आज इस समय वह चहल पहल और खुशी न थी । सभीके दिल बुझे हुए थे । जिनको जवाब मिल गया था, वह तो उदास थे ही, जो बच गए थे, उनके चेहरे भी उदास थे । कौन जाने कलको क्या हो जाए ?

५

कल्लूको तंख्वाह मिली ही थी, कि एक मज्दूरने उसके पास आकर कहा—क्यों भैया ? वह रुपया देते हो, जो तुमने पिछले महीने लिया था ? हमें तो जवाब मिल गया !

कल्लूने चुपचाप एक रुपया उसके हवाले किया । किसी दूसरे अवसरपर वह टाल देता; मगर अब कैसे इनकार करे ?

बाक़ी रुपये उसने धोतीकी अंटीमें रख लिए और विमन-भावसे मशीनपर काम करने लगा । सहसा एक दूसरा मज्दूर सामने आकर खड़ा हो गया । कल्लूने उसे देखते ही अंटीसे सवा रुपया निकाल कर चुपचाप उसको दे दिया और बाक़ी रुपये मशीनपर ही रख

दिए कि शायद कोई और आ जाए। बीमार निराश होकर दवा छोड़ देता है। कल्लूने निराश होकर सोचना छोड़ दिया।

छुट्टीकी घण्टी बजी। कल्लूने रुपये फिर अण्टीमें रख लिए और सिर नीचा किए मंद-गतिसे बाहर निकला। और दिन छुट्टी होती थी, तो मजदूर उछलते-कूदते हँसते-मुस्कराते बाहर निकलते थे। आज सबके सब मौन थे, जैसे किसी शवकी दाह-क्रिया करके लौटे हों। उसी तरह धीरे-धीरे चलते थे, उसी तरह एक दूसरेकी ओर दीन भावसे देखते थे, उसी तरह एक दूसरेको सब्र करनेकी सलाह देते थे।

एकाएक किसीने कल्लूके कन्धेपर हाथ रख दिया। कल्लूने सिर उठाकर देखा, तो उसकी जान ही निकल गई। सामने मौतसे भी भयानक पठान हाथमें लाठी लिए खड़ा था।

पठानने कल्लूको गरदनसे पकड़कर कहा—बिरादर ! पाँच रुपये लाओ। हम आज कुछ न सुनेगा।

कल्लू हतबुद्धि-सा खड़ा रहा। सोचा—दे ही दूँ। जब नौकरी ही न रही, तो पाँच रुपये कै दिन चलेंगे ? क्यों गाली-मार खाऊँ ? जो होगा देखा जाएगा। फिर खयाल आया—सुखियाके लिए दवा भी तो लानी है ! बहन और भानजेके लिए भोजन भी तो लाना है ! खाली हाथ पहुँचूँ गा, तो बेचारे निराश हो जाएँगे और फिर वहाँ भी तो बनियेको, हकीमको, साहूकारको देना है। सब राह देख रहे होंगे। एक एक रुपया भी दे दूँ, तो उनको तसल्ली हो जाए। किसी तरह दस-पाँच दिन तो कट जाएँगे। नहीं तो...

कल्लूकी आँखोंके आगे अँधेरा आ गया। पठानने जवाब न पाकर कल्लूको जोरसे भँभोड़ा और कहा—खर बच्चा ! पाँच रुपये लाओ, पाँच रुपये ! पिछले महीना हम इदर खड़ा रहा, तुम धोखा देकर दूसरा दरवाजासे निकल गया। अब बोल ! देता है कि नहीं ?

कल्लू क्या बोलता ? उसके मुँहमें ज़बान ही न थी । उसने हृदय-विदारक नेत्रोंसे पठानकी तरफ़ देखा, लेकिन पठान बेदिलका आदमी था । उसे ज़रा भी दया न आई । उसने उसे एक बार फिर भंभोड़ा और कहा—खर बच्चा ! सुनता नहीं ? हम अपना सूदका रुपया माँगता है । अभी निकाल, नहीं खुदाका कसम, तुझे क़तल कर देगा और खुद फाँसी चढ़ जाएगा ।

कई आदमी जमा हो हो गए । उनमेंसे एकने आगे बढ़कर कहा—ओ आगा ! क्या बात है ? तू क़तल क्यों करेगा इसे ? इसकी गरदन छोड़ दे, और मुँहसे बात कर ।

आगा—नहीं बाबू साब ! यह भाग जाएगा !

बाबू—नहीं भागेगा । मेरा ज़िम्मा है । ले अब छोड़ दे इसे ।

यह कहकर बाबू साहबने आगाके हाथसे कल्लूकी गरदन छुड़ा दी और बोले—अब कहो, क्या बात है ? तुम्हारे कितने रुपये इसपर आते हैं ?

आगा—दस रुपया बाबू साब ! दो साल हुआ, इसने लिया था । पहले सूद देता था, अब सूद भी नहीं देता । दो महीना हो गया । पिछले महीने भी इसने कुछ नहीं दिया । और अब इस महीने भी कुछ नहीं देना चाहता । हम क्या करें ? हम ग़रीब हैं ।

बाबू—तुम दस रुपयेपर हर महीने कितना सूद लेते रहे हो ?

आगा—सिर्फ़ अढ़ाई रुपया, बाबू साब ! हम बेसी नहीं लेता ।

बाबू—यह बेसी नहीं तो और क्या है ? दस रुपये देकर तुम दो सालमें साठ रुपया सूद ले चुके हो । । अब और क्या इसकी जान भी ले लोगे ? छोड़ दो इसे । अब यह और कुछ नहीं देगा ।

आगा—नहीं बाबू साब । ऐसा बेइंसाफी न करो । हम मर जाएगा ।

हमारा दो महीनेका सूद है। वह दे दे। हम अपना रकम नहीं माँगता, सूद माँगता है। हम सूद लेकर चला जाएगा।

समूहमेंसे एक आदमीने कहा—यह आगा लोग महाजनोंके भी चचा हैं। पचीस सैकड़ा सूद ! तोबा-तोबा !

दूसरा बोला—मगर इनसे लोग लेते क्यों हैं ? यह जबरदस्ती तो नहीं देते ? सौ बार माँगते हैं, तब जाकर यह देते हैं।

तीसरा—अजी यह मजूर लोग हिसाब-किताब करना क्या जानें ?

चौथा—तो फिर दें। आगा भी न छोड़ेगा। सूद तो पहले तै हो गया था, क्यों आगा ?

आगा—(शह पाकर) हाँ साब ! पहले बता दिया था। इससे पूछ लो। ओ भय्या ! कहा था या नहीं ? हमारे पास इसका दस्ता-वेज है ! उसपर इसका अँगूठा लगा है।

एक आदमीने कहा—अँगूठेसे क्या होता है ? अदालतमें मुकदमा जाए, तो साफ डिसमिस हो जाए। अदालत कभी इतना सूद नहीं दिला सकती। यह सूद नहीं है। खुदाका क्रहर है।

आगा—(भल्लाकर) खुदाका क्रहर किस लिए है ? हम किसीके घर जाकर नहीं देता। सौ बार आकर कोई माँगता है, तब देता है। जिसे गरज होता है, वह आप दौड़ा आता है।

बाबू—लेकिन आगा ! यह सूद बहुत ज्यादा है ! तुमने इसे दस दिए और साठ ले लिए। और क्या माँगते हो ? छोड़ दो गरीबको।

आगा—(आँखें निकालकर) क्यों छोड़े ? नहीं छोड़ेगा। अपना रुपया लेगा। बड़ा रहम है, तो अपने पाससे दे दो। यह गरीब है, तो हम भी गरीब है। हम अमीर नहीं है।

बाबू—(कल्लूसे) क्यों भय्या ! तुम्हारे पास हैं पाँच रुपये ? दे दो इस वक्त । कल मेरे पास आना । मैं चन्दा करा दूँगा ।

कल्लूने चुपचाप पाँच रुपये निकालकर दे दिए । आगा खुश होकर बोला—अब यह अच्छा आदमी है । हम अपना रकम कभी न माँगेगा । सूद देता चले । फिर हम खुश, हमारा खुदा खुश ।

कल्लूको ऐसा मालूम हुआ, मानो उसने रुपये नहीं दिए, अपने प्राण निकालकर दे दिए हैं । उसकी जेबमें अब सिर्फ़ तीन रुपये और कुछ आने बच रहे थे । वह सोचने लगा—घरमें जाकर क्या दूँगा ? रधिया जब अपनी भूखी आँखोंसे मेरी ओर देखेगी, तो क्या कहूँगा ? उसकी चाल धीमी पड़ गई । उसके साथी मज्दूर आगे निकल गए । वह सबसे पीछे रह गया; लेकिन उसे इसकी चिन्ता न थी । वह एक खंडहरके पास एक पेड़के नीचे बैठ गया और अँधेरे संसारके अँधेरे विचारोंमें निमग्न हो गया । आज घरसे चला, तो उसके पास कुछ न था; पर आशा तो थी । इस समय तो वह भी न थी । वह उस अँधेरे एकान्तमें फूट-फूटकर रोने लगा, जो निराश आदमियोंका आखिरी सहारा है ।

रात हो गई । ठंडी हवा हड्डियोंमें चुभी जाती थी । आकाशपर काले बादल मँडरा रहे थे, पर कल्लूको इसकी चिन्ता न थी । उसे केवल एक चिन्ता थी—अब क्या होगा ? घर जाए या न जाए ? और अगर जाए तो किस मुँहसे जाए ? तलब उड़ गई, नौकरी छूट गई । पास कुछ भी नहीं, सिरपर कर्ज़ । कोढ़में खुजली और भी बुरी ।

सहसा एक परछाई—सी उसके सामने आकर खड़ी हो गई । यह घीसू था । उसने कल्लूको इस वृत्तके नीचे बैठा देखा था । जब इतनी रात हो गई, और वह घर न पहुँचा, तो उसे खोजने निकला ।

कल्लूने पूछा—कौन है ?

धीसू—अरे भाई ! तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो ? चलो घर चलो । नौकरी छूट गई है, तो क्या हुआ, हमारा परमेश्वर तो नहीं मर गया । जो पसु-पंछियोंको देता है, वह हमें भी देगा । चिन्ता बे फजूल है । चलो । भगवान् एक दरवाजा बन्द करता है, सौ दरवाजे खोल देता है । किसी न किसी दरवाजेमें घुस जाएँगे ।

कल्लू चुपचाप उसके पीछे हो लिया । कुछ दूर जाने के बाद बोला—सुखियाका क्या हाल है ? बुखार उतरा या नहीं उतरा ?

धीसू कुछ देर असमंजसमें पड़ा रहा, फिर बोला—वह तो चार बजे मर गई । लास रखी है । सब लोग तुम्हारी बाट जोह रहे हैं ।

कल्लूने कोई जवाब न दिया, अँधेरे और सरदीमें जल्दी जल्दी चलने लगा । इस समय उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके सिरसे बोझ उतर गया है, जैसे उसकी देह हल्की हो गई है ।

अब उसे नौकरी छूट जानेका ज़रा भी दुख न था ।



कीर्तिका मार्ग

१

धन और कीर्तिमें चोली-दामनका साथ है। लाहौरके दीवान अमृतलालकी कीर्तिका मूल-कारण उनका धन था। उनमें और कोई सदगुण न था। उर्दू-हिन्दी दोनों अच्छी तरह न पढ़ सकते थे। पढ़ते तो ऐसा मालूम होता, जैसे कोई छकड़ा दलदलमें फँसकर बाहर निकलनेकी चेष्टा कर रहा हो। ज़रा कोई कठिन शब्द आया, और महात्माजीपर फ़ालिज गिरा। कई मिनट रुके रहते, मगर पहिया दलदलसे बाहर न निकलता। बात-चीत करनेका भी शऊर न था। शौक्तीन इतने थे, कि बाज़ारसे दो दो आनेकी तसवीरें मोल ले आते, और फिर उन्हें आटेसे दीवारोंपर चिपका चिपकाकर भूमते थे कि दीवारोंकी शोभाका कैसी सफ़ाईसे गला घोंट दिया है! सुजनता ऐसी थी, कि कोई मिलने आता तो सीधे मुँह बात भी न करते थे। और नौकरों-चाकरोंकी तो अपने श्रीहाथों से मरम्मत करनेमें भी संकोच न था। कोई काम न करते थे। न इसकी कोई ज़रूरत थी। उनके पिताने धोखे-धड़ीसे लाखों रुपये पैदा किए थे। चार हज़ारके लगभग केवल ब्याज और किरायेमें आ जाते थे। घर बैठे चैनकी बाँसुरी बजाते थे। पिताने कमाया

था, पुत्र खाता था। मगर उनका नाम दूर दूर तक मशहूर था। अखबार लिखते, दीवान साहब ऐसे हँसमुख मिलनसार और सभ्य आदमी हैं कि मिलकर हृदय खिल उठता है। यों देखनेमें बड़े सीधे-सादे नज़र आते हैं, मगर बोलते हैं, तो बड़े बड़े पण्डितोंका मुँह बन्द कर देते हैं। इतना ही नहीं, उनकी दान-वीरताकी कल्पित कहानियाँ इस सज-धजसे प्रकाशित करते, कि दीवान साहब खुद भी उनकी कल्पना-शक्तिके क्रायल हो जाते, और देरतक हँसते रहते। यह यशोगान—यह कीर्ति-वृत्तांत आकारण न था। दीवान साहब हर सभा-सोसाइटीको आर्थिक सहायता दिया करते थे। और उनका दान मामूली दान न होता था। जब देते थे, दिल खोलकर देते थे। पैसे पैसेको दाँतोंसे पकड़नेवाले कंजूसमें चन्दा देते समय इतनी उदारता कहाँसे आ जाती थी? इसे मानव-चरित्रका बड़ेसे बड़ा पण्डित भी न समझ सकता था। यार-दोस्तोंमें बैठते तो कहते—देखो, मैंने सारी उमरमें एक ही बात सीखी है। और वह दान है। यह सौ गुणोंका एक गुण है। तुम जो जी चाहे करो, जो खेल पसन्द हो खेलो, बदमाशियाँ करो, जुल्म कमाओ, जुआ खेलो, शराब पियो। पर दान दे दो, तो समाज चूँ तक न करेगा। दान इस नागका वशीकरण मन्त्र है। दान इस समाजकी जीभ पकड़नेका एकमात्र साधन है। दान सब पापोंको ढक देनेवाला सुनहरी परदा है।

२

दोपहरका समय था। दीवान साहब अपनी कोठीके हातेमें आराम कुरसीपर बैठे ऊँच रहे थे। इतनेमें एक नव-युवक उनके सामने आकर खड़ा हो गया। दीवान साहबने उसको देखा, तो चौंक पड़े। इसके बाद उन्होंने पीठ कुरसीके साथ लगा ली और पाँव सामने रखे स्टूलपर फैला दिए। बोले—अरे कौन? क्या तू पन्नालाल तो नहीं है?

नवयुवकने श्रद्धा-भावसे दीवान साहबके पैर छूकर कहा—जी हाँ, आपने ख़ूब पहचाना ।

दीवान०—ऐमनाबादसे कब आए तुम ?

फन्ना०—अभी गाड़ीसे उतरा हूँ । सीधा इधर ही आ रहा हूँ ।

दीवान०—मजेमें तो हो ना ?

फन्ना०—जी हाँ, सब आपकी मेहरबानी है ।

दीवान०—अच्छा, अभी खाना तो न खाया होगा ?

फन्ना०—जी नहीं ।

दीवान०—मैं तो कभीका खा चुका । जाओ, अन्दर जाकर नौकर से कहो, तुम्हारे लिए तैयार कर दे । दाल रखी है, कोई भाजी बनवा लो ।

फन्नालालके दिलमें बड़ी बड़ी आशाएँ थीं, सब पर पानी फिरता हुआ मालूम हुआ । सोचता था, दीवान साहब अमीर आदमी हैं । मैं उनका भतीजा हूँ । पहली बार उनके घर जा रहा हूँ, सिर आँखों पर बिठाएँगे । मगर उनकी खातिर-तवाज्जोका पहला ही प्रकरण कितना निराशा-जनक और अपमान-सूचक था । फन्नालालका जी खट्टा हो गया । सोचने लगा, जिस ग्रन्थका पहला परिच्छेद ऐसा निस्सार है, उसका बाक़ी भाग कितना रूखा होगा । खयाल आया, यहींसे लौट जाए । कैसा असम्य है ! पाँव फैलाए बैठा है, और बातें करता है । इतना भी न हुआ कि उठकर कुर्सी ही पेश कर दे । चार पैसे क्या हाथ आए, अदब-आदाबसे भी पाक हो गए । फन्नालालकी आँखें ज़मीनकी तरफ़ लगी थीं, मगर दीवान साहबको इसकी ज़रा भी परवा न थी । थोड़ी देर बाद बोले—घरमें तो सब तरहसे कुशल है न ?

फन्ना —जी हाँ ! सब खुश हैं ।

दीवान—भाभीका क्या हाल है ?

पन्ना—वे भी मज्जेमें हैं, और आपको दुआएँ देती हैं ।

दीवान—मिले हुए कई साल बीत गए । कभी आती ही नहीं । खैर उनकी इच्छा । कभी मिलूँगा, तो पूछूँगा । तुमने एंट्रेंसकी परीक्षा कब पास की ?

पन्ना—पिछले साल ।

दीवान साहबने हैरानीसे पूछा—कहीं नौकर हो क्या ? सारी तंख्वाह खर्च तो नहीं कर देते ? कुछ न कुछ बचाकर रक्खा करो, नहीं आखिरी उमरमें तकलीफ होगी ।

पन्नालालने ठंडी साँस भरकर जवाब दिया—अभी तो कहीं नौकर नहीं हुआ । जबसे इस्तहान पास किया है, धक्के खा रहा हूँ ।

दीवान०—अरे ! यह क्या ? तुमने मुझे क्यों नहीं लिखा ? लिखते तो कबके नौकर हो चुके होते । तुम लाख परे भागो, पर नाखूनोसे माँस कब जुदा हुआ है ! आखिर मेरे चचेरे भाईके बेटे ही हो । तुम्हारा जितना खयाल मुझे है, किसी दूसरेको न होगा । कोई न समझे, तो और बात है, पर समझनेवाले तो बेटे और भतीजेको बराबर जानते हैं ।

पन्नालालको आश्चर्य हुआ, जैसे पत्थरोंसे जलकी धारा बहते देख ली हो । विचार आया, लोकाचार नहीं तो क्या हुआ ? मगर आदमी खरा है । और दिल तो सहानुभूतिका सोता है । मैंने इन्हें समझनेमें भूल की थी । यह मेरे लिए जरूर कुछ न कुछ करेगा ।

पन्नालालने शरमसे सिर झुकाकर कहा—क्या कहूँ, अपनी मूर्खतापर पछता रहा हूँ । अब तो आपका ही भरोसा है । चाहे मारें, चाहे जिला दें । मुझे कोई दूसरा रास्ता दिखाई नहीं देता ।

यह कहते कहते पन्नालाल अन्दर चला गया । दीवान साहब फिर ऊँघने लगे । पर वे सोते न थे, जागते थे और दिलमें सोचते

थे, पन्नालाल ऐसे ही नहीं आया। कुछ माँगने आया होगा। मैंने इसी डरसे कभी चिट्ठी नहीं लिखी। कभी मिलने नहीं गया। आदमी को अपने गरीब सम्बन्धियोंसे परे ही रहना चाहिए। कुछ न कुछ माँग बैठते हैं। उस समय बड़ा संकोच होता है। दें तो मुश्किल, न दें, तो मुश्किल। दें तो उनकी आदत बिगड़ती है। न दें तो अपनी बदनामी होती है। इसलिए मुँह नहीं लगाते। मगर इतनी सावधानी करनेपर भी दनदनाते हुए आ जाते हैं। इन्हें कुछ भी शरम नहीं आती। समझते हैं, अमीर आदमी हैं, कुछ न कुछ दे ही देंगे। उन्हें जो मिल जाए, वही बहुत।

रातको स्त्रीसे बोले—कुछ मालूम हुआ, पन्नालाल कैसे आया है ?

स्त्री—तुम्हारे दर्शन करने आया होगा।

दीवान साहब—दर्शन करने तो क्या आया है, मालूम होता है, मुझसे कुछ माँगने आया है।

स्त्री—चरणामृत दे देना।

दीवान साहब—बड़ी दिक्कतमें फँसा हूँ।

स्त्री—तुम्हारा प्यारा भतीजा है, देखकर तबीयत तो हरी हो ही गई होगी तुम्हारी ?

दीवान साहब—तुम तो ताने मारती हो !

स्त्री—तो और क्या करूँ, बैठे बैठे मुफ्तकी मुसीबत सिरपर सवार हो गई है।

दीवान साहब—कुछ माँगेगा, तो क्या कहूँगा ? हमें जवाब देने में शरम आती है। इन्हें माँगनेमें संकोच नहीं होता।

स्त्री—लाज-शर्म तो इन लोगोंने घोल कर पी ली है। मैं इसे एक पैसा न देने दूँगी। अमीर हैं तो अपने घर, गरीब हैं तो अपने घर। किसीसे माँगने तो नहीं जाते।

दीवान साहब—और मैं कौन-सी थैलियाँ लेकर बैठा हूँ, कि आएँ तो ले जाएँ। साफ़ टाल दूँगा। कह दूँगा, आजकल हाथ तंग है, भगड़ा ख़त्म। छीनकर तो ले ही नहीं जाएंगे।

स्त्री—मीठी मीठी बातें कर देना। इसमें अपना क्या बिगड़ता है?

दीवान साहब—देखो तो सही, कैसे टालता हूँ। मेरा नाम भी अमृतलाल है। मैंने बड़े बड़ोंके छक्के छुड़ाए हैं, यह छोकरा किस खेतकी मूली है? दो बातोंमें चित हो जाएगा।

स्त्री—इस तरह टालो, कि फिर दूसरी बार हिम्मत न करे।

दीवान साहब—तुम देखती जाओ, कैसे टालता हूँ?

३

पन्द्रह दिन बीत गए। पन्नालाल घर चलनेको तैयार हुआ। इस समय उसके दिलमें सैकड़ों विचार उठ रहे थे। रह रह कर सोचता था, ख़ाह मख़ाह आकर इज्जत गँवाई। उसे दीवान साहबसे बहुत कुछ आशा थी। वह समझता था—अमीर हैं, दिन-रात दान करते रहते हैं। मैं उनका भतीजा हूँ, क्या मेरी मदद न करेंगे? जो ग़ैरोंको देता है, वह अपनेको क्यों न देगा? मानव-चरित्रका यह एक ऐसा रोमाञ्चकारी दृश्य था, जो उसने इससे पहले कभी न देखा था। दीवान साहबने उसे साफ़ जवाब दे दिया। उसने रोकर कहा—हम मर रहे हैं। कई कई दिन भूखे रहना पड़ता है। आप पर परमात्माकी कृपा है। ज़रा-सी भी कृपा-दृष्टि हो जाए, तो हमारी नैया पार लग जाए। ये बातें न थीं, खूनके आँसू थे। मगर दीवान

साहब चिकने घड़े थे, उनपर ज़रा भी असर न हुआ। ठण्डी साँस भरकर बोले—बरस्रुदार, तुम्हारी सहायता करना मेरा धर्म है। पर क्या करूँ ? इस साल बहुतसे मकान खाली पड़े रहे। आधा किराया भी नहीं आया। इस समय हाथ बड़ा तङ्ग है। अब तुमसे क्या कहूँ ? लोग सभझते हैं, यहाँ हजारों आते हैं, पर किसीको क्या पता, यह सब भरम ही भरम है। शायद तुम विश्वास न करो, पर हमें कभी कभी खरचा पूरा करना भी मुशकिल हो जाता है। हां भरम है, वह चला जाता है।

पन्नालालका कलेजा धड़कने लगा। वह गङ्गाके किनारे आकर प्यासा वापस जा रहा था। वह राजाके महलसे खाली हाथ लौट रहा था। यह देखकर उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया। नम्रतासे बोला—अगर आप थोड़ी-सी भी सहायता कर दें तो बड़ी बात है। हम आजकल पैसे-पैसेको मोहताज हैं।

दीवान साहबने जवाब दिया—इस समय आर्थिक सहायता तो मुशकिल है। हाँ, तुम्हारी नौकरीका प्रबन्ध मैं जल्दी कर दूँगा।

पन्ना०—आज-कल नौकरीका भी बड़ा बुरा हाल है। एक जगह खाली होती है, सौ उम्मीदवार पहुँच जाते हैं।

दीवान—यही तो खराबी है।

पन्ना०—आप कोशिश करेंगे, तो मिल जाएगी।

दीवान—अरे ! तो क्या अब तुम्हारे लिए कोशिश भी न करूँगा ? तुम्हारे लिए तो मैं अपनी जान भी लड़ा दूँगा।

पन्नालालने ज़मीनकी तरफ़ देखते हुए जवाब दिया—आपको बहुत काम रहते हैं, इसलिए प्रार्थना करता हूँ, कि कहीं भूल न जाइएगा। नहीं तो हम भूखों मर जाएँगे।

दीवान—मरना जीना तो अपने भाग्यकी बात है। पर मैं तुम्हें भूलूँगा नहीं। तो क्या अब चले ही जाओगे ?

पन्ना—जी हाँ, यही खयाल है। कई दिन गुज़र गए। घरके लोग घबरा रहे होंगे।

दीवान०—कुछ दिन और न रह जाओ ?

पन्ना०—अब तो आज्ञा ही दीजिए। फिर कभी आ जाऊँगा।

दीवान०—मेरा जी न चाहता था कि तुम इतनी जल्दी चले जाओ, पर खैर। अपनी चचीसे मिल आए ?

पन्ना०—जी हाँ, आज्ञा ले आया उनसे भी।

दीवान साहब कुर्सीपर टाँगें फैलाए लेटे थे। उठकर बैठ गए और बटुआ खोलकर सोचने लगे, अब यह जा रहा है, इसे क्या दें ? इतना गूढ़ विचार किसी फ़ाइनस-मेंबरने अपने प्रान्तका सालाना बजट तैयार करते समय भी न किया होगा। आखिर जी-जानपर खेलकर उन्होंने दो रुपये निकाले, और पन्नालालके हाथपर रखकर बोले—भाभीको मेरा प्रणाम कहना।

पन्नालाल चौंक पड़ा। उसने दीवान साहबकी तरफ़ अचरज-भरी आँखोंसे देखा। मानो कह रहा था, इतने धनी होकर भी तुम्हें धन इतना प्यारा क्यों है ? तब वह बाहर निकल आया। वहाँ एक छोटी-सी मेज़ पड़ी थी। पन्नालालने वे दोनों रुपये उस मेज़पर रख दिए, और आप स्टेशनको चला गया।

दीवान साहबने बाहर आकर रुपये देखे, तो उनके तन-बदनमें आग लग गई। सोचने लगे, यह छोकरा मेरा अपमान करता है। रस्ती जल गई, पर बल नहीं गया। समझता होगा, उठाकर थैलियाँ

दे देगा। इतना ख्याल नहीं कि इसके भी बच्चे-बाले हैं, हमें क्या दे ? अपने घरमें भाँग भुनती है, बाहर आहंकारसे पाँव ज़मीनपर नहीं पड़ते। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ, जो इसकी मीठी मीठी बातोंमें आ गया, और इसे नौकरी दिलानेको तैयार हो गया। बहुत अच्छा हुआ, कुत्तेकी ज़ात पहचानी गई। देखता हूँ, अब कौन इसे डिप्टी की नौकरी दिलाए देता है ?

४

इतनेमें दरवाज़ेपर हॉर्न बजा, और एक मोटर अंदर आया। इसमें लाहौरके मशहूर रईस रायबहादुर लखपतराय सवार थे। उनको देखकर दीवान साहब खड़े हो गए, और मोटरके पास आकर बोले—आज शायद आप रास्ता भूल गए हैं।

धन, धनवानोंसे भी सत्कार करा लेता है।

रायबहादुरने मोटरसे उतरकर दीवान साहबसे हाथ मिलाया और कहा—क्या कहूँ दीवान साहब, दुनियाके धन्धे नहीं छोड़ते, नहीं तो आपके यहाँ रोज़ आता, रोज़।

दीवान—छः महीनेके बाद आए हैं आप।

राय०—शायद ! मैं ऐसी बातोंका हिसाब नहीं रखता।

दीवान०—मगर मैं तो बराबर रखता हूँ।

रायबहादुरने क्रहकहा लगाकर कहा—बहुत अच्छा करते हैं। इसीपर किसी दिन ख़िताब मिल जाएगा आपको।

यह कहकर रायबहादुरने कनखियोंसे दीवान साहबकी तरफ़ देखा। दीवान साहब उदास हो गए। वह हँसी, वह प्रसन्नता, वह निश्चिन्तता, पता नहीं कहाँ उड़ गई ? रायबहादुरने सिगरेट-केससे

एक सिगरेट निकालकर दीवान साहबको पेश किया। इसके बाद अपना सिगरेट सुलगाया, और कुरसीसे पीठ लगाकर धुआँ उड़ाने लगे।

मगर दीवान साहबको सिगरेट पीनेकी सुध न थी। उन्होंने अपनी कुरसी रायबहादुरके पास सरका ली और धीरेसे कहा—तो क्यों जनाव, क्या हम खाली रह जाएँगे अबके भी ?

रायबहादुर सिगरेट पीते रहे।

दीवान०—देखिए, कितने साल गुज़र गए हैं। मामूलीसे मामूली आदमी भी रायसाहब और रायबहादुर बन गए हैं। हमें कोई पूछता ही नहीं। हम अभी तक लाला ही बने हुए हैं।

रायबहादुर फिर भी सिगरेट पीते रहे।

दीवान०—मैंने हर सभाको, हर समाजको दिल खोलकर दान दिया है। इतनी भक्ति परमेश्वरकी करता तो परमेश्वर भी मिल जाता। मगर सरकार-देवता अभीतक प्रसन्न नहीं हुआ। और भक्त सोच रहा है, अब और क्या करे, क्या न करे ? बताइए, सरकार कैसे खुश हो ?

रायबहादुर हँसने लगे।

दीवान०—आप अखबार तो देखते होंगे। हर साल हज़ारोंका दान करता रहा हूँ। कोई अखबार उठा लीजिए, आपको मेरी तारीफ़ से भरा हुआ मिलेगा। मगर सरकारकी कृपा-दृष्टिसे अभीतक वंचित हूँ। ज्यादा न सही, पर क्या मैं इस लायक भी न था कि रायसाहब या रायबहादुर ही बना दिया जाता ? आपकी सरकारसे इतनी बनती हो, और हम फिर भी मुँह देखते रह जाएँ ! यह दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है ? मगर आपको क्या ? अभागो हम हैं, आप तो नहीं।

यह कहते कहते दीवान साहबकी आँखोंमें आँसू लहराने लगे । रायबहादुरका दिल पसीज गया । धीरेसे बोले—दीवान साहब, सरकार खिताब अपने आदमियोंको देती है, दान देनेवाले आदमियों को नहीं । बेशक आपने बहुत-सा रुपया खर्च किया है, पर इससे सरकारको क्या ? मुझे ज़रा बताइए, आपने सरकारके लिए क्या किया है ? आपने सरकारको क्या दिया है ? सरकार आपको क्यों खिताब दे ?

दीवान साहबकी आँखें खुल गईं । मुसाफिर सोया हुआ था, पानीके चार छींटोंने उठाकर बिठा दिया । दीवान साहबको ऐसा मालूम हुआ, मानो वे आज तक उलटे रास्तेपर चलते रहे हैं । किधर जाना था, किधर चलते रहे ? उनका हरएक कदम उन्हें उनकी मंज़िल से दूर लिए जाता रहा । भूला हुआ मुसाफिर खूब दौड़ता है, खूब चलता है, खूब भागता है । समझता है, सफ़र पूरा होनेमें अब देर नहीं । मगर एकाएक मालूम होता है, यह तो मार्ग ही दूसरा है, मैं तो किसी दूसरे नगरको जा रहा हूँ । उस समय उसे कितना दुःख होता है ! उसका दिल टूट जाता है । वह निराश हो जाता है । वह रोने लगता है । यही दीन-दशा दीवान साहबकी थी । उन्हें किसीने उलटे रास्तेपर डाल दिया था । समझते थे, अखबारोंकी तारीफ़ उन्हें खिताब दिला देगी । इस भूठी आशामें उन्होंने हजारों रुपये दान कर दिए थे । इसमें सन्देह नहीं, वे लोगोंकी स्तुतिके भी भूखे थे । पर सरकारके दिए हुए खिताबमें कुछ और ही मज़ा है । सरकारके दिए आदरकी कुछ और ही अदा है । दीवान साहब सतर्क हो गए । रास्ता बदल लिया । अब मंज़िल दूर न थी, सामने नज़र आ रही थी ।

दूसरे सप्ताह दीवान साहबने गवर्नर महोदयको अपनी कोठीमें एक शानदार डिनर-पार्टी दी । अखबारोंमें शोर मच गया । कोई और होता, तो यही अखबार पंजे भाड़कर उसके पीछे पड़ जाते । मगर ये दीवान साहब थे, जो उनकी संस्थाओंको भी दान दिया करते

थे। हम दानों आदमीकें विरुद्ध नहीं बोल सकते। उसका दान हमारी जीभ पकड़ लेता है। लोग कहते थे, ऐसी पार्टी लाहौरमें आजतक किसीने नहीं दी। सजावट, प्रकाश, खाना, सब उच्च कोटिके थे। मेहमान फड़क उठे। गवर्नर साहब बहुत खुश हुए। चलते समय उन्होंने दीवान साहबसे कहा—आपने हमारा खातर बहुत तकलीफ किया। ये शब्द न थे, देवताका वरदान था। दीवान साहबका सारा परिश्रम, सारा खर्च सफल हो गया। हिसाब किया गया, तो मालूम हुआ कि डिनरपर तीन हजार रुपया उड़ गया है। मगर दीवान साहबको इसका खयाल न था। खयाल यह था, किसी तरह सरकारसे खिताब मिल जाए। किसी तरह सरकार निहाल हो जाए। वे उस दिनके लिए अधीर हो रहे थे।

उधर पन्नालाल ऐमनाबादमें बैठा अपने प्रारब्धको रोता था। उसने दीवान साहबको बार बार पत्र लिखे। यह पत्र न थे, उसके दुर्भाग्यकी कहानियाँ थीं। उन कहानियोंमें दिलका दर्द था, आँखोंके आँसू थे, जीवनकी जलन थी। कोई गरीब आदमी उन्हें पढ़कर तिलमिला उठता और कुछ न कुछ कर देता। पर दीवान साहब अचल रहे। वे खिताबकी धुनमें तन्मय हो रहे थे। आज किसी एक अफसर से मिलते, कल किसी दूसरेसे। उनको अब किसी और चीज़की चाह न थी, केवल खिताबका खयाल था। वह उस दिनके लिए किसी प्रेमी की तरह तड़प रहे थे, जब उनका नाम सुनहरी सूचीमें प्रकाशित हो, और उनकी मित्र-मण्डली उन्हें बधाई देने आए। वह दिन कैसा भाग्यवान् होगा? दीवान साहबने सारा साल सरकारी चन्दोंकी भेंट कर दिया। यहाँ तक कि उनके हिसाबकी किताबमें ३९ हजार रुपयेकी कमी हो गई। मगर उन्हें इस ३६ हजारकी ज़रा भी परवाह न थी। वे और भी आगे जानेको तैयार थे। इस राहमें रुपये का मुँह कौन देखता है?

सङ्कटमें समय भी नहीं गुज़रता । पन्नालालके लिए एक एक दिन एक एक साल हो गया । अब उसे दीवान साहबका नाम सुनकर ज़हरा चढ़ जाता था । घायल अंगपर हलकी-सी चोट भी बहुत दुखती है । हम उसपर बहुत जल्द भुँकला उठते हैं । पन्नालालने निश्चय कर लिया कि वह मरता मर जाएगा, पर दीवान साहबका मुँह न देखेगा । अब उसे किसी पराएसे आशा थी, किसी अपनेसे आशा न थी । उसने दीवान साहबकी आशा छोड़ दी और अपने तौरपर यत्न करने लगा कि कोई मामूली सी भी नौकरी मिल जाए तो कर ले । मगर कई महीने बीत गए, और कोई नौकरी न मिली । पन्नालाल घबरा गया । क्या करे ? क्या न करे ? दो छोटी बहनें थीं, एक विधवा माँ थी । घरमें जो चार पैसे जमा थे, बेकारीके दिनोंमें वे भी उड़ गए । अब ग़रीब कौड़ी कौड़ीको मोहताज था । कौन देगा ? इस स्वार्थी, बे-परवाह, भूठे संसारमें उनकी सहायता कौन करेगा ? दुःखकी इस अँधेरी रातमें उनकी बाँह कौन थामेगा ? पन्नालालने चारों तरफ़ देखा, पर उसे कोई सहायक, कोई सज्जन, कोई अपना दिखाई न दिया । सभी पराए थे, सभी बेरहम थे ।

एक दिन एक अख़बार देख रहा था, एकाएक उसमें एक विज्ञापन दिखाई दिया । पन्नालाल चौंक पड़ा । लाहौरके किसी रईसको एक लिखे-पढ़े चपरासीकी ज़रूरत थी, तनख़्वाह तीस रुपये महीना । पन्नालालकी आँखें चमकने लगीं । ऐसा मालूम हुआ, जैसे अँधेरेमें बिजली चमक जाए, या भूले-भटकेको रास्ता सूझ जाए, या रास्तेमें पड़ा हुआ धन मिल जाए । इसमें शक़ नहीं, वह ख़ानदानी आदमी था । उसे आत्म-सम्मान और मान-मर्यादाका बहुत ख़याल था । मगर अब वह यह छोटी नौकरी करनेको भी तैयार था । जो पंखी ऊँचे आकाशमें उड़ता है, उसीके पंख कट जाएँ, तो ज़मीनपर भी

रेंगने लगता है। पन्नालाल भागा-भागा माँके पास गया और बोला—यह नौकरी मिल जाए, तो कर लूँ ? क्या सलाह है ?

माँ ने आँखोंमें आँसू भरकर उत्तर दिया—लोग क्या कहेंगे ? यह भी कोई नौकरी है ? ज़रा सोचो तो सही बेटा !

पन्ना०—बहुत सोचा। अच्छी न मिले, तो बेकार कबतक बैठा रहूँ ?

माँ—कहीं मुँह दिखानेके लायक न रहोगे।

पन्ना०—पर रोटी तो मिल जाएगी।

माँ—ऐसी नौकरी हमारे वंशमें आजतक किसीने नहीं की।

पन्नालाल ने बेपरवाई से कहा—अब उन बातों को भूल जाओ। या आन का खयाल करो, या जान का खयाल करो।

माँ ठण्डी साँस भर कर बोली—मुझे अमृतलालसे यह आशा न थी। आदमी क्या है, राक्षस है। मरते समय यह धन छाती पर लाद कर ले जाएगा क्या ? हम भूखों मरते हैं, वह ऐश करता है। लहू सफ़ेद हो गया।

पन्ना०—मेरे सामने उसका नाम न लो। कहो, यह नौकरी कर लूँ या खयाल छोड़ कर बैठ रहूँ ?

माँ—कर लो। जब परमात्माने गरीबी दी है, तो फिर अमीरों का अहङ्कार कैसा ?

पन्नालाल लाहौर पहुँचा। प्रारब्ध अच्छी थी, जाते ही नौकरी मिल गई। पन्नालालने शान्तिकी साँस ली। यह नौकरी न थी, उसके सौभाग्यके द्वार थे। आज तक माँगता था, अब अपने बाहु-बलसे कमाने लगा। दो-चार दिन शरम रही, इसके बाद भाग गई।

जनवरीकी पहली तारीख थी। दोपहरके समय रायबहादुर लख-पतरायकी कोठीमें एक मोटर दाखिल हुआ। पन्नालालने दौड़कर दरवाजा खोला, और नम्रतासे एक तरफ खड़ा हो गया। सहसा उसकी दृष्टि मोटरमें बैठे हुए आदमीपर पड़ी। उसके पैरों तलेसे धरती खिसकने लगी। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया—ये दीवान अमृतलाल थे। पन्नालालकी आँखोंमें ज़मीन-आसमान सब घूमने लगे। उसका शरीर, उसका दिल, उसका दिमाग घृणा, क्रोध और लज्जाकी अग्निमें खौलने लगा। हम दूसरोंके सामने घृणितसे घृणित काम भी कर सकते हैं, पर अपने सम्बन्धियोंके सामने सिर झुकाते हुए भी लज्जा आती है। हम इसे सहन नहीं कर सकते। ऐसे समयमें हमारी देह में आग लग जाती है।

पर दीवान साहबने उसे न पहचाना। वे बड़े आदमी थे। आज उन्हें रायसाहबका खिताब मिला था। वे अखबार हाथमें लिए लखपतरायके पास पहुँचे और बोले—भाई! बधाई दो! मुझे खिताब मिल गया। यह देखो, अखबार। अब मैं रायसाहब हूँ।

साँझको थानेपर सूचना आई, कि रायबहादुर लखपतरायके चपरासीने आत्महत्या कर ली है। यह समाचार ऐमनाबाद पहुँचा, तो वहाँ कुहराम मच गया। पन्नालालकी माँ और बहनें पछाड़ें खाती थीं। लोग कहते थे, लड़का क्या मरा, सारा घर ही अनाथ हो गया। अब इनका कोई सहारा नहीं रहा। एक लड़केपर आशा थी, भगवान् ने वह भी छीन लिया। अब इनका क्या बनेगा? टुकड़े- टुकड़ेको लाचार हो गए।

इधर लाहौरमें राय साहब दीवान अमृतलालके यहाँ जलसा हो रहा था, और लोग उन्हें हँस हँसकर बधाई दे रहे थे। जब जलसा समाप्त हुआ, तो दीवान साहबने खिताबकी खुशीमें, पञ्जाब-हिन्दू अनाथालयको एक हजार रुपया दान दिया।

और दूसरे दिन प्रान्त के सारे अखबार उनकी स्तुतिसे भरे थे।



धर्मकी वेदीपर

१

सोलह सौ साल गुजरे, सिसलीमें रोमन कैथोलिक लोगोंका राज्य था। प्रोटेस्टेंट ईसाई होना उस ज़मानेका सबसे बड़ा अपराध था। चोरों, डाकुओं, और हत्यारोंके लिए क्षमा थी, मगर प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंके लिए क्षमा न थी। राज्य-कर्मचारियोंके अधिकार इतने थे कि जिसे चाहते, इस अपराधमें पकड़कर जुरमाना कर देते, कैद कर देते, गोली मार देते, कोई पृच्छनेवाला न था। प्रोटेस्टेंट अपनी जान छिपाते फिरते थे। उन्हें खुल्लम-खुल्ला यह कहनेका साहस न था कि हम प्रोटेस्टेंट हैं। वे छिप-छिपकर सभाएँ करते थे। दिलोंमें दम था, ज़बान में साहस न था। हाँ पकड़े जाते, तो झूठ न बोलते थे; न पाँव पीछे हटाते थे; न मौतसे डरते थे। उस समय उनके धर्म-प्रेमको देख कर लोग दंग रह जाते थे। कर्मचारी कहते, तुम केवल इतना कह दो, हम प्रोटेस्टेंट नहीं हैं, छूट जाओगे और बच जाओगे। प्राण-रक्षाकी यह सीधी-सादी और सरल विधि थी ! मगर वे सूरमा थे, प्राण दे देते थे, प्राण न देते थे। जब उनके सिर हथौड़े मार-मारकर चूर-चूर किए जाते थे, जब उनकी आधी देह भूमिमें गाड़कर, उन पर खूनी कुत्ते छोड़े जाते थे, तो दुश्मनोंकी आँखें भी सजल हो जाती थी, मगर उन धर्म-वीरोंका उत्साह भंग न होता था। न

मुँहपर मलाल आता था, न आँखमें पानी। हँसते हँसते मरते थे; मरते मरते हँसते थे। यह शरीरकी शक्ति न थी, मनकी मस्ती थी। यह दुनियाकी दिलेरी न थी, धर्मका धीरज था। आदमी काहे को थे, परवाने थे।

इस अँधेरे और अन्यायकी अमलदारी यों तो सिसलीके सारे इलाक़ेपर थी, मगर सिसलीकी राजधानी अकतानियाकी दशा तो अकथनीय थी। उसका अनुमान करना भी आसान नहीं। उस समय वहाँका गवर्नर कैतयानस था। सिसलीके आसमानने ऐसा अन्यायी, ऐसा कठोर, ऐसा विलासी गवर्नर कम देखा होगा। वह खड़े-खड़े आदमियोंकी खाल उतरवा लेता था। जीते-जागते आदमियोंको ज़मीन में दबवा देता था। लोग तड़पते थे, और वह मुस्कराता था। मानों वे जीते-जागते आदमी न थे, मरी मिट्टीकी मूर्तियाँ थीं। और प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंके लिए तो वह यमदूत था। उसने अकतानियामें आते ही एक घोषणा की, जिसमें साफ़-साफ़ कह दिया कि मैं इस शहरके प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंको चुन-चुनकर मौतके घाट उतारूँगा। मुझसे पहला गवर्नर बहुत रहमदिल था, उसके राज्यमें तुमने बड़े बड़े ऐश किए हैं। मगर अब वह ज़माना नहीं है, अब कैतयानसके शासनमें साँपों और बिच्छुओंके लिए जगह है, शेरों और भेड़ियोंके लिए जगह है, बीमारियों और बागियोंके लिए जगह है, प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंके लिए जगह नहीं। मैं अकतानियाकी पुण्य-भूमिसे इस पाप का निशान भी मिटा दूँगा। और यह केवल धमकी न थी, अकतानियाकी भविष्य-नीतिकी घोषणा थी। प्रोटेस्टेंट-प्रजा सहम गई। अब पुलिस जहाँ-तहाँ छापे मारने लगी। पहले आग कहीं-कहीं सुलगती थी, अब उसकी ज्वाला चारों ओर फैल गई। प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंकी परीक्षा का समय आ गया।

कैतयानसमें इससे भी बड़ा ऐव यह था कि वह विषयासक्त भी था। सदा सौन्दर्य और सुराको ढूँढा करता था। उसके राज्यमें किसी सुन्दरीका सतीत्व सुरक्षित न था। जिसे चाहता, महलमें पकड़ मँगवाता और इज्जत लूट लेता। उसके सामने सिर उठानेकी किसीमें हिम्मत न थी। वह गवर्नर था और उसके पास सेना थी, घोड़े थे, शस्त्र, शक्ति, शासन था। उसके सामने कौन बोलता ?

रातका समय था, अकतानियाके गली-कूचोंमें अँधेरा छाया हुआ था। मगर कैतयानसका राज-भवन चंद्रमुखी युवतियोंकी ज्योतिसे जगमगा रहा था। कैतयानस माँस और मदिराके मदमें मस्त था और सौंदर्य और सुरासे चमकते हुए कमरेमें बैठा अपने रसिक मित्रों में डींग मार रहा था—सच कहना ! क्या मैंने अपनी इस आधी रातकी सौरभ-सभामें अकतानियाकी सबसे सुन्दर कामिनियोंको जमा नहीं कर लिया ? मुझे सच बताओ। मैं झूठसे नफरत करता हूँ।

सब दोस्तोंने गर्दन झुका दी और कहा—ठीक है। मगर सैलोनियस चुप रहा। यह चुपपी न थी, कैतयानसके अभिमानका अपमान था। कैतयानसकी देह क्रोधकी आगमें जलने लगी। बोला—क्यों सैलोनियस ! तू क्यों चुप है ? क्या तुझे मेरी बातमें संदेह है ?

सैलोनियस बोला—गवर्नर ! मुझे आपके कथनमें संदेह नहीं, न मुझमें यह साहस है। मैं स्वीकार करता हूँ कि आपके सामने इस सुन्दर शहरकी सबसे सुन्दर युवतियाँ हाज़िर हैं। मगर अभी यह चुनाव अधूरा है। तारे हैं, पर चाँद नहीं है।

कैतयानस—तू बदतमीज़ है, और बेवकूफ है। तू नहीं जानता, तू क्या बक रहा है। मगर मैं तुझे माफ़ करता हूँ। तू नशेमें है।

सैलोनियस—मैं नशेमें जरूर हूँ, मगर बे-होश नहीं हूँ। मैंने जो कुछ कहा है, सोच समझकर कहा है।

कैतयानस—तो क्या अकतानियामें कोई ऐसी सुन्दरी भी है, जो चन्द्रमाकी इन बेटियोंसे खूबसूरत है, और यहाँ नहीं है ?

सैलोनियस—हाँ सरकार, है।

कैतयानस—अगर है, तो बोल, उसका नाम क्या है ?

सैलोनियस—अगथा।

कैतयानस चौंक पड़ा। उसे इसपर विश्वास न आया कि अगथा इन परियोंसे सुन्दर होगी। उसने अपने माथेपर हाथ फेरा और कहा—मगर मैंने यह नाम आजसे पहले कभी नहीं सुना। साफ़-साफ़ कह, क्या वह सचमुच ऐसी सुन्दरी है ?

सैलोनियस—बस ! कुछ न पूछिए, अकतानियाकी शोभा है।

कैतयानस—(हैरानीसे) अच्छा !

सैलोनियस—जिसने अकतानिया में उसे न देखा, उसने अकतानियाका कुछ भी न देखा।

कैतयानस—मुझे मालूम ही न था।

सैलोनियस—ये औरतें उसके सामने कोई चीज़ ही नहीं हैं। वह यहाँ आ जाए, तो यह जगह जगमगाने लगे। आंखें बुंधिया जाएं आपकी।

कैतयानस—तो उसे कल यहाँ बुलवाओ।

सैलोनियस—आप देखकर दंग रह जाँएंगे। खी नहीं, परी है। आपका हृदय खिल उठेगा। पर आसानीसे बसमें न आएगी। ऊँचे

कुलकी कन्या है, माता-पिता मर चुके हैं। अब अकेली रहती है, और चांदी-सोनेको मिट्टी समझती है। आप देखेंगे, तो मुझे इनाम देंगे। और आपको मालूम हो, मैं झूठ नहीं बोलता।

कैतयानस—इसका फ़ैसला कल होगा। देख-भालकर, जाँच-तौलकर, मुकाबिला करके। हम इस समय कुछ नहीं कहते।

सैलोनियस—मगर आप कल बहुत कुछ कहेंगे।

विषय-वासनाकी आगपर तेल पड़ गया। कैतयानस कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—मैं कल आप उसके पास पहुँचूँगा।

३

यह कहकर कैतयानसने मित्र-मण्डलीको उठनेका इशारा किया, और खुद जाकर पलंगपर लेट गया। मगर उसे नींद न आई। सारी रात अगथाकी ख्याली तसवीर उसकी आँखोंमें फिरती रही। सोचता था, कब दिन चढ़े और कब जाकर उसे देखे। आज उसका राजसी बिस्तर अंगारोंकी तरह गरम था। उसपर लोटता था और तड़पता था। बार बार उठता था और आकाशके तारोंको देखकर झुंझलाता था। यह रात मामूली रात न थी, वियोगकी रात थी, जो धीरे-धीरे गुज़रती है। अगर उसके बसकी बात होती, तो वह इस चिन्ताकी रात और रातकी चिन्ता, दोनोंको क्षण-भरमें समाप्त कर देता। मगर प्रकृति अपने नियमोंको किसीकी खातिर नहीं बदलती।

आखिर दिन निकला। कैतयानसने अपना शाही लिबास पहना, और अपने अस्तबलके सबसे सुन्दर घोड़ेपर सवार होकर राजभवन से बाहर निकला। थोड़ी देर बाद वह अगथाके शांति-भवनके सामने खड़ा दिलमें सोच रहा था, उसे कैसे देखूँ ? वह गवर्नर था। अगथा

उसकी प्रजा थी। वह उसके मकानके अन्दर जा सकता था। वह उसे बाहर बुला सकता था। यह सब कुछ उसके लिए ज़रा भी मुश्किल न था। मगर वह फिर भी सोच रहा था, क्या करे ?

सहसा दरवाज़ा खुला और एक भोली-भाली लड़की फूल चुननेकी टोकरी लिए बाहर निकली। उसके मुँहपर चाँदकी चाँदनी, कुसुमकी कोमलता, और प्रभातकी प्रतिभा थी, और उसके साथ बसन्तकी बहार थी। कैतयानसने उसे देखा, और सब कुछ समझ गया। यही अगथा थी। रूपवती ! लज्जाशील ! मनको मोह लेनेवाली ! यह स्त्री नहीं थी, देवी थी। उसके यौवनमें बदल जानेवाली, मर जानेवाली, नष्ट हो जानेवाली पार्थिव शोभा न थी, स्वर्गकी सुन्दरता थी, जो कभी नष्ट नहीं होती। यह मोहिनी मूर्ति उन पाप-पूर्ण वासनाकी बेटियोंसे कितनी ऊँची और पवित्र थी ? उनके साथ इसकी तुलना भी नहीं की जा सकती थी। कैतयानस हत्-बुद्धि-सा रह गया। उसने आगे बढ़ना चाहा, मगर वह आगे न बढ़ सका। उसने बोलना चाहा, मगर उसकी जीभ गूँगी हो गई, और उसके शब्द उसके ओठोंपर जम गए। जीतने आया था, हारकर लौट गया।

अब कैतयानसको चैन न था, हर समय हारा हारा रहता था, जैसे जीवनमें ज्योति न रही हो। न वह दिनकी दिलचस्पियाँ थीं, न वह रातकी रंगरेलियाँ। उसके मनमें आग सी लग गई।

एक दिन सैलोनियसने पूछा—यह आपको हो क्या गया ? अब वह पहली-सी बात ही नहीं रही !

कैतयानसने ठंडी आह भरकर जवाब दिया—बड़े निर्दयी हो ! आप ही आग लगाते हो, आप ही गिला करते हो, कि यह धुआँ काहेका है ? क्या तुम नहीं जानते ?

सैलोनियसको उस आधी रातकी बातका ध्यान भी न था,

हैरान होकर बोला—यह आप क्या कह रहे हैं ? मुझे तो ख्याल ही नहीं, कि मैंने क्या किया है ?

कैतयानस—अरे ! तो क्या तुम बिल्कुल भूल गए ?

सैलोनियस—अब सरकार, क्या बोलूँ ?

कैतयानस—उस रात तुमने कहा था, कि इस शहरमें एक लड़की है, जिसके बिना हमारा परिस्तान सूना है ।

सैलोनियस—(याद करनेका यत्न करते हुए) मैंने कहा था ?

कैतयानस—हाँ तुमने कहा था, तुमने !

सैलोनियस—आश्चर्य है, मुझे ज़रा भी याद नहीं । नशेमें बक दिया होगा कुछ ऊल-जलूल ।

कैतयानस—तुमने उसका नाम भी बताया था ।

सैलोनियस—खूब रही ! क्या नाम बताया था मैंने ?

कैतयानस—बूझ जाओ ! (मुस्कराकर) अगथा ।

सैलोनियस—(चौंककर) सरकार ! नशेमें था, मगर नाम ठीक बताया था । ऐसी सुन्दरी हमारे सारे सिसलीमें नहीं सरकार ! सुन्दरी क्या है, चन्द्र-लोककी परी है । आप एक बार देखें तो सही उसे ।

कैतयानस—मैं देख भी आया, तुम्हारा कहना ठीक है ।

सैलोनियस—मैंने ऐसी लड़की सारी उम्रमें नहीं देखी ।

कैतयानस—अब आँखें उसे भूलती ही नहीं हैं ।

सैलोनियस—तो मुश्किल क्या है ? आज आज्ञा कीजिए, आज आपके पास आ जाएगी । आपका कहना कैसे टाल सकेगी ? आखिर वह आपकी प्रजा है । आप उसके हाकिम हैं ।

कैतयानस—तुम मेरा मतलब नहीं समझे । (थोड़ी देर बाद) मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ ।

सैलोनियस—बड़ा शुभ विचार है। उसके तो भाग जाग उठे, बैठी राज करेगी।

कैतयानस—तुम एक काम करो। कोई समझदार स्त्री बुलाओ, जो उसे मना ले। वह मुझसे डरती है। जब तक उसका डर न निकलेगा, यह काम बनना मुश्किल है। समझ गए ?

सैलोनियस—मगर ऐसी स्त्री कौन हो सकती है ?

कैतयानस—अब यह भी हम ही बताएँ। (मुस्कराकर) अफ़रोडेसियाको बुलाओ।

सैलोनियस—(उछलकर) वाह साहब ! खूब सोचा आपने। अब परी शीशेमें उतरी समझिए। अफ़रोडेसिया सब कुछ ठीक कर लेगी। वह औरत नहीं, जादूगरनी है। उसके लिए कोई बात मुश्किल नहीं।

मगर अगथाने कह दिया, मैं ब्याह न करूँगी।

इसके बाद छः महीने तक कैतयानस वह सब कुछ करता रहा, जो एक प्रेमी और पागल कर सकता है। उसने पत्र लिखे, संदेश भेजे, प्रलोभन दिए, दीनता प्रकट की, आत्म-हत्याकी धमकी दी। मगर अगथापर किसीका भी असर न हुआ। उसने कहा—मैं ब्याह नहीं करूँगी, और इस निश्चयसे वह ज़रा भी विचलित न हुई। आखिर प्रेमने शत्रुताका रूप धारण कर लिया। कैतयानस हाकिम था ! एक लड़कीकी इतनी मजाल कि वह इस तरह उसकी बे-इज्जती कर सके ! और वह भी प्रोटेस्टेंट ईसाई लड़की ! हाँ, वह प्रोटेस्टेंट ईसाई थी और उसे नीचा दिखाना ज़रा भी मुश्किल न था। और कैतयानस जानता था, कि अगथा प्रोटेस्टेंट है, और देशका क़ानून अगथाकी ज़रा भी सहायता न करता था।

अगथा इस समय उस दीपकके समान थी, जिसके चारों तरफ़ कोई दीवार या कोई ओट न थी। ऐसा दीपक वायुके तेज़ झोंकोंसे कितनी देर बच सकता है ?

आखिर एक दिन अगथा गिरफ्तार हो गई। अकतानियाके लोग हैरान रह गए ! किसीको मालूम न था, कि अगथाका अपराध क्या है ? हज़ारों लोग कचहरीपर दूट पड़े। उनके दिलमें सहानुभूति थी, पर साहस न था। न बाँहोंमें बल था। अगथा उनके शहरकी शोभा थी। उसने कभी किसीसे बुरा मुलूक न किया था, किसीका दिल न दुखाया था। ग़रीब-अमीर सब उसके शुभचिन्तक थे, दुश्मन कोई भी न था। उसे इस संकटमें देखकर लोग लहूके आँसू रोते थे मगर कर कुछ न सकते थे।

अगथा कचहरीमें पहुँची। कैतयानसने पूछा—तू कौन है ? तेरे माँ-बाप कौन हैं ? तेरा धर्म क्या है ?

दर्शकोंके दम रुक गए। वे सोचते थे, कहीं यह लड़की प्रोटेस्टेंट ईसाई तो नहीं। अगर ऐसा हुआ, तो राज़ब हो जाएगा। कैतयानस क्रसाई है, वह कभी दया न करेगा। सब आँखें के अगथा चेहरेपर थीं, मगर वहाँ कोई चिन्ता, आत्मिक वेदनाकी कोई रेखा न थी। उसने गरदन उठाकर जवाब दिया—मेरा नाम अगथा है। मेरे माँ-बाप अकतानियाके निवासी थे। मैं प्रोटेस्टेंट ईसाई हूँ।

कैतयानसके दिलकी मुराद पूरी हो गई। समझा, अब यह मेरी मुठ्ठीमें है, बचकर जाती कहाँ है ? प्रकटमें बोला—क्या तुझे मालूम है, कि हमारे देशमें इस अपराधके लिए मौतका दंड दिया जाता है ?

अगथाने निःसंकोच-भावसे जवाब दिया—मुझे मालूम है।

कैतयानस—और तू फिर भी कहती है कि तू प्रोटेस्टेंट ईसाई है ? जानती है, इसका परिणाम क्या होगा ?

अगथा—जानती हूँ।

कैतयानस—क्या जानती है ? बता।

अगथा—मैं सब समझती हूँ, नादान नहीं हूँ । मगर क्या करूँ, धर्म छोड़ना मुश्किल है । जान दूँगी, धर्म न दूँगी ।

कैतयानस—यह निर्भयता मौतको सामने देखकर स्थिर न रहेगी ।

अगथा—इसकी भी परीक्षा हो जाएगी । अगर मैं मरनेको तैयार नहीं, तो मैं ईसाई होनेके योग्य नहीं ।

कैतयानस—ज़रा समझ-सोचकर जवाब दे, यह मामूली सवाल नहीं ! जीवन और मौतका सवाल है ।

अगथा—सब सोच चुकी । वीरोंके लिए जीवन और मौत दोनों बराबर हैं ।

कैतयानसको क्रोध चढ़ आया । अगथाके वाक्य, वाक्य न थे, लोहेके तीर थे । उनमें गवर्नरके लिए घृणा और अवहेलना थी । कैतयानसके दिलमें भाले चुभ गए । उसने क्रोधसे होंठ काटे, और सिपाहियोंसे कहा—क़ैदखानेमें ले जाओ, कल फ़ैसला करूँगा । और इसका फ़ैसला लोगोंकी आँखें खोल देगा ।

सारे शहरमें शोर मच गया । लोग कहते थे, यह न्याय नहीं, अन्धेर है । कितनी धर्मात्मा लड़की है ! उसे देखकर आँखें खुश हो जाती हैं । बोलती है, तो मुँहसे फूल झड़ते हैं । चलती है, तो ज़मीन ख़ूबसूरत हो जाती है । क्या अब इसे भी मृत्यु-दंड दिया जाएगा ?

रातको जब सब लोग सो गए और अकतानियाके गली-कूचे सुनसान हो गए, तो कैतयानस अपने राज-भवनसे निकला और बंदी-गृहको चला, जहाँ उसका जीवन, उसका जगत, उसका भावी संतोष सोता था । उसे देखकर, क़ैदखानेके पहरेदारोंने दरवाज़ा खोल दिया, और एक तरफ़ खड़े हो गए । कैतयानस अन्दर चला गया, और क़ैदखानेके दारोगासे बोला—मैं अगथासे मिलना चाहता हूँ । मुझे उसकी कोठड़ीमें ले चल ।

थोड़ी देर बाद वह उसकी कोठड़ीमें था। उस समय कोमलाङ्गी अगथा क़ैदखानेकी वज्र-भूमिपर बेसुध पड़ी सो रही थी; पर उसके चेहरेपर चिन्ता और मलिनताका कोई चिह्न न था। वस्त्र क़ैदियोंके थे, शक्त-सूरत राजकुमारियोंसे भी बढ़कर थी। रूपको बुरे कपड़े भी नहीं छिपा सकते। कैतयानसने कुछ क्षणतक लोभी आँखोंसे उसके मुँहकी तरफ़ देखा, और तब आगे बढ़कर और उसके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—अगथा, देख ! तेरे सामने कौन खड़ा है ?

५

अगथा चौंककर उठ बैठी। उसने घबराकर इधर-उधर देखा, और समझ न सकी कि वह कहाँ है ! धीरे-धीरे उसे उस दिनकी सारी घटनाएँ याद आ गईं। उसने अपने बिखरे हुए बालोंको बाँधा, अव्यवस्थित वस्त्रोंको संभाला, और खड़ी होकर बोली—तुमको क्या अधिकार है कि अकतानियाकी किसी कुँवारी कन्याके पास रातके समय आ सको ?

शब्द कठोर थे, पर कैतयानसको कठोर मालूम न हुए। अगथा के रूपने उसके शब्दोंकी सख्ती छीन ली थी। धीरेसे बोला—मैं तुम्हारे रूपका पुजारी हूँ और पुजारी अपनी देवीके मन्दिरमें जब चाहे, आ सकता है। उसे कोई नहीं रोक सकता।

अगथा समझ गई। उसका मुँह पीला पड़ गया। उसकी आँखें निस्तेज हो गईं। वह कोई जवाब न दे सकी।

कैतयानसने फिर कहा—अगथा ! मैंने तुमसे कितनी बार विनती की, मुझसे ब्याह कर लो; मगर तुमने हर बार मेरी विनती ठुकरा दी। मैं अकतानियाका गवर्नर हूँ। सिसलीका बादशाह मुझपर मेहरबान है। मेरे पास धन है। मैं बीमार नहीं हूँ, मैं बदसूरत नहीं हूँ, मैं बूढ़ा नहीं हूँ। फिर तुम क्यों नहीं मान जातीं ? अगथा ! मैं झूठ

नहीं कहता। मैं अपने आपको बहुत कुछ समझता था, मगर जिस दिनसे तुम्हें देखा है, उस दिनसे मेरी धारणा बदल गई है। मैं समझता था, मैं गवर्नर हूँ, मेरे हाथमें शक्ति है; मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। मगर तुम्हारे सामने आता हूँ, तो मेरी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है। अब मुझपर दया करो, और मुझसे ब्याह कर लो। और मैं आकाशके अमर तारोंकी सौगंध खाकर कहता हूँ, कि मुझसे कोई ऐसा काम न होगा, जिससे तुम्हारा मन दुखनेकी संभावना हो—मैं तुम्हारी पूजा करूँगा, तुम्हारी हर एक आज्ञाका पालन करूँगा। तुम्हें अपने मन-मन्दिरकी देवी समझूँगा। आदमी इससे ज्यादा और क्या कर सकता है ?

अगथाने उसकी इस बातको सुना और उत्तर दिया—मैं इसका उत्तर बहुत देर पहले दे चुकी हूँ और आज भी जबकि मेरी स्थिति बदल गई है, और मेरी आज्ञादीपर तुम्हारे हाथों वज्राघात हो चुका है, मेरा उत्तर वही है। तुम्हें जो कुछ कहना था, तुम कह चुके, अब मेरा जवाब सुन लो। मुझे मौत मंजूर है, पर तुम्हारे साथ ब्याह मंजूर नहीं। तुम जो चाहो, कर लो और तुम देखोगे, मैं किसी भी हालतमें तुम्हारे खूनी हाथोंको चूमनेके लिए तैयार नहीं। रातका समय, ईश्वरने आराम और विश्रामके लिए बनाया है। जाओ, आराम करो, और आराम करने दो। राज्यके अपराधीसे इस समय तुम्हारा कोई काम नहीं। कचहरी, दिनके समय होती है।

कैतयानसका सिर चकराने लगा। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह न जानता था, क्या करे ? वह आत्माभिमानी था। वह हाकिम था। उसने शासन किया था। वह आज्ञा देनेके लिए पैदा हुआ था। उसकी आज्ञाओंका पालन होता था—और आज उसने अपना सिर एक मामूली लड़कीके पाँवपर झुकाया और उसने उसे घृणासे ठोकर मारकर परे हटा दिया। यह ऐसा अनादर था, कि वह इसे सहन न कर सका। वह क्रोधसे पागल

हो गया। उसने अपना पाँव जोरसे ज़मीनपर मारा और कड़ककर कहा—तू अपनी मौत बुला रही है। तेरी सुन्दरताको मेरी आँखें देखती हैं, जल्लादकी तलवार न देखेगी।

यह कहकर कैतयानस बाहर निकल गया और अपने पीछे उस काल-कोठड़ीका दरवाज़ा बंद कर गया। यह एक भूठे आदमीका भूठा प्रेम था, जो आगकी एक आँच भी नहीं सह सकता और क्रोध का विकराल रूप धारण कर लेता है। विशुद्ध प्रेम कभी क्रोध नहीं करता, न बदला लेना चाहता है। वह आप कष्ट उठाता है; मगर अपनी प्रेमिकाकी आँखमें आँसू नहीं देख सकता।

कैतयानसने दूसरे दिन हुक्म दिया—अगथाको यंत्रणा दी जाए।

६

लोगोंके होश उड़ गए। सारे शहरमें कोलाहल मच गया। अब तक पुरुष मरते थे, अब स्त्रियोंकी वारी आ गई। कचहरीके बाहर खुले मैदानमें अकतानियाके निवासी इकट्ठे थे। वह देखना चाहते थे, कि अब क्या होता है? चारों तरफ पुलिसके आदमी थे, कि कहीं बलवा न हो जाए। बीचमें अगथा खड़ी थी और लोगोंसे कह रही थी—मैं भाग्यवान् हूँ, जो मुझे यह मौत नसीब हो रही है! हर एकको यह सुनहरा अवसर नहीं मिलता। यह मामूली मौत नहीं है, शहीदोंकी मौत है, जो जीवन और जीवनके सुखोंसे भी बढ़कर है। इससे जातियाँ उन्नत होती हैं, धर्म अमर-पथपर चलते हैं, देशों में जीवन पैदा होता है। आदमी अपनी मौत हर रोज़ मरते हैं, शहीदोंकी मौत कोई कोई भाग्यवान् ही मरता है। क्या तुम जानते हो, मैंने क्या पाप किया है?

लोगोंने एक स्वरसे चिल्लाकर कहा—तू निर्दोष है।

अगथा—तो इससे बढ़कर खुशी और क्या हो सकती है, कि मैं

अपने धर्मकी वेदीपर निर्दोष कुरबान हो रही हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरी मौत मेरे धर्मके भाइयोंमें, कभी न मरनेवाला जीवन छिड़क देगी। यह मौत जीवनसे भी बढ़कर है। मुझे इसपर गर्व है। मेरे लिए अफसोस न करो, मुझे बधाई दो। मुझे आसमानकी बादशाही मिलेगी।

एकाएक जन-समूहमें हलचल मच गई। कैतयानस आ रहा था। लोगोंके दिल दहल गए। कैतयानसने अगथाके निकट आकर कहा—अगर तू अब भी अपने धर्मका त्याग कर दे और हमारे रोमन गिरजे में चलकर प्रायश्चित कर ले, तो मैं तुझे छोड़ दूँगा।

लोग डर गए, मगर अगथा उसी तरह खड़ी थी। उसने ऊँची आवाजसे कहा—मैं अकतानियाके इस महान् जन-समूहमें ऊँची आवाजसे कहती हूँ, कि मैं प्रोटेस्टेंट हूँ। चाहे तुम मेरे एक हाथ पर चाँद और दूसरेपर सूरज रख दो, मैं तब भी अपना धर्म बदलने को तैयार नहीं। मैं अपनी बात कह चुकी, अब तुम जो चाहो, कर लो।

जो प्रोटेस्टेंट थे, वे खुश हुए। जो प्रोटेस्टेंट नहीं थे, वे हैरान हुए। मगर कैतयानस क्रोधसे पागल हो गया। उसने अपने सिरको जोरसे हिलाया और हुक्म दिया—शिकंजा लाया जाए।

शिकंजा लाया गया। यह लोहेका नहीं, मौतका शिकंजा था। उसे देखकर दर्शकोंके दिल धड़कने लगे, मगर अगथा बेपरवा खड़ी उस यन्त्रकी ओर देखती रही। फिर वह हँसती हुई आगे बढ़ी और अपने कोमल हाथ-पाँव मौतके मुँहमें डाल दिए। कैसा साहस था! कैसा हृदय! जो मौतके सामने भी भयभीत नहीं होता! उसे यन्त्रणा की चिन्ता न थी, मरनेकी चिन्ता न थी। उसे केवल धर्म-रक्षाकी चिन्ता थी। यह एक अबलाकी परीक्षा न थी। यह एक अगथाकी परीक्षा न थी। यह एक धर्मकी परीक्षा थी, जिसकी कसौटी मृत्युकी आगके सिवाय और कोई नहीं है। शिकंजा कसा गया। उसके अगणित

कील अगथाके कोमल शरीरमें चुभ गए। हड्डियाँ टूट रही थीं, लहू वह रहा था, लोग रो रहे थे। मगर अगथाकी आँखोंमें आंसू न थे, न जीभपर आह का शब्द था। वह उसी तरह सतेज, सचेत, सतर्क खड़ी थी।

कैतयानसने यह अभूत-पूर्व धैर्य देखा, तो उसे और भी आग लग गई। उसने हुक्म दिया—शिकंजा खोल दो, और इसे ज़िदा आगमें जला दो। यह जादूगरनी है।

आग जलाई गई और इसके साथ ही अकतानियाके हज़ारों दिलों में आगकी ज्वाला उठने लगी। कैतयानस बाहरकी आग देखता था और खुश होता था; मगर उसकी अन्धी आँखें दिलोंकी उस आगको न देखती थीं, जो विधाताने उसकी आगके मुक्काबिलेमें जलाई थी। आग प्रचंड हुई, तो अगथाके सुन्दर हाथ-पाँवको लोहेकी जंजीरोंसे बाँधा गया। अब दर्शकोंके दिलकी आग उनकी आँखोंमें आ गई थी; मगर कैतयानसकी आँखें इस ओरसे अभी तक बंद थीं। वह दुनियाको दिखाना चाहता था, कि आदमी अन्धा होकर कितना नीचे जा सकता है? उसने कुछ सोचा और फिर कहा—इस पापिनी को इस आगके ऊपरसे घसीटो। इसकी सज़ा मौत है।

कितना भयानक दंड था, जिसकी कल्पनासे देहका लहू जम जाता है! मगर अगथा अब भी शान्त थी, जैसे उसका इस सज़ासे कोई सम्बन्ध न था। देखते देखते जल्लादोंने उसे आगके ऊपरसे घसीटना शुरू कर दिया। आगकी ज्वाला उठी, जैसे कोई किसीका स्वागत करनेको खड़ा हो जाए। उसके कपड़े देखते देखते जल गए। अब वह नंगी थी। अकतानियाकी सबसे खूबसूरत, सबसे लज्जावती कुँवारी कन्याकी यह बेपर्दगी लोग सहन न कर सके। उनका लहू खौलने लगा, वे होंट काटने लगे। अगथा जल रही थी, आगमें पड़े हुए शीशेके छोटे छोटे टुकड़े उसके शरीरमें चुभ रहे थे, लहूकी

बूँदें आगपर गिरकर जल रही थीं और परमात्माका न्याय यह सब कुछ चुपकी आँखों से देख रहा था ।

तब एक आदमीने आगे बढ़कर कहा—अकतानिया-निवासियो ! तुमको लज्जासे डूब मरना चाहिए । यह राक्षस, यह नर-पिशाच कैतयानस, तुम्हारे शहरके गौरवको पाँव-तले मसलता है, उसे बिना किसी अपराधके ज़िन्दा आगमें जलाता है, और तुम सामने खड़े मुँह देखते हो । अगर तुम पुरुष हो, अगर तुम्हारी नसोंमें लहू, और लहूमें जीवनकी आग है ? अगर तुम्हारे सीनेमें दिल, और दिलमें जातीय प्रेम है ? अगर तुम सभ्य हो, और सभ्यता लेशमात्र भी तुममें बाकी है ? तो अपना क्रूर और क्रोध लेकर खड़े हो जाओ, और इस खूनी भेड़िएको ज़िन्दा न जाने दो । इसकी ज़िन्दगी तुम्हारी मौत है । इसकी मौत तुम्हारी ज़िन्दगी है !

दर्शक आगे बढ़े । कैतयानसने हुक्म दिया—पकड़ लो । ये विद्रोही हैं । मैं इन्हें भी सज़ा दूँगा ।

मगर समय पूरा हो चुका था । सिपाही भी बागी हो गए । उन्होंने हथियार फेंक दिए, और कहा—हमसे यह न होगा ।

लोगोंका उत्साह बढ़ गया । अब पुलिस भी उनके साथ थी । उन्होंने पुलिस के फेंके हुए हथियार उठा लिए, और जोर-जोरसे चिल्लाने लगे—कैतयानसको जला दो । अगथाको आगसे निकाल लो । प्रोटेस्टेंट होना पाप नहीं है । हम जाग उठे हैं ।

कैतयानस यह देखता था, और ठंडी साँसें भरता था । अब वह जान छिपाता फिरता था । क्या करे ? कहाँ जाए ? किधर भागे ? उसे कोई आश्रयका स्थान नज़र न आता था । समय कितनी जल्दी बदलता है । अभी अधिकारी था, अभी अपराधी बन गया । वह डरता था, कि अगर पकड़ा गया, तो लोग बोटियाँ नोच लेंगे । वह स्वयं दया-हीन

था। उसे किसीसे दयाकी आशा न थी। वह अपने महलकी तरफ नहीं गया, कचहरीकी तरफ नहीं गया, किसी चार दोस्तके पास नहीं गया, अपनी फौजके पास नहीं गया। वह नदीकी तरफ भागा, और एक मल्लाहकी नावमें बैठकर उससे बोला—मुझे पार उतार दे। मैं तुम्हें मालामाल कर दूँगा।

मल्लाहने उसे पहचान लिया और डर गया। उसे शहरका हाल मालूम न था। उसने नाव पानीमें डाल दी। कैतयानस ने शान्तिकी साँस ली, और समझा कि प्राण बच गए। लोग किनारेपर खड़े देखते थे कि उनका शिकार हाथसे निकला जाता है, और मल्लाहको गालियाँ देते थे। मल्लाह समझता न था कि मामला क्या है? और कैतयानस खुश हो रहा था। लोग किनारेसे निराश होकर लौट गए। मगर कर्म-फलने उसका पीछा अब भी न छोड़ा। उसकी राहमें कोई नदी न थी, कोई खाई न थी, कोई पानीकी लहर न थी। उसके कर्म-फलने उसे पकड़ लिया।

साँझका समय था। चारों ओर सन्नाटा और अँधेरा था। कोई शब्द सुनाई न देता था, कोई शक्त-सूरत दिखाई न देती थी। ऊपर नीला आकाश था, नीचे नदीका मैला पानी था, और इन दोनोंके बीचमें एक नाव पापका भार उठाए धीरे-धीरे उस पार जा रही थी। मगर पापके लिए जीवनका किनारा कहीं नहीं है? उस नावपर दो घोड़े भी थे। वह दुलत्तियाँ झाड़ने लगे। देखते-देखते नाव उलट गई और कैतयानस उसकी मृत्यु-तुल्य लहरोंमें समा गया। मल्लाह और घोड़े बच गए। नाव भी पानीपर तैर रही थी। केवल कैतयानसका कहीं पता न था। उसने सोचा था—नदी पार उतरकर घोड़ेपर सवार हो जाएगा। मगर उसे क्या पता था कि उनमेंसे एक घोड़ा ही उसका काल बन जाएगा। वह अकतानियाकी आगसे निकल आया था, मगर परमात्माके पानीके प्रकोपसे न बच सका। कितना

प्रतापी पुरुष था, और कितनी शोचनीय मौत मरा ! उस पर कोई शोकके दो आँसू बहानेवाला भी न था ।

उधर अकतानियाके लोग अगथाके गिर्द जमा थे, और श्रद्धाके आँसू बहा रहे थे । मगर अगथा कहाँ थी ? उसे लोगोंने आगके मुँह से बचा लिया था, मगर मौतके मुँहसे न बचा सके । बहुत देर बेसुध रहनेके बाद उसने आँखें खोलीं और एक बार अपने चारों तरफ़ इस तरह देखा, जैसे कोई देवी अपने भक्तोंको देखती है, और फिर सदाके लिए आँखें बंद कर लीं ।

अब उसकी समाधिपर हर साल मेला लगता है, और लोग उसके जीवनपर भाषण देते हैं ।



जीवन और मृत्यु

१

हसन इकबाल

कितना ज़माना गुज़र गया, मगर आज भी वे दिन कलकी तरह याद हैं। जवानीके वे सुनहरे चमन, बहारके वे खुशरंग फूल, उम्मीदोंके वे दिलकश नज़ारे, आज जाने कहाँ छिप गए ? दुनियाके तौर-तरीके उसी तरह जारी हैं, उमंगोंके बाग़ आज भी अपनी जादू भरी हवाओंसे जवानीके खूनको गरमा रहे हैं। मगर मेरे लिए और मेरे दिलके लिए उनमें कोई गरमी, कोई दिलकशी, कोई रंगीनी नहीं। सब कुछ सुपना हो गया।

मैं और जहान आरा बचपनमें एक साथ खेलते हैं। कैसे मासूम दिन थे, जब शरम-हयाकी बेड़ियाँ पाँवमें न पड़ी थीं। जहान आरा हुस्न और नज़ाकतकी पुतली थी। उसे देखकर मेरा दिल नाचने लग जाता था। मैं अपने आपमें न रहता था। मैं चाहता था, उसे कलेजेमें बिठा लूँ। मैं उसे सदा देखना और देखते रहना चाहता था। अकेला होता, तब भी उसीका ध्यान रहता। मुझे उससे मुहब्बत थी। यह मुहब्बत हिंस और हवाकी मुहब्बत

न थी, न यह मुहब्बत कुछ दिनोंके बाद बदल जानेवाली, मिट जानेवाली, मर जानेवाली मुहब्बत थी, जो बरसाती नालेकी तरह कभी किनारों तक उमड़ आती है, कभी बिलकुल सूख हो जाती है। यह खरी, असली, सच्ची मुहब्बत थी, जिसके सोते बारह महीने जारी रहते हैं, और जिसे सूरजकी सारी गरमी भी सुखाना चाहे, तो नहीं सुखा सकती। यही सबब है, कि जहान आरा आज भी, जबकि दुनिया की अनजान आँखें उसे देखनेसे लाचार हैं, अपने प्यारकी पूरी शान-शौकतसे मेरे सामने है, और मेरी नींद और बेदारी दोनों पर राज कर रही है। और किसीमें ताकत नहीं कि इस राजको मिटा सके।

२

बचपनका ज़माना था, दुनियादारीका दोनोंको खयाल न था। इर्द-गिर्दके हालसे बेखबर, माँ-बापकी मरज़ीसे बेपरवा, प्यार-मुहब्बत की घाटियोंमें बड़े जाते थे, और हमें इस बातका ज़रा भी ध्यान न था कि यह सफ़र कहाँ ख़त्म होगा? उस राहीकी तरह, जो आँखों पर पट्टी बाँधकर दौड़ता जाए, और यह न सोचे, न सोचनेकी ज़रूरत समझे, कि राहमें नदी-नाले पड़ते हैं, या काँटोंवाली झाड़ियाँ खड़ी हैं। मगर मैं ग़रीब था, और जहान आरा अमीर बापकी बेटी थी। धीरे धीरे यह खाड़ी जो बचपनके पहाड़ोंमें पानीकी पतली-सी लकीर थी, बढ़ने लगी, फैलने लगी, चौड़ी होने लगी। यहाँ तक कि जवानीके मैदानमें पहुँचते-पहुँचते यही पानीकी मामूली धार एक दरियाकी सूरतमें बदल गई। इधर मैं खड़ा था, उधर जहान आरा खड़ी थी और बीचमें गहरे पानीकी भयानक मौजें गरजती थीं। अब हमारी आँखें खुलीं, अपनी हिमाक़तपर पछताने लगे। पहले पता होता, तो यहाँ तक नौबत न पहुँचती। पहले प्यार बढ़ा था, अब प्यार की चिंता बढ़ने लगी। कोई रास्ता नज़र न आता था, कोई सूरत दिखाई न देती थी। हम घबरा गए।

प्यार और खाँसी छिपाए नहीं छिपते । जब तक बच्चे थे, किसी ने खयाल न किया । जवान हुए, तो हमारी अपनी ही आँखों ने राख खोल दिया । कुछ दिनों यह बात लड़के-लड़कियों का मशगला बनी रही, इसके बाद बड़े-बूढ़ों के कानों तक जा पहुँची । नतीजा यह हुआ, कि जहान आराका बाहर निकलना बंद हो गया । मुझपर पहाड़ टूट पड़ा । चारों तरफ़ घबराया-घबराया फिरता था । न दिनका आराम रहा, न रातकी नींद । अब नाउम्मीदी थी या ठंडी आई थी, या गरम आँसू थे । कुछ ही दिनमें सेहत खराब होने लगी । पानी न मिलनेसे पौधा मुरझाने लगा ।

मेरे माँ-बाप मुझसे नाराज़ थे । कहते—तूने हमें कहीं मुँह दिखाने के लायक नहीं रक्खा । खूबसूरती देखी, अपनी हैसियत न देखी । ब्याह-शादियों के रिश्ते बराबर वालों में होते हैं । हमारा उनका क्या मेल ? ज़मीन ज़मीन है, आसमान आसमान है । इन दोनों में क्या संबंध ? जब मेरी सेहत बिगड़ने लगी, तो उन्होंने परवा न की । मगर जब हालत ज़्यादा खराब होने लगी, तो उन्हें भी फ़िक्र हुई । माँ-बाप बच्चे के रोने और रूठने की परवा करें या न करें, लेकिन उसे घरसे बाहर निकलते देखकर उनका दिल ठिकाने नहीं रहता । एक दिन मेरा बाप बहुत देर तक मुझे समझाता रहा । मगर पागल और प्रेमी को कौन समझाए ? मेरे दिल पर ज़रा भी असर न हुआ । मेरा बाप हारकर बोला—अच्छा ! तू यह मानता है या नहीं कि हम ग़रीब हैं ?

मैंने सिर झुकाकर जवाब दिया—मानता हूँ ।

बाप—और उसका बाप अमीर है । चाहे तो हमें ख़रीद ले, चाहे तो हमें नौकर रख ले ।

मैं—पता नहीं ।

बाप—पता नहीं का बच्चा ! सब कुछ देखता है, और फिर भी अंधा बन रहा है ! हमारी उनके सामने हकीकत ही क्या है ? अपनी तरफ़

नहीं देखता, चला है प्रेम करने । नासिर अली बड़ा ज़ालिम आदमी है । अगर उसको गुस्सा आ गया, तो कोई इलज़ाम लगाकर सारे घरको बँधवा देगा । वह तो जानो, पड़ोसी होनेका लिहाज़ कर रहा है, वर्ना अब तक कुछ कर चुका होता । अब भी भला चाहे, तो उसकी लड़कीका ध्यान छोड़ दे ।

मैं—आप तो यों ही गुस्सेमें आ जाते हैं । मुझे उसका ज़रा भी खयाल नहीं ।

बाप—खयाल नहीं ? सारे शहरमें मिट्टी उड़ रही है । बेईमान कहींका ! कहता है, मुझे उसका खयाल नहीं ।

मैं—अब आप न मानें, तो मैं क्या कर सकता हूँ ?

बाप—करना क्या है ? उसका खयाल दिलसे निकाल दे, और समझ ले कि यह रिश्ता कभी न होगा । भगड़ा ख़त्म । (पुचकारकर) बेटा ! तूने मेरा कहा आज तक नहीं टाला । मुझे तुझपर हमेशा नाज़ रहा है । तू यह भगड़ा क्यों ले बैठा ? बेहतर यही है, कि यह खयाल दिलसे निकाल दे ।

मैं—बहुत बेहतर ! मैं आजसे उसका नाम भी लूँ, तो जूते मार कर घरसे निकाल देना ।

बाप—शाबाश ! मुझे यही उम्मीद थी । मगर कोई ख़त-वत न लिख बैठना । पकड़ा गया, तो बड़ी बुरी बात होगी । उसका बाप बड़ा ज़ालिम है । बुरी तरह बदला लेगा ।

मैं—यहाँ फ़ैसला कर चुके, कि उसका नाम भी न लेंगे । उसका खयाल भी न करेंगे । वह अपने घर खुश; हम अपने घर खुश ।

बाप—तो मैं अब बेफ़िक्र हो जाऊँ ?

मैं—पूरे तौरपर ।

बाप—बेटा ! ऐसे कामोंमें सदा बुराई निकलती है ।

मैं—आप ठीक फर्माते हैं ।

बाप—खुदा तुझे समझ दे ।

मैं—अब आपको शिकायतका मौका न मिलेगा ।

मेरे बापने मुझे गलेसे लगा लिया और रोने लगा । मेरी आँखों में भी आँसू आ गए । मगर जहान आराका खयाल दिलमें उसी तरह मौजूद था ।

३

जहान आरा

अब कई-कई दिन बीत जाते हैं, और मुलाकात ही नहीं होती । खुदा इस दौलतको गारत करे, मुहब्बतके बीचमें खड़ी है, और हँसती है । मगर मुझे रोना आता है । मैं चाहती हूँ, कोई इस रुपये-पैसेको आग लगा दे, तो अमीरी-शरीबीका सवाल ही न रहे । अम्माजानने भी राज़ब किया, अब्बाजानसे साफ़-साफ़ कह दिया । अब अब्बा जान उनकी जानके दुश्मन बने फिरते हैं । मालूम होता है, उनको भी ख़बर मिल गई है, इसीलिए इधरसे गुज़रना छोड़ दिया है । पहले हर रोज़ आते थे, अब कई दिनसे नहीं आए । सोचते होंगे, कहीं बात न बढ़ जाए । थुड़ी-थुड़ी होने लगेगी । लोग तमाशा देखेंगे और हँसेंगे ।

मगर यह जुदाई कैसे सहूँ ? मुहब्बत और सब कुछ सह सकती है, पर जुदाई सहना मुश्किल है । मेरी आँखोंमें दुनिया अँधेरे हो गई । कोई भी चीज़ अच्छी मालूम न होती, न मीठी, न नमकीन ।

बीमारीमें मुँहका जायका ही बदल जाता है। उस समय हवा और रोशनी भी बुरी मालूम होती है।

सोच-सोचकर मैंने चोरी-चोरी मिलनेका इरादा किया। कोई मुझे बुरा-भला न कहे, यह कुदरती था। पानी सीधा रास्ता बंद पाता है, तो इधर-उधरका रुख अख्तियार कर लेता है। मैंने अपने दिलके साथ कई दिन तक कशमकश की, मगर मुहब्बतने माँ-बापके भय और बदनामीके भूत दोनोंको पछाड़ दिया। मैंने अपनी सहेली खदीजा से कहा—जैसे भी हो, अपने यहाँ मुलाकात करा दो। नहीं तो मैं मर जाऊँगी।

खदीजाके खाविंद मियाँ हलीम और मेरे बापसे बहुत मेल जोल था। खदीजाका भी हमारे यहाँ आना-जाना था। उसपर हमारे घरवालोंको कभी शक न हो सकता था। खदीजाने मेरी तजवीज़ सुनी, तो डर गई। उसे डर था कि अगर किसी को इस मुलाकातका हाल मालूम हो गया, तो वह भी बदनाम हो जाएगी। लेकिन मेरे आँसुओंने उसका मुँह बन्द कर दिया, हारकर रज़ामन्द हो गई। दूसरे दिन उसके मकानपर हमारी मुलाकात हुई।

मैंने उन्हें देखा, तो डर गई। आदमी इतनी जल्दी इतना बदल सकता है, यह मैंने कभी न सोचा था। न आँखोंमें वह शोखी थी, न होठोंपर वह हँसी। बरसोंके बीमार मालूम होते थे। उन्होंने आते ही मुझे गलेसे लगा लिया और फूट-फूटकर रोने लगे। मेरा दिल भी बे-अख्तियार हो गया। मगर मैंने अपनी आँखोंको बे-अख्तियार न होने दिया और प्यार-भरे लहजेमें कहा—वाह ! क्या शक्त-सूरत बना रखी है ?

उन्होंने मेरी तरफ देखा, और ठंडी आह भरकर जवाब दिया—जहान आरा ! यह सवाल मुझसे न पूछो, अपने दिलसे पूछो। मुझे ख़्वाबमें भी ख़याल न था कि हम इस तरह बेगाने हो जाएँगे। ग़ज़ब

खुदाका । एक ही शहर में रहें, और इतने दिन मुलाकात न हो । आज शुक्र है, तुम्हारी सूरत तो नज़र आई ।

मैं—बड़ी दिक्कतोंसे आई हूँ । अगर अब्बाजानको मालूम हो जाए, तो गरदन ही उड़ा दें ।

इक़बाल—बस-बस ! ऐसी मनहूस बात मुँहसे न निकालो । मैंने भी बापसे वादा किया है, कि इधरका रुख भी न करूँगा । और देख लो, (हँसकर) वादा पूरा कर रहा हूँ ।

मैं—तुम्हारा रंग-रूप ही बदल गया । पहचाने नहीं जाते । कुछ बीमार हो क्या ? किसी हकीमको दिखाओ, बेपरवाई ठीक नहीं । बीमारी बढ़ जाएगी, तो सँभालना मुश्किल हो जाएगा ।

इक़बाल—मेरी दवा सिर्फ़ एक आदमीके पास है । मगर क्या करूँ ? वह दवा देता ही नहीं है ।

मैं—अरे ! ऐसा ज़ालिम कौन है वह ?

इक़बाल—ख़ानसाहब नासिर अलीका नाम तो तुमने सुना ही होगा ? वही ज़ालिम है वह ।

मैं—(शर्माकर) जाओ, तुम तो मज़ाक़ करते हो (थोड़ी देर बाद) मैं कहती हूँ, तुम्हें हो क्या गया है ?

इक़बाल—पहले अपना मुँह शीशेमें देख लो, फिर मुझे कहना ।

मैं—तुम इतनी फ़िक्र काहेको करते हो ?

इक़बाल—यही सोचता हूँ, कि अब क्या होगा ?

मैं—जो खुदाको मंज़ूर है, हो जाएगा । इस तरह रोने-धोनेसे हासिल खाक न होगा, सेहत भी खो बैठेगे ।

इकबाल—जहान आरा, मुझे अपना आईदा जमाना बिल्कुल अँधेरा दिखाई देता है। मेरे दिलमें कोई कह रहा है, हमारी मुहब्बत का फल अच्छा न होगा। तुम अमीर बापकी बेटी हो, मैं गरीब बापका बेटा हूँ और समाज कहता है, गरीब और अमीरमें ब्याह-शादीका रिश्ता नहीं हो सकता।

मैं—अगर कोई मुझसे पूछे, तो साफ़ कह दूँ कि मुझे रुपये-पैसे की परवा नहीं, मुझे तुम्हारी परवा है।

इकबाल—और तुम्हारे बापका बस चले, तो मुझे आज ही गोली से उड़ा दे, और किसी अमीरसे तुम्हारी शादी कर दे।

मैं—दुनिया अंधी है। रुपया-पैसा देखती है, मुहब्बत नहीं देखती। अच्छा, मुझे यह तो बताओ, क्या बूढ़े कभी जवान न थे, जो जवानों के दिलको नहीं समझते ?

इकबालने बेबसीसे कहा—जहान आरा। तुम मुझसे छिनी जा रही हो। मैं सामने खड़ा अपने दिलकी यह बरबादी देखता हूँ, और कुछ कर नहीं सकता। जी चाहता है ज़हर खा लूँ, ताकि यह तबाही अपनी आँखोंसे तो न देखूँ।

मेरे सीनेमें जैसे किसीने तीर चुभो दिया, आँखोंमें पानी आ गया। लेकिन मैंने कहा—तुम मर्द होकर ऐसी बातें करोगे, तो मेरा क्या हाल होगा ? यों जान देना बुझदिली है। बहादुर बनो।

उन्होंने मेरी तरफ़ हैरानीसे देखा और कहा—जहान आरा ! तुम्हारा मतलब क्या है ?

मैं—मेरा मतलब है, कमर कसो, रुपया पैदा करो, फिर देखती हूँ, हमारे रास्तेमें कौन खड़ा होता है ?

इकबाल—मगर तुम्हारा बाप मेरा इन्तज़ार भी न करेगा। तुम

खूबसूरत हो, तुम्हारा बाप अमीर है, और दुनियामें अमीर बापकी खूबसूरत बेटीसे ब्याह करनेवालोंकी कमी नहीं ।

मैं—मैं साफ़ कह दूँगी, कि मुझे यह ब्याह मंजूर नहीं । कोई बाँध के थोड़े ही कर देगा ।

इकबाल—तुम बड़ी भोली हो ! क्या तुम समझती हो, तुम्हारा बाप यह बर्दाश्त करेगा, कि वह तुम्हारा ब्याह करना चाहे और तुम लोगोंके सामने इनकार कर दो ? ज़रा सोचो ।

मैंने आँसू-भरी आँखोंसे उनकी तरफ़ देखा और पूछा—तो क्या ज़बरदस्ती मेरा ब्याह कर देंगे ?

इकबाल—अगर ज़बरदस्ती भी कर दें, तो उनको कौन रोक सकता है ? कोई भी नहीं—सब तुम्हारे खिलाफ़ बोलेंगे, उनके खिलाफ़ कोई भी न बोलेंगा । सब लोग उनकी बात कहेंगे ।

मैं रोने लगी । मैं चारों तरफ़ देखती थी, मगर मुझे बचावका कोई रास्ता नज़र न आता था । इस अथाह अँधेरेमें रोशनीकी किरन कहाँ थी ? मैंने उनकी तरफ़ देखा । वह भी रो रहे थे । मेरा रहा-सहा हौसला भी जाता रहा । निरासा रोनेके सिवाय और कर ही क्या सकती है ?

४

इतनेमें दरवाज़ा खुला और ख़दीजा और उसका शौहर अन्दर आए । हम दोनों घबरा गए । मैं बुर्का ओढ़कर एक कोनेमें दबक गई, उनके चेहरेपर पसीना आ गया । मगर हलीमने हमें तसल्ली देते हुए कहा—मैं तुम्हारा ख़ैरख़वाह हूँ, दुश्मन नहीं हूँ । हौसला रक्खो और मेरी दो बातें सुनो । ख़ुदा तुम्हारी मदद करेगा ।

हमारी जानमें जान आई। हलीमने उनके कन्धेपर हाथ रखकर कहा— रोना बेफायदा है। तुम इधर रोते रह जाओगे, उधर व्याह हो जाएगा। प्यार बच्चोंका खेल नहीं, बहादुरोंका मैदान है। मर्द बनो, मर्दानगी दिखाओ, कोशिश करो, चार पैसे कमाओ, और साबत करो कि तुम कुछ कर सकते हो। फिर देखता हूं, किसमें हिम्मत है कि जहान आराकी तरफ़ आँख उठाकर भी देख जाए। जहान आरा तुम्हारी होगी।

ना-उम्मीदीमें उम्मीदका नाम भी बहुत कुछ होता है। मियाँ हलीमकी बात सुन कर उनका चेहरा चमकने लगा। बोले—क्या करके दिखाऊँ मैं ? मुझे तो कोई रास्ता नहीं सूझता।

हलीमने मुस्कराकर कहा—अमीर बाप अपनी बेटी गरीब को क्यों दे ? व्याह-शादियोंके रिश्ते बराबरवालोंमें होते हैं। इस वक्त दो सूरतें तुम्हारी शादीकी हैं—एक तो यह कि नासिरअली गरीब हो जाए और तुम्हारी सतहपर आ जाए। दूसरी यह कि तुम अमीर हो जाओ और उसकी सतहपर पहुँच जाओ। पहली सूरत तुम भी पसन्द न करोगे, दूसरी सूरतका तुमपर दार-मदार है। जहान आरा ग़ुबसूरत है, उसके हाथका हक़दार वही हो सकता है, जो बहादुर हो और कुछ करके दिखा सके। इस हकीकतकी रोशनी में जवाब दो—क्या तुममें हिम्मत है ?

उन्होंने सिर ऊँचा करके जवाब दिया—हिम्मत तो है, मगर खतरा यह है कि कहीं खानसाहब जहान आराका किसीसे व्याह ही न कर दें। सारी उम्र रोता रहूंगा। कैसी आफ़त है ? मैं मौक़ा चाहता हूँ, मुझे मौक़ा नहीं मिलता।

हलीम—मौक़ा तुम्हें मैं दिला सकता हूँ।

इक़बाल - क्या मतलब ?

हलीम—वे मेरा कहना कभी न टालेंगे। मैं उन्हें इस बात पर रजामन्द कर लूँगा।

उम्मीदके खयालने उनका चेहरा रोशन कर दिया। उमंगसे बोले—कितनी मुद्दतकेके लिए ?

हलीम—अब यह क्या कह सकता हूँ ? दो-तीन सालसे ज्यादा न मानेंगे। तुम कितनी मोहलत चाहते हो ?

इकबाल—तीन साल दिला दीजिए। मैं इसी बीचमें कुछ न कुछ करके दिखा दूँगा।

हलीम—मगर तुमने कुछ सोचा भी है, या यों ही पागलोंकी तरह हवामें किले बना रहे हो ? कहीं ऐसा न हो, बादमें कहो, तीन सालमें होता ही क्या है ? इसलिए पहले अच्छी तरह सोच लो, फिर बोलो। मैं अभी जाकर फ़ैसला किए आता हूँ।

उनका चेहरा उम्मीदकी रोशनीसे रोशन था, बोले—जो सोचना था, सोच चुका। तीन साल बहुत हैं, आदमी चाहे तो इतनी मुद्दत में पहाड़ उलट दे। आप इतनी मोहलत दिला दें, तो सारी उम्र दुआएँ देता रहूँगा। समझूँगा, आपने मेरी ज़िदगी बचा ली।

हलीम चला गया। थोड़ी देर बाद लौटा, तो चेहरा कामयाबी की खुशीसे चमक रहा था। आते ही बोला—खाँसाहब बड़े जोशमें थे। कुछ मानते ही न थे, पर मैंने रजामन्द कर लिया। कहते हैं, तीन साल तक शादी न करेंगे। उन्हें यह मंज़ूर है।

ख़दीजाने झुककर मेरे कानमें कहा—शीरनी खिलाकर जाना। पहला मैदान फ़तह हो गया।

मैंने दोनों हाथ उसकी पीठपर मारे और प्यारके गुस्सेसे कहा—

बड़ी बुरी हो तुम ! मजाक करते शरम नहीं आती ? इतना भी नहीं सोचती, कि यह वक्त मजाकका नहीं है ।

हलीम—मगर एक शर्त और भी है ।

इकबाल—फरमाइए ।

हलीम—खत-किताबत न हो सकेगी ।

इकबाल—बड़ी टेढ़ी शर्त है । मेरा दिल न मानेगा । खत आता जाता रहता, तो हिम्मत बनी रहती, हौसला बँधा रहता, मनमें उमंग भरी रहती । मगर खैर, यह भी मंजूर है ।

हलीम—कहते हैं, अगर मेरे कानमें भनक भी पड़ गई, कि यह शर्त टूटी है, तो मैं जहान आराको फौरन व्याह दूँगा ।

इकबाल—बहुत अच्छा, न लिखेंगे । जहाँ और सद्मे हैं, वहाँ एक यह भी सही ।

मगर मुझे पूरी उम्मीद थी कि वे खत लिखना कभी न बंद करेंगे ।

५

दूसरे दिन वे चले गए । कहाँ ? यह किसीको भी मालूम न था । मुझपर पहाड़ टूट पड़ा । अब दुनियामें मेरा कोई न था । यहाँ तक कि मेरे माँ-बाप भी मेरे न थे । अकेली बैठी रोया करती थी । जवानीके वे रंगीन नगमे, बहारके वे दिलनवाज़ कहकहे, न मालूम नाउम्मीदीके किस गोशेमें गुम हो गए । मेरे लिए गरमीकी दुपहरियाँ और सरदीकी रातें थीं, जो काटे नहीं कटतीं । इसके सिवा मेरे लिए कुछ भी न था । इस उम्रमें लड़कियोंको कितनी ही खुशियाँ होती हैं, मुझे एक भी न थी । अक्सर सोचा करती, वे कहाँ होंगे ? क्या करते होंगे ? इस लम्बी-चौड़ी दुनियामें उनका अपना कौन है ? कब लौटेंगे ? और किस हालमें लौटेंगे ? अपने प्यारोंके बारेमें हमारे दिलमें बुरे बुरे खयाल आया करते हैं । मेरे दिलमें खयाल आता, परदेसमें बीमार

न हो जाएँ, कौन इलाज करेगा ? कौन दवा देगा ? कौन देखभाल करेगा ? बेपरवा हैं, अपना खयाल ही नहीं किया करते । फिर क्या होगा ? इसके आगे मैं न सोच सकती । नाउम्मीदीके अँधेरेमें खयाल की आँखें भी नहीं देख सकतीं । मायूसीके उबड़-खाबड़ रास्तोंपर हिम्मत के पाँव भी नहीं बढ़ सकते ।

इसी तरह क्रिक-चिन्ताके छः महीने बीत गए, मगर उनका कोई खत न आया । न मालूम हुआ, कि कहाँ हैं और क्या करते हैं ? उनके माँ-बाप भी रोया करते थे । मगर मैं तो पागल-सी हो गई थी । हर रोज़ सोचती थी, आज खत आएगा । मगर दिन गुज़र जाता, कोई खत न आता और मैं मायूस होकर रोने बैठ जाती । खदीजा कहती थी, तू तो पागल हो गई है । अगर चिट्ठी न आई, तो क्या हुआ ? तुझे भूल थोड़ा गया है । सोचता होगा, चिट्ठी पकड़ी गई, तो सारी मेहनतपर पानी फिर जाएगा । मगर इन बातोंसे मुझे तसल्ली न होती थी । अंदर ही अंदर घुलने लगी ।

यरक़ानकी तरह इश्क़ भी छिपा नहीं रहता । उसका भी रंग बोलता है । मेरी हालत भी किसीसे छिपी न थी । माँ-बाप दोनों देखते थे और कुढ़ते थे; पर मुझसे कुछ कहते न थे । शायद डरते थे कि कुछ कहा, तो सामने बोलने लगेगी । जवान लड़की है, कहीं आँखों का पानी न मर जाए । वे चुप थे, मगर ग़ाफ़िल न थे । एक दिन मालूम हुआ, मेरे निकाहका फ़ैसला हो गया है । कोई बड़े इंजीनियर हैं, उनके साथ । मैं सन्नाटेमें आ गई ! मुझे यह गुमान भी न था कि मेरे माँ-बाप मुझसे दगा करेंगे । मैं चारपाईपर लेट गई और फूट-फूट कर रोने लगी ।

लेकिन रोनेसे क्या होता था ? मैं दौड़ी-दौड़ी खदीजाके घर गई, और उससे बोली—देखती हो, यह क्या अँधेर होनेवाला है ? वे कहीं दुनियाके धक्के खाते फिरते होंगे, यहाँ निकाहकी तैयारियाँ हो

रही हैं ! तीन सालका इक्करार किया था, अभी तो छः महीने ही गुज़रे हैं । आखिर इस दगाके क्या माने ?

खदीजाने ठंडी आह भरकर सिर झुका लिया ।

मेरी आँखोंसे आगके शरारे निकलने लगे, तलमलाकर बोली—तो क्या तुम बिलकुल ही चुप रहोगी ? जाकर अपने शौहरसे कहो, अब्बाजानसे मिलें और यह फ़ितना यहीं दबा दें । वरना बात बढ़ गई तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगी ।

खदीजाने मेरी तरफ़ देखा, और कहा—उन्होंने सब कुछ कहा है, मगर तुम्हारा बाप नहीं मानता । कहता है, मैंने इक्करार न किया था, उसे टाला था । अब यह मौक़ा मिला है, इसे न खोऊँगा ।

मैं तीरकी तरह तनकर खड़ी हो गई और बोली—तो अब मुझे ही बोलना पड़ेगा । निकाहके वक़्त मुँह फाड़कर कह दूँगी, मुझे यह रिश्ता मंज़ूर नहीं । समझते होंगे, लड़की है, क्या कर लेगी ? यह मालूम नहीं, मुहब्बत और गुस्सा सब कुछ कर सकते हैं ! किसीको मुँह दिखानेके काबिल न रहेंगे । सारे शहरमें बदनाम हो जाएँगे । सारी इज़्ज़त और दौलत धरी रह जाएगी ।

मगर कहने और करनेमें बड़ा फ़र्क़ है । मुझसे कुछ भी न हो सका । वह नाज़ुक वक़्त आया और गुज़र गया और मेरी ज़बान न खुल सकी । न किसीने कुछ सुना—न कोई बदनाम हुआ । मेरा निकाह हो गया ।

६

हसन इक़बाल

मैं कलकत्ते पहुँचा । उस वक़्त तक मैंने ज़रा भी न सोचा था, कि वहाँ जाकर क्या करूँगा ? सोचता था, पहले कलकत्ते पहुँच लें, फिर

देखेंगे, क्या होता है ? इतना बड़ा शहर है, क्या मेरे ही नसीबोंको आग लगी है ? मैं नहीं कह सकता, इसकी वजह क्या थी ? मगर मेरा दिल उम्मीदीसे भरा था ! मुझे यकीन था कि मैं कामयाबी के रास्तेपर चल रहा हूँ । पर कलकत्ते पहुँचकर दिल बैठ गया । खयाल आया—इस पुर-रोनक शहरमें सभी बेगाने हैं, अपना कोई भी नहीं । सारा दिन शहरमें घूमता रहा, पर बिजलियों और रोशनियों के इस बड़े शहरमें मेरे लिए अँधेरेके सिवाय कहीं जगह न थी । यहाँ तक कि रातके नौ बज गए । अब मैं घबराने लगा कि कहाँ जाऊँगा ? रातको कहाँ रहूँगा ? मेरा दिमाग काम न करता था । परदेसमें सबसे परेशानीकी चीज़ रात होती है, और खासकर एक बे-दर, बे-घरके लिए, जिसे पड़ रहनेको भी ठिकाना न हो । दिन इधर उधर चल-फिरकर भी गुज़र जाता है, मगर रात कैसे कटे ? मैंने जेब में हाथ डाला, सिर्फ़ पौने दो रुपए थे । और यह वह पूंजी थी, जिसके बल-बूतेपर मैं कलकत्तेके बाज़ारोंमें कामयाबी जीतने आया था । किसी होटलमें इन पैसोंसे एक रातके लिए भी जगह न मिल सकी । मैं इधर-उधर फिरने लगा ।

यकायक मेरे हाथपर किसीने एक इश्तिहार रख दिया । मैंने एक दूकानके सामने खड़े होकर देखा, खापरडे-सरकस-कंपनीका इश्तिहार था, जिसमें एक एक्टर शेरोंको खुला छोड़कर उनके साथ खेलनेवाला था । मैं परेशान था । मेरे पास खाने-पीनेको सिवा रामके कुछ न था । लेकिन खुशीकी ख्वाहिश आदमीको हमेशा रहती है । मैं सरकस देखने चला गया । कल क्या होगा ? यह खयाल न था, खयाल यह था, इस वक्त तमाशा देख लो । यह कंपनी बड़ी भारी कंपनी थी । बंदरों, रीछों, कुत्तों, घोड़ों, हाथियोंके तमाशे देखकर लोग वाह वाह करते थे ! मगर जब एक नौजवान मराठा खूँखवार और वहशी शेरोंको खुला छोड़कर उनके साथ खेलने लगा, तो तमाम तमाशाइयों के रोंगटे खड़े हो गए । शेर गुर्राते थे और नौजवान मुस्करा-मुस्करा

कर उनको छेड़ता था, और तुराँ यह कि नौजवानके पास सिवा धीरजके कुछ भी न था। देखते-देखते नौजवानने अपना सिर एक शेरके मुँहमें दे दिया। लोगोंके दम रुक गए। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। किसी तरफसे भी आवाज़ सुनाई न देती थी। यह जिस्मकी चुस्ती-चालाकीका तमाशा न था, मौत और ज़िन्दगीका तमाशा था। लोग समझते थे, शेर इसे चबा जाएगा। मगर शेरने उसे ज़रा भी नुकसान न पहुँचाया। ज़िन्दगी मौतके मुँहमें गई, वहाँ कुछ देर ठहरी, कुछ देर खेली और वचकर वापस लौट आई। नौजवानने शेरोंको इशारा किया, वे पालतू कुत्तोंकी तरह पिंजरेमें दाखिल हो गए। नौजवानने झुककर सलाम किया और चला गया। लोगोंने तालियोंसे आसमान सिरपर उठा लिया।

अब सबकी ज़बानपर उसीका जिक्र था। लोग कहते थे, टिकट के दाम वसूल हो गए। वाह-वाह! कैसा दिलेर है? शेरके मुँहमें सिर दे दिया। एक पुराने खयालका आदमी बोला—सब जादूका खेल है, शेर-वेर कुछ भी न थे, खयाली तसवीरें थीं। इसीको नज़र-बंदीका तमाशा कहते हैं। दूसरेने कहा—जादू न था; मगर ये शेर भी न थे, शेरकी खालमें आदमी थे। तीसरा बोला—वाह जनाब! आदमी हों, तो इतनी तनख्वाह कौन दे? कुछ मालूम भी है? इसकी तनख्वाह तीन हजार है, तीन हजार! आज नौकरी छोड़ दे, कल कंपनी में उल्लू बोलने लगें। कुत्तों और बिल्लियोंके तमाशे कौन देखने आता है? सब इसीकी दिलावरी देखने आते हैं। गर्जे कि जितने मुँह थे, उतनी बातें थीं।

तमाशा खत्म हुआ, तो मैं भी लोगोंके साथ बाहर निकला। पर अब मैं वह मायूस परदेसी न था। मुझे नौजवान मराठेने कामयाबी की राह दिखा दी थी। खयाल आया, रुपया कमानेका यही तरीका है। आदमी जानकी परवा न करे, तो दौलत पैरोंमें लोटती है। और दौलत आती है तो शोहरतको साथ लाती है। लोग अपने

अपने घरोंको चले गए। मगर मैं कहाँ जाता ? मेरा कोई घर न था। मैंने सरकसके गिर्द फिर फिरकर रात गुज़ार दी और सुबहको नौजवान मराठेसे मिलने चला।

उसने मेरी कहानी बड़े गौरसे सुनी और फिर मुस्कराकर कहा— मेरी भी यही जीवनी है। लड़की सुन्दरी थी और उसका पिता अमीर था। परन्तु मैंने इन बातोंका ध्यान न किया। परिणाम वही हुआ, जो हुआ करता है। और मैंने प्रतिज्ञा की, मैं रुपया कमाऊँगा और मैंने कमाकर दिखा दिया—अब वह मेरी स्त्री है। और हम दोनों खुश हैं।

मैंने कहा—मैं परदेसी हूँ, मेरा यहाँ सिवा परमेश्वरके और कोई नहीं। अगर आप मदद करें, तो शायद मुझे भी कामयाबी हो जाए। वरना मैंने यही फैसला किया है, कि हुगलीमें डूब मरूँ। नाकामीसे मौत भली।

मराठा मेरी बात काटकर बोला—भगवान्‌पर भरोसा रखो! वह सब कुछ कर देगा। परन्तु एक बात हृदयमें बाँध लो। रुपया कमाना आसान नहीं। जोखममें पड़ना होगा।

मैं—मैं आगमें कूदनेको भी तैयार हूँ।

मराठा—तुमने देखा, मैं शेरके मुँहमें जाता हूँ, तब जाकर रुपया मिलता है।

मैं—खूब देखा, देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मराठा—लोग तनख्वाह देखते हैं, काम नहीं देखते। सिंहका नाम सुनकर मृत्युका चित्र सामने आ जाता है। मैं उसके मुँहमें सिर दे देता हूँ। यह आसान नहीं है।

मैं—मैं सुनकर भी यक़ीन न करता कि आदमी यह भी कर सकता है। मगर अब तो आँखोंसे देख लिया।

मराठा—पर मेरी स्त्री कहती है, अब यह धंधा छोड़ दो। शेर फिर भी शेर है, राम जाने, किस समय आँखें बदल ले। स्त्री है, डर जाती है। बड़ी कठिनाईसे आता हूँ। मगर अब अधिक दिन यह काम न कर सकूँगा। मुझे डर है, कहीं कंपनीको हानि न पहुँच जाए। इसलिए मैं चाहता हूँ कि कोई मन-चला मुझसे यह विद्या सीख ले। मगर प्राण हरएकको प्यारे हैं, सब कानोंपर हाथ रखते हैं। कोई आगे नहीं बढ़ता।

मैं—मैं तैयार हूँ। मुझे जान प्यारी नहीं हैं। अगर होती, तो आपके पास न आता। यह इल्म सीखनेकी ख्वाहिश न करता; बढ़ बढ़कर बातें न बनाता। मुझे आजमाकर देखिए।

मराठा—तुम ज़रूर सीख लोगे। प्यार बुरा होता है। जो आदमी से कभी न हो, वह प्यारमें हो जाता है।

मैं—मैं आपकी जानको सारी उम्र दुआएँ देता रहूँगा।

मराठा—मुझे अब दुआओंकी भी चाह नहीं। बहुत ले चुका, और लेकर क्या करूँगा? अब तुम आगे आओ, और दौलत और शोहरत कमाओ। मुझे खुशी होगी।

मेरी खुशीका ठिकाना न था। कामयाबीकी ज़मीन बहुत करीब, बिलकुल पास, दिखाई देती थी। कैसे अच्छे वक्त घरसे निकला था, आते ही काम बन गया! मैंने मराठेकी शागिर्दी करली।

७

छः महीने बाद कंपनीमें मेरे नामके डंके बजने लगे। कंपनी वही थी, कंपनीकी शोहरत वही थी, सिर्फ शेरोंका पहलवान बदल गया था। पहले मराठा नौजवान था, अब पंजाबी मुसलमान था। इश्तिहार निकलते, प्रोफेसर इक़बालकी जाँबाजीके लासानी कर्तब जिसने न देखे, उसने कुछ न देखा। मैं यह पढ़ता था और खुश होता था,

और कामयाबी अपने खुले दरवाजोंके साथ मुझे सामने दिखाई देती थी। मैं वही था, जो आजसे छः महीने पहले शेरोंका यही तमाशा देखकर दंग रह गया था। आज खुद मुझे देखकर लोग तालियाँ पीटते थे। जब मैं अपनी चमकीली वरदी पहनकर शेरोंके सामने जाता था, तो लोग मुझे हैरानी और अदबसे देखते थे। कई दफा मुझे अंदेशा होता था कि शायद आज रात मेरा आखिरी तमाशा हो। अगर शेरने ज़रा भी मुँह दबा लिया, तो क्या होगा? मैं सहम जाता था। मेरी रगोंका खून सर्द हो जाता था। मेरा दिल मौतके खौफसे काँप उठता था। मैं चाहता था, नौकरी छोड़ दूँ, और घर लौट जाऊँ। मगर जहान आराकी मुहब्बत गिरे हुए हौसले सँभाल लेती थी। दुनियामें हुस्न और इश्क़ कितना काम करते हैं, इसका अंदाज़ा लगाना भी आसान नहीं। मैं काम करता रहा, रुपया कमाता रहा, अपनी खुशीके करीब पहुँचता गया।

इस बीचमें हमारी कंपनी कई रियासतोंमें भी गई। वहाँ मुझे राजों-महाराजोंसे बड़ी-बड़ी रक़में मिलीं। महाराजा सतगढ़ने दस हज़ार दिया, महाराज सिकंधीरने आठ हज़ार। मेरी तनख्वाह इसके अलावा थी। मगर मैं खर्च न करता था, बचाता था। यह रुपया मेरे लिए न था, मेरी जहान आरा के लिए था, जिसका बाप चाँदीका भूखा था। जो व्याहके लिए चाँदी-सोनेको ज़रूरी समझता था।

खुदा खुदा करके दो साल ख़त्म हुए और मैं अस्सी हज़ारके करीब रुपया लेकर अपने वतनको खाना हुआ। इस वज़त मेरे पाँव ज़मीनपर न पड़ते थे। उम्मीदोंके आसमानमें उड़ा चला जाता था। मैंने हलीमको सब कुछ लिख दिया था। सोचता था, शहरके लोग सुनेंगे, तो हैरान रह जाएंगे। और जहान आराकी तो जानमें जान आ जाएगी। मेरे आनेका हाल सुनेगी, तो उछल पड़ेगी। पता नहीं, जुदाईका यह ज़माना गरीब दुखियाने कैसे गुज़ारा है। रो रोकर

आधी भी न रही होगी। चेहरेका रंग बदल गया होगा। पर अब खुश हो जाएगी। जाकर हलीमसे कहूंगा, उसके बापसे कहे, इकबाल कुछ बन गया है। अब आपको क्या एतराज है ?

फ़ाण्टियर-मेल अपनी पूरी रफ्तारसे उड़ा चला जाता था; मगर मैं बार-बार झुकता उठता था कि गाड़ी जल्द-से-जल्द रावलपिंडी क्यों नहीं पहुँच जाती। मैं चाहता था, यह तमाम फ़ासिला एक मिनटमें तय हो जाए। इन्तज़ारकी आखिरी घड़ियाँ लम्बी होती हैं। उनका गुज़रना मुश्किल हो जाता है। लेकिन वक्तने किसीकी परवा कब की है ? गाड़ी अपनी रफ्तारसे चलती रही। आखिर रावलपिंडीका स्टेशन आ गया। मैं गाड़ीसे बाहर निकला। स्टेशनपर कोई भी न था। न हलीम, न कोई और। मैं स्टेशनसे बाहर निकला, और टैक्सी लेकर घर पहुँचा। इस वक्त मेरे दिलकी जो कैफ़ियत थी, उसे बयान नहीं किया जा सकता। मेरे माँ-बापको बेहद खुशी हुई। माँ बार-बार मेरी बलाएँ लेती थी, और पूछती थी—बेटा, तूने हमें एक खत भी न लिखा। मैं तो रो रोकर अन्धी हो गई। मैं हँसता था, और कहता था—माँ, मैंने अस्सी हजार रुपया कमा लिया। अब हम अमीर हैं।

मेरे बापकी आँखें खुशीसे चमकने लगीं, मेरे सिरपर हाथ फेर कर बोला—नासिर अली कहता था, परदेस गया है तो क्या हो जाएगा ? क्या परदेसमें हुन बरसता है, जो उठा लाएगा।

मैं—हाँ, बरसता ही है, वरना मैं इतना रुपया कहाँसे उठा लाता ?

माँ—मगर बेटा, तू शेरके मुँहमें सिर कैसे दे देता था ? क्या तुझे माँका खयाल न आता था ?

मैं—शेर सधे हुए थे।

बाप—पर शेर तो थे। शेरोंका क्या एतराज ?

माँ—मैं अब न जाने दूँगी। मुझे रुपयेकी ज़रूरत नहीं।

मैं—मेरा अपना भी इरादा अब जानेका नहीं है। हाँ खान साहबका क्या हाल है आज कल ?

बाप—मेरे सामने उसका नाम न लो, बड़ा बेईमान है !

मेरे दिलमें यकायक अन्देशा पैदा हुआ। क्या कहीं.....मेरा दिमाग खौलने लगा। शामका वक्त था, अँधेरेमें मेरी माँने मेरे चेहरेकी कैफियत न देखी, और बोली—उसने इक्क़रार करके पूरा न किया, और तुम्हारे जानेके छः माह बाद बेटीका ब्याह कर दिया। तेरे दोस्त हलीमने बहुत समझाया, हमने भी बहुत कुछ कहा, मगर उसने एक न सुनी।

मेरा सर घूमने लगा। आँखोंके सामने शामके वक्त आधी रात का अँधेरा छा गया। अब मेरे लिए दुनियामें कोई दिलचस्पी, कोई रंगीनी न थी। मैं कैसा बद-किस्मत था ! मैंने बाज़ी जीतकर हार दी ! मुझे नासिर अलीपर गुस्सा था; मगर इससे भी ज़्यादा गुस्सा जहान आरापर था। मैंने सर्द आह भरी और पूछा—जहान आराका क्या हाल है ?

मेरे वालिद साहब बाहर चले गए।

माँ—उस बद-नसीबका हाल क्या बताऊँ ! जब तक ब्याही रही, उसके होठोंपर किसीने हँसी नहीं देखी। हर घड़ी रोती रहती थी। आखिर आज उसके दुखोंका खात्मा हो गया। मुहल्लेके लोग और हलीम उसीके जनाजेके साथ गए हैं।

मैं जहाँ बैठा था, वहीं बैठा रह गया। पहले बाज़ी हारी थी, अब उम्मीद भी हार गया। मेरे मुँहसे कोई आवाज़ न निकली, न आँख से पानी निकला। मगर दिलमें आग लग गई। मैं थोड़ी देर चुप-चाप बैठा रहा, इसके बाद जोशसे उठ खड़ा हुआ। माँकी ममता रोकती ही रह गई; मगर मेरे पागलपनके कान न थे। थोड़ी देर बाद मैं क़ब्रिस्तानमें जहान आराकी क़ब्र उखाड़ रहा था। अब मैं खुद नहीं

बता सकता कि उस वक्त मेरे सरपर कौन-सा भूत सवार था; न मुझे मालूम था कि मैं क्या कर रहा हूँ ? दीन-दुनियासे बेखबर, कानूनसे बेपरवा, रातके अँधेरेमें एक पागल क्रब्र खोद रहा था, और उसे देखने वाला सिवाय आसमानके तारों और ज़मीनके दरख्तोंके और कोई न था ।

मैंने लाश बाहर निकाली, और उसका मुँह चूमकर कहा— जहान आरा ! बता, तूने यह बेवफ़ाई क्यों की ? तूने तो मुझसे वादा किया था, कि तू मेरा रास्ता देखेगी ? अब वह प्यार-मुहब्बतके क़ौल-क़रार क्या हुए ? देख, तेरा प्यारा इक़बाल रुपया कमाकर लाया है, मगर तू यहाँ अँधेरेमें आ लेटी है । चलकर अपने लोभी बापसे कह, मेरा रुपया देखे, और तुझे मुझसे ब्याह दे । मैं अस्सी हज़ार लाया हूँ ।

यकायक मुझे लाशमें हरकत-सी मालूम हुई । मैंने सीनेपर हाथ रखकर देखा, वह गर्म था, नब्ज़ टटोली, वह चल रही थी । मैं डर गया । मौतसे पागल भी डरता है । मैंने लाशको ज़मीनपर रख दिया, और आप दूर भाग गया । सरकस-कंपनीमें शेरके साथ हँस-हँसकर खेलनेवाला बहादुर इस वक्त एक औरतकी लाशसे डर रहा था । हम ज़िंदोंकी निसबत मुर्दोंसे कहीं ज़्यादा डरते हैं । इतनेमें जैसे अँधेरेमें बिजली कौंध गई । खयाल आया, मुमकिन है, इसके दिलकी हरकत थोड़ी देरके लिए बंद हो गई हो, मरी न हो और अब फिर वह हरकत शुरू हो गई हो । हिकमतकी किताबमें ऐसे बीमारोंका जिक्र आया है । अब मेरी खुशीका ठिकाना न था । मैंने जल्दीसे आगे बढ़ कर जहान आराको गोदमें उठाया और सड़कपर आकर खड़ा हो गया । इतनेमें उधरसे एक टैक्सी गुज़री । मेरी मुश्किल हल हो गई । चंद दिनके बाद मैंने दस हज़ार रुपया वालिदको भेज दिया, और बाकी रुपया और जहान आराको लेकर काबुल चला गया ।

राहत हुसैन

जहान आराकी मौत एक ऐसा दिल-खराश वाक्या है, जिसने मेरी जिन्दगी तबाह कर दी है। दुनियामें सब कुछ है, मगर मेरे लिए कुछ भी नहीं है। हर घड़ी उसीका हसीन चेहरा आँखोंमें फिरा करता है। क्या खबर थी कि मौतका फरिश्ता इतनी जल्दी उसकी जिन्दगीपर छापा मार लेगा। सुबह दफ़्तर गया, तो बिलकुल तंदुरुस्त थी; शामको लौटा, तो घरमें वह न थी, उसकी लाश थी। इतना भी तो न हुआ कि मरते वक़्त दो बातें ही कर लूँ, या इलाज और खिदमत करके दिलकी हसरत ही निकाल लूँ। पहले खयाल नहीं आया, मगर अब मालूम होता है, कि उसके दिलमें कोई ग़म था। हर वक़्त सहमी सहमी रहती थी; लेकिन मेरे सामने अपना ग़म उसने कभी जाहिर नहीं किया। ऐसी शरीफ़, ऐसी नेकनीयत, ऐसी खूबसूरत औरत कहाँ पाऊँगा? जब याद आती है, दिलसे हूक उठती है, और आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। जी हर वक़्त रोता रहता है। अलबत्ता, उसकी बेटी इसमत आराको देखकर दिल बहल जाता है। वह न सही, उसकी निशानी ही सही। यही ग़नीमत है।

१६२० का साल हिन्दुस्तानकी तारीखमें ख़ास साल है। यह वह साल है, जब हिन्दुस्तानके मुसलमानोंमें हिजरतकी तहरीक शुरू हुई। इज़ारों मुसलमान अपना वतन छोड़कर अफ़ग़ानिस्तान चले गए। मैं पहले ही रंजीदा था, नौकरी छोड़ दी, और हिजरतकी तैयारियाँ करने लगा। ख़ान साहबको मुझसे बहुत मुहब्बत हो गई थी। मेरा इरादा सुनकर उनके होश उड़ गए। कई दिनतक समझाते रहे, कि यह जोश ग़ोडावाटरका उबाल है। तुमको क्या हो गया? भले-चंगे बैठे हो, ठिं रहो। यहाँ अच्छी नौकरी है, कमाते हो, खाते हो, ऐश करते हो।

अफ़ग़ानिस्तान नई जगह, नए हालात, नए आदमी। खुदा जाने वहाँ कैसी पटे, कैसी न पटे ? दाना आदमी ऐसी गलती कभी नहीं करते। बुढ़ापेमें जहान आराकी मौतने कमर तोड़ दी है, और कोई लड़का है, न लड़की। अब तुम भी छोड़ जाओगे, तो हम बे-मौत मर जाएँगे। और कुछ नहीं, तो इसमत आरा ही का खयाल करो। माँकी मौतसे पहले ही उदास रहती है, परदेसमें जाकर और भी उदास हो जाएगी। परदेसमें चारों तरफ़ देखेगी और रोएगी।

मगर जब मेरे इरादेमें ज़रा फ़र्क़ न आया, तो हारकर वे भी तैयार हो गए। शहरमें शोर मच गया। लोग हैरान रह गए। उनको कभी खयाल भी न हो सकता था, कि खान साहब जैसा आदमी भी हिजरत जैसी तहरीकमें शरीक हो जाएगा। मगर असली राज़की किसीको भी ख़बर न थी। रुपयोंका माल कौड़ियोंमें निकल गया; पर हमने परवा न की, और काबुल जा बसे। वहाँ सैकड़ों हिन्दुस्तानी थे। उनको उम्मीद थी कि हुकूमत उन्हें सिर-आँखोंपर उठा लेगी। और हुकूमतने उनकी मेहमान-नवाज़ी की भी। मगर उनका इतमीनान न हुआ। अलबत्ता हमारे साथ खास सुलूक रवा रक्खा गया। दौलत घरमें भी काम आती है, बाहर भी। गरीबोंको कोई कहीं भी नहीं पूछता। वे घरमें भी रोते हैं, बाहर भी रोते हैं।

वहाँ रहते हुए अभी तीन या चार ही महीने गुज़रे थे कि एक दिन क्रुदरतका हेरत-अँगोज़ करश्मा देखनेमें आया। शाम हो गई थी। मैं इसमत आराके लिए मिठाई और खिलौने लिए घरको लौट रहा था, कि एक मकानकी खिड़कीमें एक चेहरा दिखाई दिया। मैं चौंक पड़ा। मेरे बदनका बाल-बाल काँप गया--यह जहान आराका चेहरा था; वही रंग, वही आँखें, वही नक़्श-निगार। उसने मुझे देखा, और फ़ौरन ही पीछे हट गई। मगर मेरे पाँव वहीं गड़ गए। दिमाग़ मानता न था, अक़ल तस्लीम न करती थी। वह मर चुकी थी, मेरे सामने दफ़न हुई, मैंने अपने हाथसे मिट्टी दी। रावलपिंडीमें आज भी उसकी लाश

पर पक्की क़ब्र बनी है, और यह इस जगह ज़िन्दा मौजूद है ! नहीं, मुझे धोखा हुआ है । यह मेरी अल्लाह का फ़तूर है । यह मेरी आँख का कुसूर है । यह वह न होगी, उसीके जैसी कोई दूसरी औरत होगी । मैं घर लौट गया । मगर इस बात का ख़याल दिलसे न उतरा । सारी रात परेशान रहा, ज़रा नींद न आई । बार-बार वही खिड़की नज़र आती थी । बार-बार वही चेहरा दिखाई देता था, और मैं चकरा जाता था । दूसरे दिन मैं फिर उधरसे गुज़रा; लेकिन आज झरोखा बन्द था । मैंने कई चक्कर काटे, मगर झरोखा एक बार भी न खुला । मेरा शुबह बढ़ने लगा । शायद सचमुच मेरा शुबह ठीक हो । शायद सचमुच यह ज़हान आरा ही हो, ज़भी मुझे देखकर चौंक पड़ी थी । उसका रंग बदल गया था । उसके मुँहसे, याद आता है, हलकी-सी चीख भी निकल गई थी ! कपड़े भी पंजाबियोंके-से थे, अफ़ग़ानोंके-से न थे । फिर ख़याल आता, तेरा दिमाग चल गया है, वर्ना तुझे यह ख़याल कभी न आता । मुहब्बतने तेरी निगाहोंको धोखा दे दिया है ! ज़हान आरा तेरे घरमें मरी, तेरे सामने मरी, ज़नाज़ा उठा, दफ़न हुई, क़ब्र बनी, और आज तू कहता है, वह ज़िन्दा है और तूने उसे देखा है । यह दीवानगी नहीं, तो और क्या है ? दिमाग़ का इलाज कर ।

चन्द दिन इसी कशमकशमें गुज़रे । इसके बाद एक दिन फिर वह झरोखा खुला, और मैंने उसे देखा । वह शायद किसीकी राह देख रही थी । उसे मालूम न था, कि कोई उसे देख रहा है । मैं उसे जितना देखता था, मेरा शक़ उतना ही बढ़ता जाता था । यकायक उसकी आँखें मेरी तरफ़ उठ गईं । डर, हैरानी और शर्मिंदगीकी एक लहर-सी पैदा हुई, और वह बिजलीकी तेज़ीसे पीछे हट गई । अब मुझे यक़ीन हो गया कि यह वही है, कोई दूसरी नहीं । मगर फिर भी ज़रूरी था, कि मैं अपने यक़ीनकी तसदीक़ करूँ । चुनांचे मैं एक दूकानदारके पास गया, और उससे पूछा—क्यों बिरादर, यह मक़ान किसका है ?

दूकानदारने मुझे सिरसे पाँवतक देखा, और फिर कहा—तेरा हिन्दुस्तानी भाई है, रावलपिंडीका रहनेवाला । मुहम्मद इक़बाल या हसन इक़बाल कुछ इसी तरहका नाम है ।

मेरा कलेजा धक धक करने लगा ।

६

अब शक़ी ज़रा भी गुंजायश न थी । मैंने उसी वक़्त जाकर ख़ान साहबसे कहा—एक अजीब ख़बर सुनाऊँ ? ऐसी ख़बर किसीने आज तक न सुनी होगी ।

ख़ान साहब—ज़रूर सुनाओ ।

मैं—आप हैरान रह जाएँगे ।

ख़ान साहब—ऐसी ख़बर है वह, तो ज़रूर सुनाओ । मैं हैरान होना चाहता हूँ ।

मैं—आप यक़ीन ही न करेंगे । आप कहेंगे, तुम पागल हो गए हो । आप कहेंगे, तुम्हारी अक़ल मारी गई है ।

ख़ान साहब—अच्छा ! तो तारीफ़ रहने दो । पहले ख़बर सुनाओ । मैं ख़बर सुनना चाहता हूँ ।

मैं—मुझे अंदेशा है, आप यक़ीन न करेंगे ।

ख़ान साहब—अरे भई ! बात क्या है ? कुछ कहोगे भी या दीवाचा ही लिए जाओगे ?

मैंने रुक रुककर कहा—ज़हान आरा ज़िंदा है ।

ख़ान साहब चौंककर खड़े हो गए । उनको यक़ीन हो गया, कि मैं पागल हो चुका हूँ । मेरी तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे ।

मैं—ख़ुदाए-बरतरकी क़सम ! मैंने उसे अपनी आँखोंसे देखा

है। आदमी कानों सुनी बातपर शक कर सकता है, मगर आँखों देखी बातपर कैसे शक करे ?

खान साहब—अरे मियाँ ! मुर्दे क्रयामतसे पहले कभी नहीं उठते। फिर जहान आरा कैसे जी उठी ?

मैं—मैं यह कुछ नहीं जानता। मैं तो यह जानता हूँ, कि वह ज़िन्दा है, और मेरी आँखों ने उसे दिन की रोशनी में देखा है।

खान साहब—मालूम होता है, तुम्हारा सिर फिर गया है।

मैं—अगर आप देख लें, तो आपका सिर भी फिर जाए। आप भी वही कहने लगें, जो मैं कह रहा हूँ।

खान साहब—मैंने अपने हाथसे दफन किया, तुम्हारी बात कैसे मान लूँ ? तुमने ख्वाब तो नहीं देखा है ? कहाँ से आ रहे हो ?

मैं—बाज़ारसे आ रहा हूँ। आप ज़रा मेरी आँखें देखिए। मैं पागल नहीं हूँ।

खान साहब—मगर तुम्हारी बातें पागलोंसे भी बढ़कर हैं। जानते हो क्या कह रहे हो ?

मैं—खूब जानता हूँ।

खान साहब—क्या जानते हो ?

मैं—यह कि जहान आरा ज़िन्दा है, और उसे मैंने अपनी इन दोनों आँखोंसे, अभी आधा घण्टा नहीं गुज़रा, देखा है। रावलपिंडीके किसी मुहम्मद इक़बाल या हसन इक़बालके पास है।

खान साहब चौक पड़े—हसन इक़बाल ! वही हमारे पड़ोसी रहीम बख़्शका बेटा तो नहीं ?

मैं—यह खुदा जाने ! नाम कुछ ऐसा ही है।

खान साहब किसी गहरे ख़यालमें ग़र्क़ हो गए। मैंने कहा—मेरी रायमें वह मरी न थी, यह गहरी चाल थी। क्या अजब है, उसे कोई

दवा देकर बेहोश कर दिया गया हो, और दफन होनेके बाद फौरन खोदकर निकाल लिया गया हो। वरना वह ज़िन्दा होकर यहाँ कैसे आ जाती ? ज़रा सोच कर कहिए।

खान साहब—यह तो अलिकलैलाके क्रिस्सों-की-सी बात हो गई। मगर मुझे अब भी यक़ीन नहीं आता। वह जहान आरा न होगी, कोई वैसी ही शक्त की होगी। तुमने दूर से देखा है। दूर से धोखा लग जाता है।

मैं—अपने दूरसे भी पहचाने जाते हैं। मुझे इसमें ज़रा भी शुबह नहीं। एक दिन पहले भी देखा था। उस दिन शक हुआ था। मगर आज तो पूरा यक़ीन हो गया। आखिर उसके चेहरे का रंग क्यों उड़ गया ? ज़रूर वही है, और कोई नहीं है।

खान साहब—(सोच-सोचकर) बड़े ही त-अज्जुबका मामला है ! जितना सोचता हूँ, उतनी हैरानी बढ़ती है।

मैं—अब आपकी क्या राय है ?

खान साहब—मैं क्या कहूँ मियाँ ? मेरी तो अक़ल काम नहीं करती। तुम्हारी जो मरज़ी हो, करो। मैं सिर्फ़ यह कहूँगा, कि जहान आरा ऐसी लड़की न थी कि ऐसी हरकतें करे।

मैं—क्वाज़ी साहबके पास जाऊँ ? जैसा कहेंगे, वैसा करूँगा।

खान साहबने ठंडी आह भरी, और हवामें देखने लगे।

१०

मैं भागा भागा क़ाज़ी साहबके मकानपर पहुँचा। वह बहुत हमदर्दीसे पेश आए। अपने हाँ के क़ाज़ियों में ऐसी मुरब्बत और खुलूसदिली मैंने कम देखी है। मेरा क्रिस्सा सुनकर उनको भी हैरानी हुई। बहुत देर सोचते रहे, इसके बाद बोले—इज्जतका सवाल है,

मैं नहीं चाहता कि यह मुकद्दमा खुली अदालतमें पेश हो। बड़ी बदनामी होगी। अगर चाहो, तो घरपर बुलाकर फैसला कर दिया जाए। तुम्हारी क्या राय है ?

मैंने सिर झुकाकर जवाब दिया—आपका खयाल बजा है। आप सबको अपने ही मकान पर बुला लें।

काज़ी साहबने पहले खान साहब और उनकी बीवीको बुलाकर एक कमरेमें बिठा दिया। इसके बाद हसन इक़बाल और उसकी बीवीके पास आदमी भेजा। मैं उम्मीद और ना उम्मीदके बीचमें लटकने लगा।

थोड़ी देर बाद दोनों आ गए। हसन इक़बाल निहायत खूबसूरत नौजवान था। चेहरेसे शराफ़त टपकती थी। उसपर किसो साज़िश का गुमान भी न होता था। उसने बड़े तपाकसे पहले काज़ी साहबको फिर मुझे सलाम किया, और बैठ गया। औरत बुर्का ओढ़े हुए थी। वह सिमट कर एक कोनेमें बैठ गई। काज़ी साहबने मेरी तरफ़ देखा। मैंने काज़ी साहबकी तरफ़ देखा।

हसन इक़बालने पूछा—क्या हुक्म है ?

काज़ी साहब बोले—यह साहब कहते हैं, यह ख़ातून इनकी बीवी है, और आप इसे किसी चालसे उड़ा लाए हैं। अब आप फ़रमाइए, आपके पास इसका क्या जवाब है ?

हसन इक़बालके चेहरेपर ख़फ़गीके आसार जाहिर हुए। उसने मेरी तरफ़ ऐसी निगाहोंसे देखा, जिनका मतलब यह था कि तुम्हें यह हिम्मत कैसे हो गई ? इसके बाद काज़ी साहबसे कहा—बिल्कुल नहीं, यह एक शरीफ़ मुसलमान और उसकी बीवीकी तौहीन है। और मुझे अफ़सोस है कि यह तौहीन करनेवाला एक मुसलमान है। मैं चाहता हूँ, यह मुझसे माफ़ी माँगे।

मैं घबरा गया। हसन इक़बाल ऐसी दिलेरीसे जवाब देगा, यह मुझे खयाल न था। मगर क़ाज़ी साहबने इसकी परवा न की और औरतसे पूछा—क्यों बेटी ! तू बता, यह क्या मामला है ? क्या इनका इलज़ाम ठीक है ?

औरतने मुँहसे जवाब न दिया, सिर्फ़ सिर हिला दिया, जिस का मतलब था,—‘नहीं।’

क़ाज़ी साहब फिर बोले—मुँहसे जवाब दो। मैं मुँह का जवाब सुनना चाहता हूँ।

आहिस्तासे एक बारीक आवाज़ आई—मैं नहीं जानती, यह कौन हैं ? इनका इलज़ाम ग़लत है।

आवाज़ बारीक थी; मैंने पहचान ली—यह वही थी। आदमी शक्त बदल सकता है, मगर आवाज़ नहीं बदली जा सकती। मेरे बदनसे पसीना छूटने लगा। मैंने जोशसे चिल्लाकर कहा—क़ाज़ी साहब, मेरा खुदा गवाह है, यह सचमुच मेरी बीवी है। मैं इसकी आवाज़ पहचानता हूँ। मैं इसकी आवाज़ लाखोंमें पहचान लूँ।

क़ाज़ी साहब—मगर कोई सुबूत ? यह दोनों तो इनकार करते हैं।

मैं—(औरतसे) क्या तुम जहान आरा नहीं हो ? क्यों भूठ बोलती हो ? खुदाका ख़ौफ़ करो।

औरत—(जल्दीसे) मैं रुहा हूँ। मैं जहान आरा नहीं हूँ। मैं किसी जहान आरा को नहीं जानती।

क़ाज़ी साहब—बुर्का उतार दो। अभी मालूम हुआ जाता है।

हसन इक़बालके चेहरेपर हवाइयाँ छूटने लगीं। घबराकर बोला—क़ाज़ी साहब, एक शरीफ़ मुसलमान औरत किसी ग़ैर मर्दके सामने मुँह कैसे खोलेगी ? यह तो सोचिए।

क़ाज़ी साहब—मैं मजबूर हूँ। बुर्का उतारना होगा।

औरतने बुर्का उतार दिया, मैं चौंककर पीछे हट गया। अब ज़रा भी शक न था, यह वही थी। वही जहान आरा, जो मर चुकी थी, और जिसकी जिन्दगीका राज़ हमारी समझसे बाहर था। पर उसके चेहरेपर ज़रा भी घबराहट न थी। औरत ऐसी हालतमें अपने औसानपर ऐसा काबू रख सकती है, यह मेरे लिए नई बात थी। मैं समझता था, बुर्का उतारते ही राज़ फाश हो जाएगा। जहान आरा मेरे सामने सिर न उठा सकेगी। मगर ऐसा न हुआ। वह मेरी तरफ़ देख रही थी। और ऐसे, जैसे वह मुझे जानती भी न हो। ऐसे, जैसे उसने कभी मुझे देखा भी न हो। ऐसे, जैसे मैं उसके लिए बिलकुल अजनबी था। मेरा दिल धड़कने लगा। खयाल आया, क्या मैंने दो सालमें अपनी औरतको भी नहीं पहचाना ?

इस मौक़ेपर खान साहब अंदर आ गए। वह रो रहे थे। उनकी दाढ़ी उनके आँसुओंसे तर थी। उन्होंने आगे बढ़कर उस औरतके सिरपर हाथ रख दिया, और कहा—बेटी, खुदा जानता है, तू जहान आरा है। अब भूठ न बोल, हम तेरी ख़ता माफ़ कर देंगे। यह राज़ हम नहीं जानते। लेकिन तू मेरी बेटी है। तू दुनियाको धोका दे सकती है, पर बापकी आँखोंको धोका नहीं दे सकती। वह देख, वह तेरो माँ है। वह रो-रोकर आधी भी नहीं रही—और तू हमारी बेटी है।

जहान आराने पहले खान साहबकी तरफ़ देखा, फिर अपनी माँकी तरफ़ और इसके बाद मिन्नतें करके बोली—खुदाके लिए मुझे पागल न कर दो। मैं तुम्हारी बेटीकी जगह हूँ, मगर मैं जहान आरा नहीं हूँ। मैं सच कहती हूँ, मैं रूहा हूँ।

और उसके चेहरेपर इस वक़्त भी कोई परेशानी न थी। अब मुझे भी शुबह होने लगा, कि शायद यह जहान आरा न हो, कोई और ही हो। मैं अपनी जल्दबाज़ी और हिमाक़तपर पछता रहा था, और न जानता था कि उनसे किन लफ़्ज़ोंमें माफ़ी माँगूँ ?

इसमत आरा नई जगह और नए आदमियोंको देखकर कुछ सहम-सी गई थी, इसलिए अपने नाना नानीके पीछे छिपी खड़ी थी। खान साहब और उनकी बीवीको रोते देखकर वह आगे बढ़ी। शायद सोचती हो कि यह रोते हैं, मैं चुप करा दूँगी। इतनेमें उसकी निगाह उस औरतके चेहरेपर पड़ी, जिसे हम सब जहान आरा समझते थे और जो जहान आरा होनेसे इनकार कर रही थी। इसमत आरा वहीं रुक गई। उसने बड़े गौरसे उसकी तरफ देखना शुरू किया। कुछ देर वह इसी तरह फटी-फटी आँखोंसे देखती रही, जैसे उसे पहचान रही हो। तब उसकी आँखोंमें एक अजीब-सी चमक पैदा हो गई। उसका चेहरा खुशीसे चमकने लगा। उसने अपने माथेपर बिखरे हुए बालोंको हाथसे पीछे हटाया, लपककर उसकी तरफ बढ़ी, और उसकी टाँगोंसे लिपटकर बोली—अम्मी !

अब उस औरतसे ज़ब्त न हो सका। देखते-देखते उसके चेहरे पर सुखीं दौड़ गई, और आँखोंसे आँसू बहने लगे। उसने इसमतको उठाकर गलेसे लगा लिया, और उसके मुँहको, गालोंको, आँखोंको, सिरके बालोंको पागलोंकी तरह चूमने लगी। इसमत माँके पागल प्यारसे घबरा गई, और उसके मुँहको अपने नन्हे-नन्हे हाथोंसे पकड़ कर परे हटानेकी कोशिश करने लगी। मगर माँकी ममतामा नती न थी। उसने उसे कसकर गलेसे लगा लिया, और फूट-फूटकर रोने लगी।

काज़ी साहब माँकी मुहब्बतका यह नज़ारा देखकर बहुत खुश हुए, और भराई हुई आवाज़में बोले—जिस सचाईको हम मालूम न कर सके थे, वह इस लड़कीने मालूम कर ली। अल्लाह का शुक्र है कि मेरी छत तले बेइसाफ़ीका फ़ैसला नहीं हुआ; वरना क़यामतके रोज़ मेरा दामन मज़लूमोंके हाथमें होता। खुदा बड़ा है, खुदाके क़ायदे बड़े हैं। खुदाकी तारीफ़ हो।

हसन इकबाल

अब हमारे लिए जुर्म मानने के सिवाय कोई चारा न था। जहान आराको मैंने जैसा समझाया था, उसने वैसा ही किया। उसने शौहरकी तेज निगाहोंका मुकाबिला किया, और न झिझकी। उसने माँ-बापकी आँखोंके आँसू देखे, और अपने-आपको सँभाले रही। मगर बेटीको देखकर बेकाबू हो गई। वह अब रो रही थी। क़ाज़ी साहब सब कुछ समझ गए। उन्होंने मेरी तरफ़ गुस्सेकी निगाहोंसे देखा और कहा—खुदाने फ़ैसला कर दिया कि तू भूठा है, और इसका इल्जाम ठीक है। अब खुदा और उसके राज़बसे डर, और जो कुछ बीती है, साफ़-साफ़ कह दे। और अल्लाह मेहरबान है, और बख़्शिश करनेवाला है।

मैं इनकार न कर सका। मैंने सारी बातें सिलसिलेवार बयान कर दीं, और आख़िरमें कहा—क़ाज़ी साहब! माँ-बाप, शौहर और दुनियाके लिए यह मर चुकी थी। उन्होंने इसे दबा दिया था। वह इसका मातम कर चुके थे। अगर मैं दीवानगीकी हालतमें जाकर क़त्र न उखाड़ लेता, तो यह दुनियाकी हवा और रोशनीमें कभी साँस न ले सकती। इसे मैंने ज़िंदा किया है। लाश इनकी थी, ज़िंदा जहान आरापर मेरा हक़ है। यह मेरी है। मुझे मिनी चाहिए।

मगर क़ाज़ी साहबने कहा—नहीं। वह तेरी नहीं। अगर वह ज़िंदा है, और उसका तलाक़ नहीं हुआ, तो अपने शौहरकी है। वह शौहरको मिलेगी।

मैं—तो अब मुझे एक बात और कहनी है। जब यह होशमें आई, तो मुझे देखकर बहुत घबराई। यह मुझे चाहती थी, मेरे आनेकी ख़बर सुनकर ही इसके दिल की धड़कन बन्द हो गई थी।

मगर इसपर भी कहती थी, मेरे लिए दुनिया तुम्हारे वजूदसे खाली है, मेरा निकाह हो चुका है, और मेरा शौहर ज़िंदा है। लेकिन इसके साथ ही शौहरके यहाँ जाते हुए भी इसकी रूढ़ काँपती थी। इसका दिल एक तरफ़ दौड़ता था, दिमाग़ दूसरी तरफ़ दौड़ता था। यह उलझनमें थी। इसे दोनों तरफ़ तबाही नज़र आती थी, एक तरफ़ दीनकी, दूसरी तरफ़ दुनियाकी। आखिर हमने फैसला किया, कि यह मेरे साथ रहे, मगर हम अपने आपसे बाहर कभी न हों। मैं खुदाकी और उसके रसूल पाककी कसम खाकर कह सकता हूँ कि हम आज तक अपने इक्लारपर कायम हैं, और जहान आरा आज भी वैसी ही पाक-साफ़ है, जैसी क़ब्रमें थी। हम एक ही मकानमें रहे हैं; मगर हमेशा एक-दूसरेसे परे रहे हैं।

मेरी तक्रीर सुनकर सबके चेहरे खुशीसे चमकने लगे। काज़ी साहबने इतमीनानकी साँस लेकर कहा—तू गुनहगार है, मगर तू फ़रिश्ता है। किसीकी क़ब्र उखाड़ना इसलामकी रूसे गुनाह है, और इसकी सज़ा बड़ी सख़्त है। लेकिन चूँकि तू दीवानगीकी हालत में था, और इससे एक औरतकी ज़िंदगी बच गई है, इसलिए मैं तुझे माफ़ करता हूँ। मगर तुझे औरत नहीं मिल सकती। यह इनकी है, (राहत हुसैनकी तरफ़ इशारा करके) यह इनको मिलेगी। और मैं हुक्म देता हूँ, कि यह इनके साथ जाए। मेरा यही फैसला है।

ख़ान साहब और राहत हुसैनने मेरी मदद और शराफ़तका शुक्रिया अदा किया, और जहान आराको अपने साथ ले गए। उसके क़दम सुस्त थे, मगर वह जा रही थी। उसी दुनियामें, जहाँ फ़र्ज़की पाबंदियाँ थीं, पर मुहब्बतकी खुशियाँ न थीं। मैं देखता रह गया। कितनी दूर भागकर आए थे, मगर हमारी बद-क़िस्मतीने यहाँ भी पीछा न छोड़ा। चार दिनमें आ पकड़ा।

वह अब राहत हुसैनकी थी। मेरा उससे कोई वास्ता न था। हम अब बेगाने थे। मगर मेरे दिलने अब भी न माना, और मैं उनके

पीछे पीछे चला। यहाँ तक कि वे अपने मकानके पास पहुँच गए। मैंने ठंडी आह भरी, और वापस मुड़ा। यकायक मुझे कुछ शोर-सा सुनाई दिया। मैंने पीछे मुड़कर देखा—जहान आरा दर्वाजेमें गिर पड़ी थी, राहत हुसैन उसके ऊपर झुककर उसे संभाल रहा था, और खान साहब और उनकी बीवी सामने खड़े काँप रहे थे।

मैं दौड़कर उनके करीब चला गया, और घबराकर बोला—क्यों, क्या हुआ ?—क्या हुआ ?

राहत हुसैन—इकबाल ! दौड़कर किसी हकीमको बुलाओ। जहान आरा बेहोश हो गई है।

हकीमने आकर देखा, और मायूसीसे सिर हिला दिया। जहान आरा मर गई, मगर उसने दीन और दुनिया दोनों बचा लिए। इसमत रोती थी, मगर उसकी माँ चुप थी। उसके आँसू सदाके लिए ख़ुशक हो चुके थे।

राहत हुसैन ने मुझसे मुख़ातिब होकर कहा—तुमने लाश ली थी, लाश ही दी। तुमने कहा था, हमारा हक़ जहान आरा पर नहीं, जहान आराकी लाशपर है। तुम्हारा कहा पूरा हो गया। वह मेरे पास आकर भी मेरे पास न रही। क़ाज़ीने दिला दी थी, ख़ुदाने छीन ली। अब सबके सिवा चारा ही क्या है !

मैंने सिर झुका लिया, और आँखोंके आँसू पोंछने लगा। मगर सोचता हूँ, क्या यह आँसू कभी ख़ुशक भी होंगे ?



हेर-फेर

१

एक गरीब मजदूर सारा दिन लहू-पसीना एक कर देनेवाली मेहनत करनेके बाद, साँझके समय दो आने पैसे अपनी फटी पुरानी चादरके कोनेमें बाँधकर शहरसे निकला और मजदूरोंकी बस्ती की तरफ चला। बहुत दूर उसने अपने कच्चे भोंपड़ेके धुँएँको आकाशमें चक्कर काटते देखा, और देखते ही समझ गया कि उसकी माँ उसके लिए खाना पका रही है।

वह नंगे सिर, नंगे पाँव जा रहा था। उसके घरमें सिवाय उसकी बूढ़ी माँ के और कोई सगा-संबन्धी न था। उसके घरमें सिवाय एक चूल्हे और दो-चार बर्तनोंके और कोई साज-सामान न था। मगर वह फिर भी खुश था—उसकी चादरमें दो आने पैसे बँधे थे। उसके दिलमें आशा भरी थी।

सामनेसे एक बारात आ रही थी। मजदूरने उसे देखा और उसे खयाल आया—हो सकता है, कभी मेरा भी ब्याह हो, और मैं भी बारात लेकर ब्याहने निकलूँ। उस समय मैं कितना खुश हूँगा, मेरे साथ साथ बाजे बज रहे होंगे, और—

बारातके आगे चलनेवाले नौकरोंने उससे कहा—एक तरफ हट जा छोकरे !

मजदूरके ब्याहकी काव्य-कल्पना मिट्टीमें मिल गई। वह खीम कर बोला—क्यों हट जाऊँ ? सड़क सिर्फ तुम्हारे लिए नहीं है। इस पर हम भी चल सकते हैं।

बारातवालोंने उसकी चादर फाड़ दी, और उसे उठाकर सड़कके किनारे झाड़ियोंमें फेंक दिया ।

बारात चली गई । बारातके बाजोंका शोर धीरे धीरे दूर जाकर शहरके प्रकाशमें गायब हो गया । अब वहाँ अकेला मज्जदूर था । उसके चारों तरफ रातका सन्नाटा था, निराशाका अँधेरा था और दुखी दिल की आहें थीं । वह घुटनोंके बल धरतीपर बैठ गया और अपनी सजल आँखें आकाशकी ओर उठाकर बोला—हे प्रभो ! हमारे पास न धन-दौलत है, न महल-अटारियाँ, न नौकर-चाकर । फिर तूने हमें क्यों पैदा किया ? क्या सिर्फ इसलिए कि अमीरोंके नौकर आएँ और हमें उठाकर सड़कके किनारे फेंक दें । आखिर दुनियाको हमारी क्या जरूरत है ?

२

कई वर्ष बीत गए ।

मज्जदूरने जी-जान तोड़कर काम किया । दिनका आराम बेचा, रातकी नींद बेची, शतरंजकी चालें चलीं, छल, कपट, धोखेसे धन कमाया और धनी बन गया ।

अब वह मज्जदूर न था, अपने नगरका नामी रहस था । उसके सन्दूकों में रुपये और मुहरें थीं । उसके रहनेको एक बड़ा भारी महल था । उसकी सेवा करनेको दास-दासियाँ थीं । उसकी सवारीको घोड़े और पालकियाँ थीं, और लोग उसके सामने सिर झुकाकर आते थे ।

एक दिन, साँझके समय वह पालकीपर सवार अपने घरको लौट रहा था कि एकाएक उसकी पालकी रुक गई । उसने पूछा—क्या है ?

नौकर—सरकार ! मज्जदूरोंकी बारात आ रही है ।

धनी—उन्हें कहो, एक ओर हट जाएँ ।

नौकर—वे कहते हैं, सड़क सिर्फ तुम्हारे लिए नहीं है। इसपर हम भी चल सकते हैं।

धनी—पाजियोंको डंडे मारकर भगा दो। ये हमारा रास्ता क्यों रोकते हैं ?

डंडे बरसने लगे। मजदूर चीखें मारते हुए इधर-उधर भागने लगे। थोड़ी देरमें वहाँ एक भी मजदूर न था। मगर उनकी चीखोंसे अमीर पालकी-सवारका दिमाग खराब हो गया। उसने कहा—मुझे पालकीसे उतार दो। मैं आराम करूँगा।

नौकरोंने सड़कके किनारे गालीचे बिछा दिए और अपने मालिक को आरामसे बिठा दिया। और उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे वह यहाँ कभी पहले भी बैठ चुका है। शायद कई वर्ष पहले। शायद किसी पिछले जन्ममें।

इस समय उसका शरीर अपनी पोशाकमें गरम था, उसके सामने उसके नौकर हाथ बाँधे खड़े थे, और शहरमें उसके राजसी महलका द्वार उसके लिए खुला था।

वह नरम गालीचेपर पालथी मारकर बैठ गया, और अपनी आँखें आकाशकी तरफ उठाकर बोला—हे प्रभो ! इन अभागों मजदूरोंके पास न धन-दौलत है, न महल-अटारियाँ, न नौकर-चाकर। फिर तूने इन्हें क्यों पैदा किया है ? क्या सिर्फ इसलिए कि यह हम लोगों के रास्तेमें आ खड़े हों और हमारा समय नष्ट करें। आखिर दुनिया को इनकी क्या जरूरत है ?



